पत्र-पुष्प

प्यारे व्रजवल्लभ !

सेवक ने तुम्हारे लिये एक हार गूँथा है, उसमें तुम्हारी ही व्रज-माधुरी-कुंज की कलियाँ चुन-चुन कर पिरोई गई हैं। क्या तुम, नाम के ही नाते सही, इस हार को अपना कंठाभरण बनाओगे ?

भक्तवत्सल ! विश्वास है, इस तुच्छ भेंट को अपनाकर इस दास को अवश्य कृतार्थ करोगे।

प्रकाशकीय वक्तव्य

इस संस्करण में पाठ के छोटे-मोटे सुधारों के अतिरिक्त पदटिप्पणी का क्रम बदल दिया गया है, जिस से स्थान-संकोच का लाभ तो हुआ ही है पाठकों की सुविधा भी बढ़ गई है। आशा है कि विद्यार्थी-गण और साधारण पाठक समान रूप से इस नये संस्करण से लाभ उठावेंगे।

श्रीमान् बड़ौदा-नरेश स्वर्गीय महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ ने बम्बई के सम्मेलन में स्वयं उपस्थित होकर जो पाँच सहस्र रुपए की सहायता सम्मेलन को प्रदान की थी, उसी सहायता से सम्मेलन इस "सुलभ साहित्य-माला" के प्रकाशन का कार्य कर रहा है। इस "माला" में जिन सुंदर और मनोरम ग्रंथ-पुष्पों का ग्रंथन किया जा रहा है उनकी सुरभि से समस्त हिन्दी-संसार सुवासित हो रहा है। इस "माला" के द्वारा जो हिन्दी-साहित्य की श्रीवृद्धि हो रही है उसका मुख्य श्रेय श्रीमान् बड़ौदा नरेश को है। श्रीमान् का यह हिन्दी-प्रेम भारत के अन्य हिन्दी-प्रेमी श्रीमानों के लिये अनुकरणीय है।

साहित्य-मन्त्री,
हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन,
प्रयाग

तीसरे संस्करण का वक्तव्य

इस ग्रंथ का यह तृतीय संस्करण बड़े ध्यान से संशोधित किया गया है। इस संशोधन में इस बात का विचार रक्खा गया है कि कवियों की कोई ऐसी रचना न सम्मिलित की जावे जो अत्यंत शृङ्गार पूर्ण या अश्लील हो। इस प्रकार का संशोधन इसलिये उचित समझा गया कि यह ग्रंथ अनेक परीक्षाओं के लिये स्वीकार किया गया है और विद्यार्थियों को उत्तान शृङ्गार की रचनाओं से दूर ही रखना उचित है। इस संशोधन में सम्मेलन के प्रधान मंत्री डा० बाबूराम सक्सेना और प्रबन्ध-मंत्री पं० रामलखन शुक्ल ने विशेष सहयोग प्रदान किया है। इसी संशोधन के कारण इस ग्रंथ की पृष्ठ-संख्या कुछ कम हो गई है।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन,
प्रयाग
१२-९-३९

रामकुमार वर्मा
साहित्य-मंत्री

विनम्र वक्तव्य

पुराना व्रजभाषा-साहित्य आज जिस शोचनीय उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता है, उस पर विचार करते हुए मुझे निस्संदेह संतोष होता है कि व्रजमाधुरीसार का—१० वर्ष बाद ही सही—दूसरा संस्करण हुआ तो ! अपने तुच्छ परिश्रम का फल मुझे मिल गया, यही मेरे लिये बहुत है। व्रजभाषा का सुंदर, सुमधुर साहित्य सदा आदर-स्थान पाता रहे यही प्रार्थना प्रभु से है।

पहले संस्करण का 'वक्तव्य' बहुत लंबा था। उसमें मुझे खुद ही बहुत-सी बातें निरर्थक और कृत्रिम दिखाई दीं। ऐसी बनाई हुई अस्वाभाविक रोचकता मुझे स्वयं ही आज रुचिकर नहीं मालूम होती। अतः उसका प्रायः अधिकांश निकाल कर मैं बहुत थोड़े में ही अपना नया वक्तव्य 'व्रजमाधुरीसार' के संबन्ध में नीचे देता हूँ।

वैसे तो संस्कृत-साहित्य-सागर में श्रीमद्भागवत, गीतगोविंद, कर्णामृत, विदग्धमाधव, हंसदूत, भक्ति-संदर्भ प्रभृति अप्राकृत साहित्य के अमूल्य ग्रंथ-रत्न विद्यमान हैं ही परन्तु उस भाषा के पीयूष-पयोधि में, जिसमें कि :-

मचलि-मचलि माँगी हरि माखन रोटी—

उस व्रजभाषा के प्राचीन साहित्य में तो अपूर्व ही चीजें मिलेंगी। वह रस, वह भाव, वह माधुर्य मुश्किल से अन्यत्र देखने में आयेगा। उस युग में सूरदास, नंददास, हितहरिवंश, व्यास, रसखानि, नागरीदास इत्यादि भक्त-सत्कवियों ने प्रेम-जाह्नवी की दिव्य-दिव्य धाराएं बहा दी थीं। दशों दिशाओं में जगन्मोहन की मधुर-मधुर बाँसुरी गूँजने लगी थी। सहस्रों संसार-परितप्त जीव सुशीतल प्रेम-निकुंज की सुखद छाया में विश्राम और शांति पाने लगे। सैकड़ों प्रेमोन्मत्त भक्त आप को भूल कर नाच उठे थे। अहा !

सघन कुंज छाया सुखद, सीतल मंद समीर।
मन ह्वै जात अजौ वहै, वा जमुना के तीर॥

इन भक्त-महात्माओं ने भक्तिरस का जो अनुपम स्रोत बहाया, वह बराबर बहता ही गया। कल ही की बात है, हरिश्चंद्र, रत्नाकर और सत्यनारायण ने इस कृष्ण-प्रेम-रस का पानकर ब्रजभाषा-साहित्य को विभूषित किया। हाँ, ब्रजभाषा के इस गये-बीते जमाने में भी इन सुकवियों ने उसी पुराने राग में प्रेम-स्तवन के मधुर गीत गाये। कौन कहता है कि इनके गीतों में स्थायित्व नहीं है?

यह ठीक है, कि सुहृदयवर सत्यनारायण निराशा की आह भर कर यह कह गये हैं कि :—

पहिले को-सो अब न तिहारो यह वृन्दावन।
याके चारों ओर भये बहु विधि परिवर्तन॥
बने खेत चौरस नये, काटि घने बन-पुंज।
देखन कों बस रहि गये, निधिबन-सेवाकुंज॥

फिर भी इन्हीं की इस प्रार्थना पर:—

सजन सरस घनस्याम अब, दीजै रसु बरसाय।
जासों ब्रजभाषा-लता हरी-भरी लहराय॥

कान देकर ब्रजबल्लभ श्रीकृष्ण अपनी प्यारी ब्रजभाषा को सदा अपनाते ही रहेंगे। हमारी ब्रजभाषा-लता सदा हरी-भरी ही लहराती रहेगी। जब तक भारत का हृदयस्थल ब्रजप्रांत विद्यमान रहेगा, जब तक कालिंदी की श्याम-धारा बहती रहेगी, जब तक ब्रजवल्लभ श्रीकृष्ण की मधुर मूर्ति हमारे हृदय-पटल पर खचित रहेगी, जब तक सूर और हरिश्चंद्र का नाम शेष रहेगा, तब तक ब्रजभाषा साहित्य का लोप होने का नहीं।

इस दूसरे संस्करण में थोड़ा-सा कुछ हेर-फेर मैंने किया है। 'अष्ट छाप, के भक्त-कवियों में पहले केवल सूरदास, नंददास और कृष्णदास, ये तीन कवि थे। इस बार परमानंददास और कुंभनदास को भी ले लिया है। इनकी कविता कृष्णदास की कविता से कुछ कम महत्व की नहीं है।

परमानंददास के कई पद तो सूरदास के पदों से भी टक्कर लेते हैं। इस प्रकार अब अष्टछाप के पाँच भक्त-कवि आ गये हैं। नंददास के 'भ्रमर-गीत' से लेकर कुछ पद्य और बढ़ाये हैं। पाठ तो प्रायः कई पदों का शुद्ध कर दिया गया है। सूरदास के भी कुछ पद इस संस्करण में और जोड़ दिये गये हैं। कुछ सवैये रसखानि के भी इसी तरह और संकलित कर दिये हैं।

इस संस्करण में संग्रह के दो खंड कर दिये गये हैं। पहले खंड में तो सूरदास से लेकर ललितकिशोरी तक और दूसरे में बिहारी, देव हरिश्चंद्र रत्नाकर और सत्यनारायण रखे गये हैं। जिन भक्त कवियों ने केवल 'कृष्ण-साहित्य' का ही प्रणयन किया और एक प्रेम-भक्ति को ही प्रधानता दी, प्रथम खंड में उन्हीं को मैंने स्थान दिया है। इसमें संदेह नहीं, द्वितीय खंड के कुछ कवि प्रथम खंड के कवियों से, कविता की दृष्टि से, बहुत आगे निकल जाते हैं पर उन्होंने कृष्ण-भक्ति के अलावा अन्य विषयों पर भी लिखा है। इसलिए उन्हें मैंने द्वितीय खंड में स्थान देना ही उचित समझा। इसमें 'प्रथम' और 'द्वितीय' कोटि-जैसी कोई बात नहीं है। मेरे इस खंड-विभाग को कोई 'श्रेणी-विभाजन' न समझें।

श्रीस्वामी हरिदास जी तथा गोस्वामी श्रीहितहरिवंशजी की संक्षिप्त जीवनी के संबन्ध में कुछ आपत्तियाँ उठाई गई थीं। जो प्रमाण उस समय मुझे उपलब्ध हुए थे उन्हीं के आधार पर ये संक्षिप्त जीवनियाँ लिखी गई थीं। स्वामी हरिदास जी सनाढ्य ब्राह्मण थे या सारस्वत, इस पर मेरा कोई खास आग्रह नहीं है। मैं तो उनको महान् भक्त के रूप में ही देखता हूँ। यदि उनके सारस्वत ब्राह्मण होने के संबन्ध में प्रबल प्रमाण उपस्थित किये जाते हैं तो मुझे वैसा मानने में कोई आपत्ति नहीं। श्री-हितहरिवंशजी के जन्म-संवत् में यदि कोई भूल हुई हो तो वह भी मैं मान लूँगा। मुझे इन बातों में कोई आग्रह नहीं। किसी संप्रदाय या व्यक्ति का दिल दुखाने के हेतु से यह जीवनियाँ हर्गिज नहीं लिखी गई थीं। पहले संस्करण के वक्तव्य में मिश्रबन्धुविनोद आदि साहित्यिक ग्रंथों

की कुछ आलोचना की गई थी; तब की अपनी उस 'आलोचना-शैली' से आज मैं बहुत दूर हो जाना चाहता हूँ। इसी से वह सब अंश मैंने निकाल दिया है।

स्वर्गीय श्रीजगन्नाथदास 'रत्नाकर' को यदि स्थान न देता तो निश्चय ही यह संग्रह अपूर्ण रहता। 'रत्नाकरजी' ब्रजभाषा के एक(शायद अंतिम) महाकवि थे, इसमें संदेह नहीं। उनका सारा जीवन ब्रजभाषा की साहित्य-सेवा में ही लगा रहा। भाषा और भाव दोनों पर ही उनका अच्छा खासा अधिकार था। 'उद्धवशतक' तो उनकी एक अमर रचना है। ब्रजमाधुरी-सार में मैंने 'उद्धवशतक' के ही कुछ पद्यों का संकलन किया है। मैं समझता हूँ कि 'शतक' में हमें 'रत्नाकरत्व' की पूरी झांकी मिल जाती है।

ब्रजमाधुरीसार में कुछ ऐसी भी रचनाओं का संग्रह है, जो अभी तक प्रकाशित नहीं हुई हैं:—जैसे, गदाधर भट्ट, श्रीभट्ट, व्यास, सूरदास मदन-मोहन, कृष्णदास,परमानंददास, कुंभनदास,आदि की रचनाएँ। मुझे इन महात्माओं के हस्तलिखित ग्रंथों को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इस छोटे से संग्रह को फिर भी मैं तो अपूर्ण और अस्तव्यस्त ही समझता हूँ। योग्यता और समय दोनों का ही जब यहाँ अभाव है, तब यह आशा करना व्यर्थ है कि मेरे अनाड़ीपने से विद्वानों को कुछ संतोष प्राप्त होगा।

इस ग्रंथ में आये हुए प्रत्येक महात्मा की जीवनी के आदि में एक छप्पय दिया गया है। ऐसा करने की प्रेरणा मुझे भक्तवर नाभाजी की भक्तमाल देखकर हुई। जिनके संबन्ध के नाभाकृत छप्पय न मिले वहाँ बाबू हरिश्चन्द्र और गोस्वामी राधाचरण-रचित 'उत्तरार्द्ध भक्तमाल' और 'नव-भक्तमाल' से काम चला लिया गया। किंतु, इसमें कुछ ऐसे भी महा-नुभाव आ गये जिनके संबंध के छप्पय, उपर्युक्त तीनों भक्तमालाओं में ढूंढ़ने पर भी, न मिल सके। इस मजबूरी की दशा में मैंने तत्संबंधी छप्पय स्वयं बनाकर यथेष्ट स्थान पर रख दिये हैं। अशर्फियों में कौड़ियों मिला देने की मेरी यह ढिठाई, आशा है, दयालु पाठक क्षमा करेंगे।

इस ग्रंथ का संकलन करने की शुभ सम्मति मुझे सब से पहले

गोलोकवासी श्रद्धेय राधाचरणजी गोस्वामी ने दे दी थी। आपने बड़े अनुग्रहपूर्वक कई संत-महात्माओं के पद लिखाकर मुझे प्रोत्साहन दिया था। अतः उनका स्मरण मैं अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति से करता हूँ। एक बात और। मैंने कठिन शब्दों के बोध के लिए प्रत्येक पद्य की कुछ पाद-टिप्पणियां लिख दी हैं। इसका यह अर्थ नहीं है कि मैं इन पद्यों का भली-भाँति अर्थ समझता हूँ। कविता समझने-समझाने की योग्यता वास्तव में मुझमें नहीं है।

ग्रन्थ के तृतीय संस्करण का संशोधन डा० बाबूराम सक्सेना तथा पं० रामलखन शुक्ल के सराहनीय सहयोग से विशेष ध्यानपूर्वक किया गया। संशोधन में इस बात का विचार रखा गया कि कवियों की ऐसी रचना सम्मिलित न की जाय जो अति शृंगारपूर्ण या अश्लील हो। ऐसा करना इसलिए उचित समझा गया कि यह ग्रन्थ अनेक परीक्षाओं के लिए स्वीकृत किया गया है और विद्यार्थियों को उत्तान शृंगार की रचनाओं से दूर ही रखना उचित है।

अंत में, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सर्वस्व पूज्य पुरुषोत्तमदासजी टंडन को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ जिनकी शुभेच्छा से ही सम्मेलन ने ब्रजमाधुरीसार को प्रकाशित किया है।

हरिजन-सेवक-संघ,　　　　वशंवद
दिल्ली　　　　**वियोगी हरि**
दीपावली, सं० १९९०

विषय-सूची

पहला खंड

दूसरा खंड

पहला खंड

श्री सूरदास

छप्पय

उक्ति, चोज, अनुप्रास, वरन, अस्थिति अति भारी।
वचन, प्रीति निर्वाह, अर्थ अद्भुत तुकधारी ॥
प्रतिबिम्बित दिवि दृष्टि हृदय हरि-लीला भासी।
जनम-करम, गुन-रूप सबै रसना जु प्रकासी ॥
विमल बुद्धि गुन और की, जो वह गुन स्रवननि धरै।
'सूर'-कवित सुनि कौन कवि, जो नहिं सिर चालन करै ॥

—नाभाजी

बहुत विचार-विमर्श के पश्चात् हम इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि कविकुल-गुरु भक्ताग्रगण्य श्रीसूरदासजी का जन्म सं० १५४० के लगभग हुआ था। इनका जन्म-स्थान हमने आगरा-मथुरा की सड़क पर रुनकता (रेणुका क्षेत्र) गाँव निश्चित किया है। कुछ लेखकों ने दिल्ली के पास सीही को इनका जन्म-स्थान माना है। सूरदासजी गऊघाट पर रहते थे, और यह गऊघाट आगरा के पास ही है। इनके पिता का नाम रामदास था। यह सारस्वत ब्राह्मण थे। सरदार कवि ने इन्हें, महाकवि चंदबरदायी का वंशज मानकर, ब्रह्मभट्ट सिद्ध किया है, किन्तु 'चौरासी वैष्णव की वार्ता' में इसका कोई उल्लेख नहीं है, और 'वार्ता' ही प्रमाण-कोटि में अधिकांशतः आ सकती है, क्योंकि उसे सूरदासजी के सम सामयिक गोसाईं गोकुलनाथजी ने रचा था।

सूरदासजी जन्मांध नहीं थे, पीछे अन्धे हो गये थे, गऊघाट पर यह महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजी के शरणापन्न हुए। आचार्यजी के अलौकिक उपदेश से श्रीमद्भागवत की छाया पर ब्रजभाषा में 'सूरसागर' के नाम से इन्होंने एक विशद ग्रन्थ का प्रणयन किया। 'सूरसागर' में सवा-लाख पद हैं, पर सिवा पाँच-सात हजार पदों के अभी तक कोई पूर्ण

प्रति नहीं मिली[1]। वह दिन कब आयेगा जब सम्पूर्ण 'सूरसागर' प्रकाशित होकर हिन्दी-साहित्याकाश को जगमगा देगा।

गोसाईं विट्ठलनाथजी ने सूरदास को पुष्टिमार्गीय आठ सर्वोत्तम कवियों में सर्वोच्च स्थान दिया था, जैसा कि स्वयं सूरदासजी ने कहा है:—

थपि गोसाईं करी मेरी आठ मध्ये छाप।

पारासोली गाँव में, गोसाईं विट्ठलनाथ के सामने, संवत् १६२० के लगभग सूरदासजी का शरीरांत हुआ। आपका अन्तिम पद यह कहा जाता है:

खंजन नैन रूप-रस माते।
अतिसै चारु चपल अनियारे, पल-पिंजरा न समाते।
चलि-चलि जात निकट स्रवननि के, उलटि-पलटि ताटंक फँदाते॥
'सूरदास' अंजन-गुन अटके, नतरु अबहिं उड़ि जाते॥

सूरदासजी के अन्तकाल के प्रसंग पर भारतेन्दुजी ने क्या सुन्दर लिखा है:

मन समुद्र भो सूर को, सीप भये चख लाल।
हरि-मुक्ताहल परत ही, मूँदि गये तत्काल॥

सूरदासजी ब्रज-साहित्य के जन्मदाता, परिपोषक एवं प्रेरक कहे जायँ, तो भी कोई अत्युक्ति नहीं। इनमें सन्देह नहीं, कि यह हिन्दी वाङ्मय के वाल्मीकि या व्यास हैं। भक्ति-पक्ष में तो यह भगवतोत्तम उद्धव के अवतार माने जाते हैं। वात्सल्यरस के पद तो आपके अनुपम हैं। इसी प्रकार गोपियों का विरह और उद्धव-संवाद अपूर्व और अत्यन्त चमत्कारपूर्ण है। हमारा तो यह निश्चित मत है कि जिन्हें साहित्य का रसास्वादन लेना है, उन्हें सूरदास के मधुर, भावपूर्ण पदों का अवश्य ही पारायण करना चाहिए। 'सूरसागर' के गायन से लोक-परलोक दोनों ही आनन्द-

[1] इधर गोलोकवासी महाकवि जगन्नाथदास 'रत्नाकर' अनेक वर्षों के घोर परिश्रम के फल-स्वरूप 'सूरसागर' का एक सुन्दर, प्रामाणिक संग्रह छोड़ गये हैं। काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा इसके कुछ भाग प्रकाशित भी हुए हैं। वस्तव में यह संग्रह अपूर्व है।

प्रद बन सकते हैं, इसमें सन्देह नहीं। कवि-सम्राट् सूर के सम्बन्ध में कई भावुक रसिकजनों ने अपनी-अपनी सम्मतियाँ प्रकट की हैं। कतिपय लोक-प्रचलित सम्मतियाँ ये हैं :

तत्व-तत्व सूरा कही, तुलसी कही अनूठि।
बची-खुची कबिरा कही, और कही सब झूठि॥
उत्तम पद कवि गंग को, कविता कों बलबीर।
केशव अर्थ गँभीर कों, सूर तीन गुन धीर॥
किधौं सूर को सर लग्यो, किधौं सूर की पीर।
किधौं सूर को पद लग्यो तन मन धुनत सरीर॥

सूरदास बिन पद रचना अब कौन कबिहि करि आवै!
सूर-कवित सुनि कौन कबि जो नहिं सिर चालन करै!

खोज में सूरदास के निम्नलिखित ग्रंथों का पता चला है :

१. सूर-सारावली; २. सूरसागर (अपूर्ण); ३. साहित्य-लहरी (दृष्टि-कूटक-पदावली), ४. ब्याहलो; ५. नलदमयंती; ६. हरिवंश टीका। इनमें से अंतिम तीन ग्रंथ अप्राप्य हैं और संदिग्ध भी हैं।

संभव है ये पुस्तकें किसी अन्य सूरदास की लिखी हों। 'सूर-सारावली' और 'साहित्य-लहरी,' 'सूरसागर' से संकलित की गई हैं। सुतराम्, 'सूर-सागर' ही सूरदास का एकमात्र बृहद् ग्रन्थ है। इस अगाध सागर में अनेक अमूल्य दिव्य रत्न भरे पड़े हैं। नीचे कुछ पद उद्धृत किये जाते हैं :

बिलावल

चरनकमल बन्दौं हरि राई[1]।
जाकी कृपा पंगु[2] गिरि लंघे, अंधे को सब कछु दरसाई॥
बहिरो सुनै, मूक पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र[3] धराई।
'सूरदास' स्वामी करुणामय, बारबार बन्दौं तिहि पाई॥१॥

१ राजा। २ लंगड़ा। ३ छत्र।

गौरी

मेरी तौ गति[1] पति तुम अंतहि[2] दुख पाऊँ।
हौं कहाय तिहारो अब कौन को कहाऊँ॥
कामधेनु छाँड़ि कहा अजा[3] ना दुहाऊँ।
हय गयंद उतरि कहा गर्दभ चढ़ि धाऊँ॥
कंचन-मनि खोलि डारि कांच गर[4] बँधाऊँ।
कुंकुम कौ तिलक मेटि काजर मुख लाऊँ॥
पाटंबर अंबर तजि गूदर पहिराऊँ।
अंबा-फल छाँड़ि कहा सेवर[5] कौ धाऊँ॥
सागर की लहर छाँड़ि खार[6] कत अन्हाऊँ।
'सूर' कूर आँधरो मैं द्वार परयो गाऊँ॥२॥

सारङ्ग

मेरो मन अनत कहाँ सचु पावै।
जैसैं उड़ि जहाज कौ पंछी, फिरि जहाज पर आवै॥
कमलनैन[7] कौ छाँड़ि महातम, और देव को धावै।
परम गंग को छाँड़ि पियासो, दुर्मति कूप खनावै[8]।
जिन मधुकर अंबुज-रस चाख्यौ, क्यों करील[9] फल खावै॥
'सूरदास' प्रभु कामधेनु तजि, छेरी[10] कौन दुहावै॥३॥

सारङ्ग

आजु जो हरिहिं न सस्त्र गहाऊँ।
तौ लाजौं गंगा जननी कौं, सांतनु[11]-सुत न कहाऊँ॥

१लाज। २पास। ३बकरी। ४गला। ५शाल्मलि वृक्ष का फल, जिसमें सिवा रुई के सार के अतिरिक्त कुछ भी नहीं रहता है। ६खारा। ७श्रीकृष्ण। ८खोदे। ९एक कांटेदार वृक्ष। १०बकरी। ११शांतनु, कुरुवंशी एक प्रतापी राजा, जिन्होंने गंगा के साथ विवाह किया था। बाल-ब्रह्मचारी भीष्म इन्हीं के पुत्र थे।

स्यंदन[1] खंडि महारथ खंडौं, कपिध्वज[2] सहित डुलाऊँ।
इती न करौं सपथ तौ हरि की, छत्रिय-गतिहि न पाऊँ॥
पांडव-दल सन्मुख ह्वै धाऊँ, सरिता रुधिर बहाऊँ।
'सूरदास' रन विजय-सखा[3] कों, जियत न पीठ दिखाऊँ॥४॥

आसावरी

हम भक्तन के, भक्त हमारे।
सुन अर्जुन, परितिग्या मेरी, यह व्रत टरत न टारे॥
भक्तै-काज लाज हिय धरिकै, पाइँ पयादे[4] धाऊँ।
जहँ-जहँ भीर[5] परै भक्तन पै, तहँ-तहँ जाय छुड़ाऊँ॥
जो मम भक्त सों बैर करत है, सो निज बैरी मेरो।
देखि बिचारि भक्त हित कारन, हाँकत हौं रथ तेरो॥
जीते जीति भक्त अपने की, हारे हारि बिचारौं।
'सूरदास' सुनि भक्त-विरोधी, चक्र-सुदर्शन[6] जारौं॥५॥

सारङ्ग

वा पट पीत की फहरानि।
कर धरि चक्र चरन की धावनि[7], नहिं बिसरति वह बानि[8]॥
रथ तें उतरि अवनि आतुर ह्वै, कच[9] रज की लपटानि।
मानों सिंह सैल तें निकस्यौ महामत्त गज जानि॥
जिन गोपाल मेरो प्रन राख्यौ, मेटि वेद की कानि[10]।
सोई 'सूर' सहाय हमारे, निकट भये हैं आनि[11]॥६॥

सोरठ

मना रे[12], माधव सौं करु प्रीति।
काम क्रोध मद लोभ मोह तू, छाँड़ि सबै विपरीत॥

१रथ। २अर्जुन के रथ की पताका, जिसमें हनुमानजी का चित्र अंकित रहता था। ३अर्जुन के मित्र श्रीकृष्ण। ४पैदल। ५कष्ट। ६ विष्णु भगवान् का चक्र। ७दौड़। ८बानिक रूप, ध्यान। ९केश। १०कानि, मर्यादा। ११आकर। १२मन।

भौंरा भोगी बन भ्रमै, मोद न मानै ताप।
सब कुसुमन मिलि रस करै, कमल बँधावै आप॥
सुनि परिमिति पिय प्रेम की, चातक चितवत पारि।
घन-आसा सब दुख सहै, अंत[1] न जाँचै बारि॥
देखौ करनी कमल की, कीनौं जल सौं हेत[2]।
प्रान तज्यौ, प्रेम न तज्यौ, सूख्यौ सरहि समेत॥
मीन बियोग न सहि सकै, नीर न पूँछै बात।
देखि जु तू ताकी गतिहि, रति न घटै तन जात॥
प्रीति परेवा की गनौ, चाह चढ़त आकास।
तहँ चढ़ि तीय जु देखिए, परत छाँड़ि उर स्वास॥
सुमिरि सनेह कुरंग कौ, स्रवननि राच्यौ[3] राग।
धरि न सकत पग पछमनौ[4], सर-सनमुख उर लाग॥
देखि जरनि जड़ नारि की, जरत प्रेत के संग।
चिता न चित फीको भयो, रची जु पिय के रंग॥
लोक वेद बरजत सबै, नयनन देखत त्रास।
चोर न जिय चोरी तजै, सरबस सहै बिनास॥
तैं जु रतन पायो भलो, जान्यौ साधु-समाज।
प्रेम-कथा अनुदिन सुनी, तऊ न उपजी लाज॥
सदा सँघाती[5] आपनो, जिय कौ जीवन-प्रान।
सो तू बिसरयौ सहज हीं, हरि ईश्वर भगवान॥
वेद पुरान स्मृति सबै, सुर नर सेवत जाहि।
महामूढ़ अग्यान-मति, क्यों न सँभारत[6] ताहि॥
खग मृग मीन पतंग लौं, मैं सोधे[7] सब ठौर।
जल थल जीव जिते तिते, कहौं कहाँ लगि और॥

१अनत, अन्यत्र। २प्रेम। ३मोहित हुआ। ४पीछे। ५साथी। ६सेवा करता है। ७ढूँढे।

परिपूरन पावन सखा, प्राननहूँ कौ नाथ।
परमदयालु कृपालु प्रभु, जीवन जाके हाथ॥
गर्भवास अति त्रास में, जहाँ न एकौ अंग[1]।
सुन सठ, तेरो प्रानपति, तहाँ न छाँड़्यो संग॥
दिना रात पोषत रहै, ज्यों तम्बोली पान।
या दुख तें तोहि काढ़ि कैं, लै दीनों पयपान॥
जिन जड़ तें चेतन कियो, रचि गुन[2]-तत्व-विधान[3]।
चरन, चिकुर,[4] कर, नख दिये, नैन, नासिका, कान॥
असन-वसन बहुविधि दिये, औसर-औसर आनि।
मात पिता भैया मिले, नई रुचिहि पहिचानि॥
जम जान्यो सब जग सुन्यो, बाढ़्यौ अजस अपार।
बीच[5] न काहू तब कियो, दूतनि काढ़्यो वार॥
कह जानो कहँवाँ[6] मुओ[7], ऐसे कुमति कुमीच[8]।
हरि सौं हेतु बिसारिकैं, सुख चाहत है नीच॥
जो पै जिय लज्जा नहीं, कहा कहौं सौ बार।
एकहुँ अंक[9] न हरि भजे, रे सठ 'सूर' गँवार॥७॥*

भैरवी

कहाँ लौं बरनौं सुन्दरताइ।
खेलत कुँअर कनक[10]-आँगन में, नैन निरखि छवि छाइ।
कुलहि[11] लसति सिर स्याम सुभग अति, बहुविधि सुरँग बनाइ।
मानों नवघन ऊपर राजत, मघवा[12] धनुष चढ़ाइ।

१ सहाय। २ सत्व रज और तमोगुन। ३ पंचतत्व की रचना। ४ बाल। ५ रक्षा। ६ कहाँ। ७ मरा। ८ बुरी मौत। ९ प्रकार। १० सोना। ११ टोपी। १२ इंद्र।

* कहते हैं कि यह पद सूरदासजी ने बादशाह अकबर को सुनाया था। किंतु सूरदासजी अकबर के दरबार में कभी गये थे या नहीं, यह विवादास्पद है। सूरदास मदनमोहन बादशाह अकबर के दरबार में जाया करते थे।

मनहुँ द्वैज-ससि नखत सहित है, उपमा कहति न आवै री ॥
बरनौं कहा अंग-अँग-सोभा, भाव धरौ जल-रासी री ।
बाल लाल गोपालहिं बरनत, कविकुल करिहै हाँसी री ॥
सोभा सिंधु, अगाध बोध बुध, उपमा नाहिन और री ।
रूप देखि तनु थकित रही हौं, भेद[1] भरे कौ चोर री ॥
जो मेरी अँखियाँ रसना[2] होतीं, कहतीं रूप बनाइ री ।
चिरजीवौ जसुदा कौ नंदन, 'सूरदास' बलि जाइ री ॥९॥

धनाश्री

जसोदा हरि पालनैं झुलावै ।
हलरावै[3] दुलराइ मल्हावै,[4] जोइ-सोइ कछु गावै ॥
मेरे लाल की आउ निंदरिया,[5] काहे न आनि सुआवै ।
तू काहे न बेगि सों आवति, तोकों कान्ह बुलावै ॥
कबहुँ पलक हरि मूँदि लेत हैं, कबहुँ अधर फरकावै ।
सोवत जानि मौन ह्वै रहि-रहि, करि-करि सैन[6] बतावै ॥
इहि अंतर[7] अकुलाइ उठे हरि, जसुमति मधुरे गावै ।
जो सुख 'सूर' अमर मुनि-दुलभ, सो नंद-भामिनि पावै ॥१०॥

ध्रुपद

छोटी-छोटी गुड़ियाँ[8] अँगुरियाँ छोटी,
छबीली नख-ज्योति मोती मानों कंजदलन पर ॥
ललित आँगन खेलै ठुमक-ठुमक[9] डोलै,
झुनक-झुनक[10] बाजैं पैंजनी मृदु मुखर[11] ॥
किंकिनी कलित कटि हाटक रतन-जटित,
मृदु कर-कमल पहुँचियाँ रुचिर वर ॥

१ भेद । २ जीभ । ३ हिलाती है । ४ चित्त बहलाती है । ५ निद्रा । ६ इशारा । ७ इस बीच में । ८ पैर । ९ बालकों का धीरे-धीरे चलना । १० गहनों के बजने का शब्द विशेष । ११ बजने वाला ।

पियरी[१] पिछौरी भीनी और उपमा भीनी[२],
बालक दामिनि मानों ओढ़े बारौ[३] बारिधर।
उर बघनखा कंठ कठुला झडूले बार,
बेनी लटकनि मसि-बिंदु[४] मुनि-मनहर॥
अंजन रंजित नैना चितवनि चित चोरै,
मुख-सोभा पर वारौं अमित असम-सर[५]॥
चुटकी बजावति नचावति नंद-घरनि[६] बाल,
बेलि गावति मल्हावति[७] प्रेम सुघर॥
किलकि-किलकि हँसैं द्वै द्वै दँतुरियाँ लसैं,
'सूरदास' मन बसैं तोतरे वचन बर॥११॥

आसावरी

मैया, मोहि दाऊ[८] बहुत खिझायो।[९]
मोसौं कहत मोल कौ लीनौं, तू[१०] जसुमति[११] कब जायो?
कहा कहौं यहि रिस के मारे, खेलन हौं नहिं जातु।
पुनि-पुनि कहत, कौन है माता, को है तुमरो तातु?
गोरे नंद, जसोदा गोरी, तुम कत स्याम सरीर?
चुटकी दै दै हँसत ग्वाल सब, सिखै देत बलबीर॥
तू मोही कों मारन सीखी, दाउहिं कबहुँ न खीझै।
मोहन कौ मुख रिस समेत लखि, जसुमति सुनि-सुनि रीझै॥
सुनहु कान्ह बलभद्र चवाई[१२]; जनमत ही कौ धूत[१३]।
'सूरस्याम' मो गोधन की सौं[१४], हौं माता तू पूत॥१२॥

कन्हैया

मो देखत जसुमति, तेरो ढोटा[१५], अबहीं माटी खाई।

१पीली। २रसभरी,सुन्दर। ३छोटा बालक। ४दिठौना। ५कामदेव। ६स्त्री। ७खिलाती है। ८दादा, बड़े भाई बलराम। ९तंग किया। १०तुझे। ११यशोदा। १२चुगली करनेवाला। १३धूर्त। १४सौगंद, क़सम। १५पुत्र।

इहि सुनिकैं रिस करि उठि धाई, बाँह पकरि लै आई ॥
इक कर सौं भुज गहि गाढ़े करि[1], इक कर लीनें साँटी[2] ।
मारत हौं तोहिं अवहिं कन्हैया, वेगि न उगलै माटी ॥
ब्रज-लरिका सब तेरे आगे, झूटी कहत बनाई ।
मेरे कहैं नहीं तू मानति, दिखरायो मुख बाई[3] ॥
अखिल ब्रह्मांड-खंड की महिमा, दिखराई मुखमाहीं ।
सिन्धु सुमेर नदी बन पर्वत, चकृत भई मन माहीं ॥
कर तें सांटि गिरति नहिं जानी, भुजा छाँड़ि अकुलानी ।
'सूर' कहै जसुमति मुख मूँदहु, बलि गइ सारंगपानी[4] ॥१३॥

धनाश्री

चोरी करत कान्ह धरि पाये[5] ।
निसि बासर मोहिं बहुत सतायो, अब हरि हाथहिं आये ॥
माखन दधि मेरो सब खायो, बहुत अचगरी[6] कीन्हीं ।
अब तौ फंद परे हौ लालन, तुम्हैं भलै मैं चीन्हीं ॥
दोउ भुज पकरि कह्यो, कित जैहौ, माखन लेउँ मँगाई ॥
तेरी सौं मैं नैकु न चाख्यौं, सखा गये सब खाई ॥
मुख तन[7] चितै विहँसि हँसि दीनों, रिस तब गई बुझाई ।
लियौ उर लाइ ग्वालिनी हरि कों, 'सूरदास' बलि जाई ॥१४॥

गौरी

देखि सखी, बन तें जु बने[8], ब्रज आवत हैं नँदनंदन ।
सीस सिखंडी[9] मुख मुरली तिमि, बन्यौ तिलक उर चन्दन ॥
कुटिल अलक मुख, चंचल लोचन, निरखत अति आनंदन ।
कमल-मध्य मानौ द्वै खंजन, बँधे आइ उड़ि फंदन[10] ॥

१ज़ोर से। २लकड़ी। ३खोलकर, फैलाकर। ४हाथ में धनुष लेने-वाले; विष्णुरूप श्रीकृष्ण। ५पकड़ लिये गये। ६शरारत। ७मुँह की तरफ। ८शृंगार किये हुए। ९मोर-पंख। १०जाल।

अरुन अधर छवि दसन बिराजत, जब गावत कलमंदन[1] ।
मुक्ता मनो लालमनि में पुट, धरे[2] मुरकि बर बंदन ॥
गोप-वेष गोकुल गो चारत, हैं प्रभु असुर-निकन्दन ।
'सूरदास' प्रभु सुजस बखानत, नेति-नेति[3] श्रुति-छन्दन ॥१५॥

भैरवी

मैया, मैं न चरैहों गाइ ।
सिगरे ग्वाल घिरावत[4] मोसों, मेरे पाइँ पिराइ ॥
जो न पत्याहि[5] पूँछ बलदाउहिं, अपनी सौंह[6] दिवाइ ।
यह सुनि-सुनि जसुमति ग्वालनि कौं गारी देति रिसाय ।
मैं पठवति अपने लरिका कौं, आवै मन बहराइ[7] ।
'सूर' स्याम मेरो अति बालक, मारत ताहि रिंगाइ[8] ॥१६॥

सारङ्ग

मेरे साँवरे जब मुरली अधर धरी । सुनि मुनि सिद्ध समाधि[9] टरी ॥
सुनि थके देव विमान । सुरबधू चित्र-समान ॥
ग्रह नखत तजत न रास[10] । पाही बँधे धुनि पास[11] ॥
सुनि आनंद-उमँग-भरे । जल-थल के अचल टरे ॥
चराचर-गति बिपरीति । सुनि बेनु[12]-कल्पित गीति ॥
झरना झरत पाषान । गंधर्व मोहे गान ॥
सुनि खग-मृग मौन धरे । फल दल तृन सुधि बिसरे ॥
सुनि धेनु अति थकित रहे । तृन दंतहुँ नहीं गहे ॥
बछवा न पीवै छीर । पंछी न मन में धीर ॥

१धीरे-धीरे मधुर ध्वनि से । २बंद करके रख दिये । ३"ऐसा नहीं है" अर्थात् ब्रह्म मन और वाणी से परे है । ४इकट्ठा करते हैं । ५विश्वास करती है । ६सौगंद । ७बहलाव । ८चलाकर । ९वह दशा जिसमें योगी अपने मन का आत्यंतिक निरोध कर लेता है । १०राशि; ग्रहों के बारह स्थान । ११पाश; जाल । १२वंशी ।

द्रुम बेली चपल भये। मुनि पल्लव प्रगटि नये॥
जे बिटप चंचल पात। ते निकट को अकुलात॥
अकुलित जे पुलकित गात। अनुराग नैन चुचात[1]॥
सुनि चंचल पवन थके। सरिता-जल चलि न सके॥
सुनि धुनि चली ब्रजनारि। सुत देह गेह बिसारि॥
सुनि थकित भयो समीर। वहै उलटो जमुना नीर॥
मनमोहन मदन गोपाल। तन श्याम नयन विसाल॥
नवनील-तनु घनश्याम। नव पीतपट अभिराम॥
नव मुकुट, नवघन दाम[2]। लावन्य कोटिक काम॥
मनमोहन रूप धर्यो। तव काम को गर्व हर्यो॥
मेरे मदनगोपाल लाल[3]। सँग नागरी ब्रजबाल॥
नवकुञ्ज जमुना-कूल[4]। देखत 'सूरदास' जन फूल[5]॥१७॥

बिलावल

माई[6] री, मुरली अति गर्व काहू बदति[7] नाहीं आजु।
हरि कौ मुखकमल देखि, पायौ सुखराजु॥
देखत कर पीठ[8] ढीठ, अधर छत्रछाहीं।
चमर चिकुर[9] राजत तहँ, सुन्दर सभा माहीं॥
जमुना के जलहिं नाहिं, जलधि जान देति।*
सुर पुर तें सुर बिमान, भुवि बुलाइ लेति॥
थावर[10] चर[11] जंगम जहँ, करति जीति अजीति।
बेद की विधि मेटि चलति, आपने ही रीति॥

१ चू रहा है। २ दामिनी। ३ प्यारा। ४ किनारा। ५ प्रसन्न होता है। ६ यह शब्द 'सखी' के लिए भी आता है। ७ लेखती है, समझती है। ८ आसन। ९ अलकावली रूपी चँवर। १० जड़। ११ चैतन्य।

* 'जमुना.........देति।' मुरली की मनोहर ध्वनि सुनकर यमुना का जल स्थिर हो जाता है।

वह समुद्र ओछे[१] बासन[२] ये, धरैं कहाँ सुखरासि।
सुनहुँ 'सूर' ये चतुर कहावत, वह छवि महाप्रकासि॥२३॥

झँझोटी

रास-रस-रीति[३] नहिं बरनि आवै।
कहाँ वैसी बुद्धि, कहाँ वह मन लहौं, कहाँ इह चित्त जिय भ्रम भुलावै॥
जो कहौं कौन मानै निगम-अगम[४] जो, कृपा बिन नहीं या रसहिं पावै॥
भाव[५] सो भजै, बिन भाव में ये नहीं, भाव ही माहिं भाव यह बसावै॥
यहै निज मन्त्र यह ज्ञान यह ध्यान है, दरस दंपति भजन सार गाऊँ॥
इहै माँग्यो बारबार प्रभु 'सूर' के नैन दोउ रहैं, अरु नित्यनर-देहपाऊँ॥२४॥*

सारङ्ग

बाँसुरी बिधिहूँ तें प्रवीन।
कहिये काहि आहि को ऐसो, कियो जगत-आधीन॥
चारि वदन उपदेस बिधाता, थापी थिर चर नीति।
आठ वदन[६] गर्जति गर्बीली, क्यों चलिये यह रीति॥
बिपुल बिभूति[७] लई चतुरानन, एक कमल करि थान[८]।
हरिकर कमल जुगल पर बैठी, बाढ़्यौ यहि अभिमान॥
एक बेर श्रीपति के सिखये, उन लिय सब गुन गान।
याके तौ नँदलाल लाड़िलो, लग्यौ रहत नित कान॥
एक मराल-पीठि-आरोहन[९], बिधि भयो प्रबल प्रसंस।
यह तौ सकल बिमान किये, गोपीजन-मानस-हंस॥
श्री[१०] बैकुंठनाथ-उर-बासिनि, चाहत जा पद-रैन[११]।

१छोटे। २पात्र। ३भगवान् की भक्ति का रहस्य। ४असमर्थ। ५प्रेम। ६आठ मुख, अर्थात् आठ छेद। ७ऐश्वर्य। ८स्थान। ९मन रूपी हंस; बंशी ने गोपियों के मन पर सवारी की है, अर्थात् उनके मन को मोहित कर लिया है। १०लक्ष्मी। ११रेणु, धूल।

*यह पद वैष्णव-संप्रदाय के अनुसार रास-रस के सिद्धांत का द्योतक है।

ताकौ मुख सुखमय सिंहासन, करि बैसी[1] यह ऐन ॥
अधर-सुधा पी कुल-व्रत टार्‌यौ, नाहिं सिखा नहिं ताग[2] ।
तदपि 'सूर' या नंद-सुवन कों, याही सौं अनुराग ॥२५॥

बिहाग

जसोदा बार-बार यों भाखै ।
है ब्रज में कोउ हितू हमारो, चलत-गोपालहिं राखै ?
कहा काज मेरे छगन-मगन[3] कौ, नृप[4] मधुपुरी[5] बुलायौ ।
सुफलक-सुत[6] मेरे प्रान हनन कों, कालरूप ह्वै आयौ
बरु[7] ये गोधन हरौ कंस सब, मोहि बंदि लै मेलो ।
इतने ही सुख कमल-नयन, मेरी अँखियन आगे खेलो ॥
बासर बदन विलोकत जीवों, निसि निज अंकम लाऊँ ;
तेहि बिछुरत जो जीवों कर्मवस, तौ हँस काहि बोलाऊँ ?
कमल-नैन गुन टेरत-टेरत, अधर बदन कुम्हिलानी ।
'सूर' कहाँ लगि प्रगट जनाऊँ दुखित नंद की रानी ॥२६॥

बिहाग

मेरे कुँअर कान्ह बिन सब कछु, वैसेहि[8] धर्‌यौ रहै ।
को उठि प्रात होत लै माखन, को कर नेत[9] गहै ?
सूने भवन जसोदा सुत के, गुन गुनि[10] सूल सहै
दिन उठि घेरत ही घर ग्वारिन, उरहन[11] कोउ न कहै ॥
जो ब्रज में आनँद हो[12] सो तो; मुनि मनसहु न गहै ।
'सूरदास' स्वामी बिनु गोकुल, कौड़ी हूँ न लहै ॥२७॥

सोहनी

प्रीति करि काहू सुख न लह्यौ ।

१बैठी । २यज्ञोपवीत । ३बचपन में श्रीकृष्ण का छोटा-सा प्यार का नाम । ४कंस से तात्पर्य । ५मथुरा । ६अक्रूर । ७चाहे । ८ज्यों का त्यों । ९मथानी । १०गुणों को याद करके । ११उपालंभ । १२था ।

प्रीति पतंग करी दीपक सों, आपै प्रान दह्यौ ॥
अलिसुत[1] प्रीति करी जलसुत[2] सों, संपति हाथ गह्यौ ।
सारँग[3] प्रीति करी जो नाद[4] सों, सन्मुख बान सह्यौ ।
हम जो प्रीति करी माधव सों, चलत न कछू कह्यौ ।
'सूरदास' प्रभु बिनु दुख दूनो, नैननि नीर बह्यौ ।२८।

सोहनी

बहुत दिन जीवो पपीहा प्यारो ।
बासर रैनि नाँव लै बोलत, भयो बिरह-ज्वर कारो ॥
आपु दुखित पर दुखित जानि जिय, चातक नाँव तुम्हारो ।
देखो सकल बिचारि सखी जिय, बिछुरन कौ दुख न्यारो[5] ।
जाहि लगै सोई पै जानै, प्रेम-बान अनियारो[6] ।
'सूरदास' प्रभु स्वाति बूँद लगि, तज्यौ सिंधु करि खारो ।२९।

सारङ्ग

काहे कों पिय पियहिं रटत हौ, पिय कौ प्रेम तेरो प्रान हरैगो ।
काहे कों लेत नयन भरि-भरि, नयन भरे तें कैसे सूल[7] टरैगो ।
काहे कों स्वांस उसाँस लेति हौ, बैरी बिरह कों दावा[8] जरैगो ।
छाल सुगंध सेज पुहुपावलि[9], हार छुए तें हिय जरैगो ॥
बदन दुराइ बैठि मंदिर में, बहुरि निसापति उदय करैगो ।
'सूर' सखी अपने इन नैननि, चन्द्र चितै जिनि, चंद्र जरैगो ॥३०॥

बिलावल

नाथ, अनाथन की सुधि लीजै ।
गोपी ग्वाल गाइ गोसुत सब, दीन मलीन दिनहिं दिन छीजै[10] ॥
नैन सजल धारा बाढ़ी अति, बूड़त ब्रज किन[11] कर गहि लीजै ।

१भौंरे का बच्चा । २कमल । ३हिरण । ४गान । ५निराला । ६नुकीला ७कांटा । ८आग । ९पुष्पावलि । १०दुबले होते जाते हैं । ११क्यों नहीं ।

इतनी विनती सुनहु हमारी, वारक[1] हूँ पतियाँ[2] लिखि दीजै ॥
चरनकमल-दरसन-नवनौका, करुनासिंधु जगत जसु लीजै ।
'सूरदास' प्रभु आस मिलन की, एक वार आवन व्रज कीजै ॥३१॥

मलार

सखी, इन नैनन तें घन हारे ।
विन ही रितु वरषत निसिवासर, सदा मलिन दोउ तारे[3] ॥
ऊरधस्वास[4]-समीर तेज अति, सुख-अनेक-द्रुम डारे[5] ।
दिसिन्ह सदन करि वसे वचन-खग, दुख पावस के मारे ॥
सुमिरि-सुमिरि गरजत जल छाँड़त, अंसु सलिल के धारे ।
बूड़त व्रजहिं 'सूर' को राखै, विनु गिरिवरधर प्यारे ॥३२॥

मलार

व्रज पर वदरा[6] आये गाजन[7] ।
मधुवन को पठये सुन सजनी, फौज मदन लाग्यौ साजन ॥
ग्रीवा रंध्र[8] नैन चातक जल, पिकगन मुख वाजे वाजन ।
चहुँदिसि तें तनु विरहा घेरो, अव कैसें पावतु भाजन ।
कहियतु हुते स्याम परपीरक[9], आये संकट के काजन ।
'सूरदास' श्रीपति की महिमा, मथुरा लागे राजन ॥३३॥

सोरठ

नैना भये अनाथ हमारे ।
मदनगोपाल वहाँ तें[10] सजनी, सुनियतु दूरि सिधारे ॥
वै हरि जल, हम मीन वापुरी, कैसें जिवहिं निनारे[11] ।
हम चातक चकोर स्यामघन, वदन-सुधा नित प्यारे ॥
मधुवन वसत आस दरसन की, जोइ[12] नैन मग हारे ।

१ एक बार । २ चिट्ठी । ३ आँखों की पुतलियाँ । ४ आह । ५ दहाये । ६ बादल । ७ गरजने के लिए । ८ छेद । ९ दूसरे की पीड़ा जाननेवाले । १० मथुरा से । ११ न्यारे । १२ देखकर ।

'सूरस्याम' कीनीं पिय ऐसी, मृतकहुँ तें पुनि मारे ॥३४॥

आसावरी

राधा-माधव भेंट भई।
राधा माधव, माधव राधा, कीट-भृङ्ग-गति[१] होइ जो गई ॥
माधव राधा के रँग राचे, राधा माधव-रंग-रई।
माधव-राधा-प्रीति निरंतर, रसना कहि न गई ॥
विहँसि कह्यौ, हम-तुम नहिं अंतर, यह कहि ब्रज पठई ॥
'सूरदास' प्रभु राधा माधव; ब्रज-विहार नित नई-नई ॥३५॥

कान्हरा

ऊधो, ब्रज की दसा विचारो।
ता पाछैं यह सिद्धि आपनी, जोग-कथा विस्तारो ॥
जा कारन तुम पठये माधौ, सो सोचौ जिय माहीं।
कितनो बीच विरह परमारथ[२], जानत हौ किधौं नाहीं ?
तुम परवीन[३] चतुर कहियत हौ संतत निकट रहत हौ।
जल बूड़त अवलंब फेन कौ, फिर-फिर कहा गहत हौ ?
वह मुसुकानि मनोहर चितवनि, कैसैं उर तें टारौं ॥
जोग-जुगुति अरु मुकुति परमनिधि, वा, मुरली पर वारौं ॥
जिहि उर कमल-नयन जु बसत हैं, तिहि निर्गुन[४] क्यों आवै ?
'सूरदास' सो भजन बहाऊँ[५], जाहि दूसरो भावै ॥३६॥

श्री

ऊधो, ना हम विरहिनि, ना तुम दास।
कहत-सुनत घट[६] प्रान रहत हैं, हरि तजि भजहु अकास ॥
विरही मीन मरै जल बिछुरे, छाँड़ि जीवन की आस।

१ भृंगी कीड़े को पकड़ कर अपने रूप में मिला लेता है, इसी से कीट-भृंग न्याय एक-रूपता के अर्थ में आता है। २ ज्ञान, आत्मबोध। ३ प्रवीण, चतुर। ४ सत्व, रज और तमोगुण से रहित ब्रह्म। ५ दूर करूँ। ६ शरीर।

दास-भाव नहिं तजत पपीहा, वरु सहि रहत पियास ॥
पंकज परम पंक में विहरत,[1] विधि कियो नीर 'निरास ।
राजिव रवि कौ दोष न मानत, ससि सों सहज उदास[2] ॥
प्रगट प्रीति दसरथ प्रतिपाली, प्रियतम कौ वनवास ।
'सूरस्याम' सों पतिव्रत कीन्हौं, छाँड़ि जगत-उपहास ॥३७॥

बिलावल

सब जग तजे प्रेम के नाते ।
चातक स्वाति[3]-बूँद नहिं छाँड़त, प्रगट पुकारत ताते ॥
समुझत मीन नीर की बातैं, तजत प्रान हठि हारत ।
जानि कुरंग प्रेम नहिं त्यागत, जदपि व्याध[4] सर मारत ।
निमिष चकोर नैन नहिं लावत[5], ससि जोवत जुग बीते।
ज्योति पतङ्ग देखि वपु जारत, भये न प्रेमघट रीते[6] ॥
कहि अलि, क्यों बिसरति वै बातैं, संग जो करी ब्रजराजैं ।
कैसे 'सूरस्याम' हम छाड़ैं, एक देह के काजैं ॥३८॥

धनाश्री

कोउ ब्रज बांचत नाहिंन पाती[7] ।
कत लिखि-लिखि-पठवत नँद-नंदन, कठिन विरह की काँती[8] ॥
नयन सजल, कागद अति कोमल, कर अंगुरी अति ताती ।
परसत जरै बिलोकत भींजति, दुहूँ भाँति दुख छाती ॥
क्यों समुझैं ये अंक[9] 'सूर' सुनु, कठिन मदन सरघाती ।
देखे जियहिं स्यामसुन्दर के, रहहिं चरन दिनराती ॥३९॥

केदारा

उर में माखन-चोर गड़े[10] ।

१ फट या दरक जाता है । २ निरपेक्ष, बेपरवाह । ३ नक्षत्र, जिसमें बरसा हुआ पानी चातक पीता है । ४ बहेलिया । ५ बन्द करता है । ६ खाली । ७ पत्री । ८ छुरी । ९ अक्षर । १० बस गये ।

अब कैसेहुँ निकसत नहिं ऊधो, तिरछे ह्वै जु अड़े ॥
जदपि अहीर जसोदा-नन्दन, तदपि न जात छँड़े[1]।
वहाँ बने जदुवंस महाकुल, हमहिं न लगत बड़े ॥
को बसुदेव, देवकी है को, ना जानैं औ बूझैं।
'सूर' स्यामसुन्दर बिनु देखे, और न कोऊ सूझैं ॥४०॥

बिलावल

ऊधो, मन-माने की बात।
दाख, छोहरा छांड़ि अमृतफल, बिषकीरा बिष खात ॥
जो चकोर[2] को देइ कपूर कोइ, तजि अंगार अघात।
मधुप करत घर कोरे काठ में, बँधत कमल के पात[3] ॥
ज्यों पतंग हित जानि आपनो, दीपक सों लपटात।
'सूरदास' जाको मन जासों, सोई ताहि सुहात ॥४१॥

भैरवी

कहाँ लौं कहिए व्रज की बात।
सुनहु स्याम, तुम बिन उन लोगनि, जैसे दिवस बिहात[4] ॥
गोपी ग्वाल गाइ गो सुत वै, मलिन-बदन कृसगात।
परमदीन जनु सिसिर-हिमीहत[5], अंबुजगन बिन पात ॥
जो कहुँ आवत देखि दूर ते, सब पूँछति कुसलात।
चलन न देत प्रेम-आतुर उर, कर चरनन लपटात ॥
पिक चातक बन बसन न पावहिं, बायस[6] बलिहिं न खात।
'सूरस्याम' संदेसन के डर, पथिक न वहि मग जात ॥४२॥

देश

चित दै सुनौ स्याम प्रवीन।

१ छोड़े। २ एक पक्षी; प्रवाद है कि यह आग खाया करता है। ३ पत्ता। ४ बीतते हैं। ५ पाले से मारा हुआ। ६ कौए व्रज में नहीं जाते हैं और न वहां कुछ खाते ही हैं, क्योंकि वहां के लोग इनसे सदा संदेसा ही कहते रहते हैं।

हरि तुम्हारे विरह राधा, मैं जु देखी छीन ॥
तज्यौ तेल तमोल[1] भूषन, अंग वसन मलीन ।
कंकना कर वाम राख्यौ, गाढ़ भुज गहि लीन ॥
जब सँदेसों कहन सुन्दरि, गवन मोतन[2] कीन ।
खसि[3] मुद्रावलि[4] चरन अरुझी, गिरि धरनि बल हीन ॥
कंठ वचन न बोल आवै, हृदय आँसुनि भीन ।
नैन जल भरि रोइ दीनों, ग्रसित-आपद दीन ॥
उठी बहुरि सँभारि भट[5] ज्यों, परम साहस कीन ।
'सूर' प्रभु कल्यान ऐसैं, जियहि आसा-लीन ॥४३॥

मलार

मधुकर, ये मन बिगरि परे ।
समुझत नाहिं ज्ञान गीता कौ, हरि-मुसुकानि अरे[6] ।
बालमुकुन्द रूप-रस-राचे[7], ताते वक्र[8] खरे ॥
होय न सूधी स्वान-पूँछ ज्यों, कोटिक जतन करे ।
हरिपद नलिन-बिसारत नाहिंन, सीतल उर सँचरे ।
जोग गँभीर[9] है, अंधकूप तेहि, देखत दूरि डरे ॥
हरि-अनुराग-सुहाग-भाग भरे, अमिय तैं गरल[10] गरे ।
'सूरदास' वरु[11] ऐसेहिं रसिहैं, कान्ह-वियोग-भरे ॥४४॥

धनाश्री

ऊधो, मन नाहीं दस-बीस ।
एक हुतो सो गयो स्यामसँग, को आराधै ईस ?
भई अति सिथिल सबै माधव बिनु, जथा देह बिनु सीस ।
स्वासा अटकि रही आसा लगि, जीवहिं कोटि-बरीस[12] ॥

१ तांबूल, पान । २ मेरी ओर । ३ ढीली होने के कारण खिसककर । ४ अँगूठियाँ । ५ योद्धा । ६ अड़े हुए, फँसे हुए । ७ रँगे हुए । ८ टेढ़ा । ९ गहरा । १० विष । ११ चाहे, भले ही । १२ वर्ष ।

तुम तौ सखा स्यामसुन्दर के, सकल जोग के ईस।
'सूरजदास' रसिक की बतियाँ, पुरवौ मन जगदीस ॥४५॥

ईमन

ऊधो, मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं।
वृन्दावन गोकुल-तन[1] आवत, सघन तृनन कीं छाहीं॥
प्रातसमय माता जसुमति अरु, नंद देखि सुख पावत।
माखन-रोटी दह्यो[2] सजायो,[3] अति हित साथ खवावत।
गोपी ग्वाल-बाल-संग खेलत, सब दिन हँसत सिरात[4]।
'सूरदास' धनि-धनि ब्रजवासी, जिन सों हँसत ब्रजनाथ ॥४६॥

ईमन

अब मोहिं निसि देखत डर लागै।
बार-बार अकुलाइ देह तें, निकसि-निकसि मन भागै॥
प्राची[5] दिसा पेखि पूरन ससि, ह्वै आयो तन ताती[6]।
मानहुँ मदन बदन बिरहिन को, करि लीनों रिस राती॥
भ्रकुटी कुटिल कलंक चाप मनु, अति रिसि सों सर साधे।
चहुँधा किरिनि पसारे पासिन[7], हठि कर जोगिन बाँधे॥
सुनि सठ सोइ प्रानपति मेरो, जाको जसु जग जानै।
'सूर' सिंधु बूड़त तें राख्यो, ताहू कृतहि[8] न मानै ॥४७॥

मलार

हमारे माई, मोरउ बैर परे।
घन गरजे बरजे नहिं मानत, त्यों-त्यों रटत खरे॥
करि इक ठौर बीनि इनके पँख, मोहन सीस धरे।
याही तें हमहीं कों मारत, हरि ही ढीठ करे॥
कह जानिए, कौन गुन सखि री, हमसों रहत अरे।

१ ओर। २ दही। ३ सजा हुआ। ४ बीतता है। ५ पूर्व। ६ गरम।
७ जाल में फँसाने को। ८ उपकार को।

'सूरदास' परदेस बसति हरि, ये बन तें न टरे ॥४८॥

मालकोश

ब्रजवासिन सों कह्यौ, सबन तें ब्रज हित मेरे।
तुम सों मैं नहिं दूर रहत हौं, हौं सबहिन के नेरे[1]॥
भजै मोहिं जो कोइ भजौं मैं, निसिदिन तिनकों भाई।
मुकुर[2] माहिँ ज्यों रूप अपुनो, आपुन सम दरसाई॥
यह कहिकैं सम देत सकलजन, नयन रहे जल छाई।
'सूरस्याम, कौ प्रेम कछू अब, मोपै कह्यो न जाई ॥४६॥

बिलावल

नमो नमस्ते बारंबार। मदन-सदन[3] गोविंद मुरार॥
माया लोभ क्रोध अरु मान। ये सब त्रय गुन[4] फाँस समान॥
काल सदा सर साधे रहै। क्यों करि नर तुव सुमिरन कहै॥
तुम निर्गुन उदय निराकार। 'सूर' अमर हम रहे पचि हार॥
तुमरो मर्म न जानै सार। नर बपुरो क्यों करै विचार?
अरुन[5] असित[6] सित[7] वपु अनुहार। करत जगत में तुम अवतार।
सो जग को मिथ्या कहि जाय? जहाँ तरै तुम्हरे गुन गाय॥
प्रेमभक्ति बिनु मुक्ति न होइ। नाथ, कृपा करि दीजै सोइ॥
और सकल हम देख्यो जोइ। तुम्हारी कृपा होइ सो होइ॥
इह तनु है प्रभु जैसे ग्राम। यामें सब्दादिक[8] विस्राम॥
अधिष्ठाता तुम हौ भगवान्। जान्यो जगत न तुम अस्थान[9]॥
तुव स्वासा में पुहुमी[10] नाथ। स्वास-रूप हम लख्यो न बात॥
कहा कहि तुम्हरी अस्तुति करैं। बानी नमो नमो उच्चरैं॥

१ पास। २ दर्पण। ३ कामदेव के समान सुन्दर। ४ सत्व, रज और तम। ५ लाल, द्वापर में भगवान् का रंग लाल माना गया है। ६ कृष्ण, कलि में भगवान् का रंग काला माना गया है। ७ सफेद, सत्ययुग में, श्वेतवर्ण माना गया है। ८ शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श, ये पंचेंद्रियों के विषय हैं। ९ स्थान। १० पृथ्वी।

जगत-पिता तुमहीं हौ ईस । यातें हम विनवत जगदीस ॥
तुम-सम द्वितिया और न आहि । पटतर देहि नाथ हम काहि ।
सुक[1] जैसे वेद-स्तुति गाई । तैसे हीं मैं कहि समुझाई ॥
'सूर' कह्यौ श्रीमुख उच्चार । कहै-सुनै सो तरै भवपार ॥५०॥

जैतिश्री

जैसैं राखहु वैसेहिं रहौं ।
जानत दुख-सुख सब जन के तुम, मुख करि कहा कहौं ?
कबहुँक भोजन लहौं कृपानिधि, कबहूँ भूख सहौं ।
कबहुँक चढ़ौं तुरंग[2] महागज, कबहुँक भार वहौं[3] ॥
कमल-नयन घनश्याम मनोहर, अनुचर भयो रहौं ।
'सूरदास' प्रभुभक्त कृपानिधि, तुम्हरे चरन गहौं ॥५१॥

धनाश्री

सुआ[4], चलु वा वन कौ रसु लीजै ।
जा वन[5] कृष्ण-नाम-अमरित-रस, श्रवन-पात्र भरि पीजै ॥
को तेरो पुत्र पिता तू काकौ, मिथ्या भ्रम जग केरो ॥
काल-मँजार[6] लै जैहै तोकों, तू कहै 'मेरो-मेरो' ॥
हरि नाना रस मुकति-छेत्र चलु, तोकों हौं दिखराऊँ ।
'सूरदास' साधुनि की संगति, बड़े भाग्य जो पाऊँ ॥५२॥

बिहाग

रे मन मूरख, जन्म गँवायौ ।
करि अभिमान विषयरस रॉच्यो[7], स्यामसरन नहिं आयौ ॥
यह संसार फूल सेमर[8] कौ, सुन्दर देखि भुलायौ ।

१ वेदव्यास के पुत्र श्री शुकदेव जी । २ घोड़ा । ३ ढोऊं । ४ तोता; यहाँ जीव से आशय है । ५ वह वन अर्थात् दिव्य गोलोक । ६ बिल्ली । ७ रंग गया, लीन हो गया । ८ शाल्मलि; इस पेड़ में सिर्फ लाल-लाल फूल होते हैं, जिन में बड़ी मुलायम रुई निकलती है ।

चाखन लाग्यौ रुई गई उड़ि, हाथ कछू नहिं आयौ ॥
कहा भयौ अब के मन सोचें, पहिलें नाहिं कमायौ।
कहत 'सूर' भगवंत-भजन बिनु, सिर धुनि-धुनि पछितायौ ॥५३॥

गौरी

जा दिन मन पंछी[1] उड़ि जैहैं।
ता दिन तेरे तन-तरुवर के, सबै पात झरि जैहैं।
घर के कहैं, वेगि ही काढ़ौ, भूत भयें कोउ खैहैं।
जा प्रीतम सों प्रीति घनेरी, सोऊ देखि डरैहैं।
कहँ वह ताल[2] कहाँ वह सोभा, देखत धूरि उड़ैहैं।
भाइ बंधु अरु कुटुँब-कबीला[3], सुमिरि-सुमिरि पछितैहैं।
बिनु गोपाल कोउ नहिं अपनो, जसु अपजसु रहि जैहैं ॥
जो 'सूरज' दुर्लभ देवन कों, सतसंगति में पैहैं ॥५४॥

सारङ्ग

रे मन, जन्म अकारथ[4] जात।
बिछुरे मिलन बहुरि कब ह्वै है, ज्यों तरुवर के पात ॥
सन्निपात[5] कफ कंठ-बिरोधी, रसना टूटी बात।
प्रान लिये जम जात मूढ़मति, देखत जननी तात ॥
छिन इक माहिं कोटि जुग बीतत, पीछैं नरक की बात।
यह जग प्रीति सुआ सेमर कौ, चाखत ही उड़ि जात ॥
जम के फंद नाहिं परि बौरे, चरनन चित्त लगात।
कहत 'सूर' बिरथा यह देही, अंतर क्यों इतरात[6] ॥५५॥

सारङ्ग

कहाँ सुख ब्रज कौ सो संसार।

१ पक्षी, प्राण। २ शरीर। ३ स्त्री-पुत्रादि। ४ व्यर्थ। ५ त्रिदोष नाम का महा भयंकर रोग। ६ घमंड करता है।

कहाँ सुखद बसीबट[1] जमुना, यह मन सदा विचार ॥
कहँ बनधाम, कहाँ राधा सँग, कहाँ संग ब्रज-बाम।
कहँ रस रास बीच अंतरसुख[2], कहाँ नारि तनु दाम ॥
कहाँ लता, तरु-तरु प्रति झूलनि, कुंज-कुंज बनधाम।
कहाँ बिरह-सुख[3] बिनु गोपिन सँग, 'सूरस्याम' मम काम ॥५६॥

भैरवी

सदा एकरस एक अखंडित, आदि अनादि अनूप।
कोटि कल्प बीतत नहिं जानत, बिहरत जुगलस्वरूप[4] ॥
सकल तत्व[5] ब्रह्मांड देव पुनि, माया सब विधि काल।
प्रकृतिरूप श्रीपति[6] नारायण, सब हैं अंस गोपाल[7] ॥
कर्मयोग पुनि ज्ञान, उपासन, सबहीं भ्रम भरमायौ।
श्रीवल्लभ[8] गुरु तत्व[9] सुनायौ, लीला-भेद बतायौ ॥
ता दिन तें हरि-लीला गायो, एक लच्छ पद बंद।
ताको सार 'सूर सारावलि,' गावत अति आनन्द[10] ॥५७॥*

बिलावल

हरि हरि हरि हरि सुमिरन करौ। हरि-चरनारबिंद उर धरौ ॥

१ एक वटवृक्ष, जिसके नीचे खड़े होकर श्रीकृष्ण बंशी बजाया करते थे। आज भी वह स्थान 'बंशीबट' के नाम से प्रसिद्ध है। २ आत्मानन्द। ३ बिरहानन्द, विरह में भी बड़ा भारी आनन्द होता है। अत्यन्त विरहासक्ति ही भक्ति की पराकाष्ठा है। ४ राधा-कृष्ण। पचीस तत्व। ६ लक्ष्मीपति विष्णु। ७ महाविष्णु। ८ श्रीवल्लभाचार्य, जिन्होंने विष्णुस्वामि संप्रदाय के अन्तर्गत 'पुष्टिमार्ग' सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। सूरदासजी इनके पट्टशिष्य थे। ९ सारस्वरूपा प्रेमपरा भक्ति।

* इस पद में सूरदासजी अपना वैष्णव सिद्धान्त कह रहे हैं। युगल-स्वरूप राधाकृष्ण निरंतर विहार करते हैं। उस विहारस्थली में केवल गोपियों (मुक्त जीव, जिन्हें कबीर साहब 'हंस' कहते हैं) की पहुँच है। वहाँ काल की गति नहीं। प्रकृति, पुरुष, काल आदि सब नित्यविहारी के अंश मात्र हैं।

हरि की कथा होइ जब जहाँ। गंगाहूँ चलि आवै तहां॥
जमुना सिंधु सरस्वति आवैं। गोदावरी विलंब न लावैं॥
सब तीरथ को वासा[1] तहाँ। 'सूर' हरि-कथा होवै जहां[2] ॥५८॥

---

१ वास। २ यह पद निम्नलिखित श्लोक का छायानुवाद जान पड़ता है।
तत्रैव गंगा यमुना च वेणी, गोदावरी सिंधु सरस्वती च।
सर्वाणि तीर्थानि वसंति तत्र, यत्राच्युतोदारकथाप्रसंगः॥

श्रीनंददास

छप्पय

लीला-पद-रस-रति-ग्रंथ-रचना में नागर।
सरस-उक्ति-युत युक्ति, भक्ति-रस-गान-उजागर॥
प्रचुरथ पथ लौं सुजसु रामपुरग्राम-निवासी।
सकल सुकल-संवलित भक्त-पद-रेनु-उपासी॥
चंद्रहास-अग्रज-सुहृद, परमप्रेम-पथ में पगे।
नंददास आनन्दनिधि, रसिक सुप्रभु-हित-रँगमगे॥

—नाभाजी

उपर्युक्त छप्पय से केवल इतना ही प्रकट होता है कि नंददास जी रामपुर ग्राम के निवासी थे, और चन्द्रहास के जेठे भाई से इनकी घनिष्ठ मित्रता थी। अब प्रश्न यह है कि रामपुर ग्राम और चंद्रहास से यहाँ क्या तात्पर्य है? पर इसमें संदेह नहीं, कि छप्पय में उल्लिखित नंददास अष्टछाप के ही नंददास हैं, अन्य नहीं। यह बात बहुत प्रचलित है कि नंददासजी गोसाईं तुलसीदास के बड़े या छोटे भाई थे। इसका प्रमाण "२५२ वैष्णव की वार्ता" नामक ग्रन्थ माना जाता है। स्वर्गीय बाबू राधाकृष्णदासजी ने स्वसंपादित 'रासपंचाध्यायी' में लिखा है, कि "२५२ वैष्णवों की वार्ता" में नंददासजी 'सनौढ़िया' ब्राह्मण तुलसीदास के छोटे भाई थे। ये दोनों भाई श्री स्वामी रामानंदजी के शिष्य थे। इत्यादि।" 'मिश्रबंधुविनोद' में लिखा है, कि "वार्ता देखने से प्रकट हुआ कि उसमें नंददास को 'केवल' (!) ब्राह्मण और गोस्वामी तुलसीदास का भाई कहा गया है। इससे प्रकट है कि नंददासजी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे।" बड़े आश्चर्य की बात है कि एक ही 'वार्ता' से एक महोदय सनौढ़िया ब्राह्मण लिख रहे हैं, तो दूसरे केवल या कान्यकुब्ज[1];

हमारे सामने वैष्णव ठाकुरदास सूरदास द्वारा प्रकाशित और मुंबई के जगदीश्वर प्रेस में मुद्रित '२५२ वैष्णव की वार्ता' प्रस्तुत है। यह संस्करण संवत् १९४७ का है। उसमें २४ पृष्ठ पर नंददासजी के संबन्ध में जो लिखा है उसे हम यहां अविकल उद्धृत करते हैं :

"सो वे नंददास तुलसीदास के छोटे भाई हते। सो विनकूँ नाच तमासा देखबे को तथा गान सुनबे को सौक बहुत हतो।" इत्यादि।

नन्ददासजी की 'वार्ता' में हमें न तो सनौढ़िया का ही और न केवल ब्राह्मण का ही कोई उल्लेख मिला है। 'वार्ता' में श्रीरामचंद्र जी के अनन्य भक्त तुलसीदास का नाम अवश्य आया है, किन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि यह तुलसीदास 'रामचरित-मानस' के लेखक गोसाईं तुलसीदास ही थे। दूसरे कहीं भी गोसाईंजी ने नंददासजी के संबंध में कहीं कोई चर्चा नहीं किया है। तीसरे, गोसाईं तुलसीदास ऐसे हठधर्मी भी नहीं थे कि वे नंददास को द्वारिकाधीश रणछोड़जी का दर्शन करने के लिए मना करते, जैसा कि 'वार्ता' में लिखा है। सारांश यह, कि नंददास और गोसाईंजी का सहोदर होना सिद्ध नहीं होता। यह भी ठीक-ठीक मालूम नहीं हो सकता, कि नंददासजी सनौढ़िया थे, सरयूपारीण थे, केवल या कान्यकुब्ज थे, अथवा कोई और जाति के। यदि गोसाईं तुलसीदास से ही किसी प्रकार संबन्ध जोड़ना इष्ट हो, तो यह संभव हो सकता है कि ये दोनों महानुभाव गुरु-भाई रहे हों।

राजा प्रतापसिंह-कृत 'भक्तकल्पद्रुम' (जो 'विनोद' में भी प्रामाणिक समझा गया है) में, नाभाजी के ही अनुसार, नंददास को रामपुर-

१ समझ में नहीं आता कि 'हिंदी-नवरत्न' में यह कैसे लिखा गया कि "पूरा ज़िला बांदा और राजापुर के इर्द-गिर्द कान्यकुब्ज द्विवेदियों की बस्ती है, न कि सरवरिया ब्राह्मणों की।" राजापुर ख़ास में कुछ घर कान्यकुब्ज ब्राह्मणों के आज-कल हैं। इर्द-गिर्द तो कान्यकुब्ज शायद हैं ही नहीं। उधर सरयूपारीण ब्राह्मण ही पाये जाते हैं।

निवासी चंद्रहास का पुत्र माना है। नंददास को चंद्रहास का पुत्र लिखकर राजा साहब ने यह भारी भूल की है। नाम, ग्राम और कुल के संबन्ध में हमें नाभाजी की 'भक्तमाल' ही अधिक प्रामाणिक जँचती है। इसका यह अर्थ है कि 'वार्ता' में उल्लिखित चरित्र असत्य है। 'वार्ता' अक्षरशः सत्य है किंतु उससे यह ध्वनि नहीं निकलती कि नंददास कहाँ के निवासी थे, किस तुलसीदास के भाई थे और किस जाति के थे।

'वार्ता' में लिखा है कि द्वारिका जाते हुए नंददासजी सिंधुनद ग्राम में एक रूपवती खत्रानी पर आसक्त हो गये। यह उस स्त्री के घर की फेरी दिया करते थे। घरवालों ने इन्हें बहुत कुछ हटाया, पर यह वहाँ से किसी तरह न हटे। इन्होंने उस सुंदरी खत्रानी को रणछोड़नाथ और उसके घर को द्वारिका समझ लिया। लाचार होकर घरवाले उस स्त्री को लेकर इनसे पिंड छुड़ाने गोकुल को चले। आप भी उन लोगों के पीछे-पीछे चलने लगे। गोकुल गाँव में आकर गोसाईं बिट्ठलनाथजी के सदुपदेश से इनका सारा विषय-मोह दूर हो गया और कुछ दिनों के बाद यह गोसाईंजी के पट्टशिष्यों में गिने जाने लगे। श्रीनवनीत-प्रियाजी के आगे नंददासजी प्रायः कृष्ण-कीर्त्तन किया करते थे। इनकी भक्ति-भाव-भरी पदावली पर गोसाईं विट्ठलनाथजी ऐसे मुग्ध हो गये कि उन्हें 'अष्टछाप' में उपयुक्त स्थान दे दिया। अष्टछाप में यदि सूरदास सूर्य हैं तो नंददास निश्चय ही चंद्रमा हैं। इन्होंने 'रासपंचाध्यायी', दशमस्कंधभागवत', 'रुक्मिणीमंगल' 'रूपमंजरी', 'रसमंजरी', 'विरह मंजरी 'नामचिंतामणिमाला', 'अनेकार्थमाला', 'दानलीला' मानलीला', 'अनेकार्थमंजरी' 'ज्ञानमंजरी', 'श्यामसगाई' और 'भ्रमरगीत' की रचना की। हितोपदेश और गद्यात्मक 'नासिकेतपुराण' भी इनके बनाये कहे जाते हैं। अबतक 'रासपंचाध्यायी', 'भ्रमरगीत', 'अनेकार्थमंजरी' और 'नाममाला' ये चार पुस्तकें ही प्रकाशित हुई हैं। 'रासपंचाध्यायी' के तीन संस्करण हो चुके हैं। एक काशी नागरी-प्रचारिणी सभा का, दूसरा बाबू बालमुकुंद गुप्त द्वारा संपादित 'भारतमित्र' का और

तीसरा श्री व्रजमोहन लाल विशारद द्वारा संपादित।

नन्ददासजी के ग्रन्थ इतने रोचक और भावपूर्ण हैं, कि उनकी टक्कर लेनेवाले ग्रन्थ हिंदी में बहुत ही कम होंगे। कृत्रिमता का तो कहीं नाम भी नहीं। 'रासपंचाध्यायी' को यदि हम हिंदी का 'गीतगोविंद' कहें, तो अत्युक्ति न होगी। रोला छंद लिखने में नन्ददासजी जितने सफल हुए हैं उतना कोई अन्य कवि नहीं हुआ। छंदबद्ध कोष लिखनेवालों में भी यही सर्वप्रथम आते हैं। 'अनेकार्थमाला' में एक-एक शब्द के कई-कई अर्थ दिये हैं। उदाहरण के लिए 'सारङ्ग' शब्द नीचे दिया जाता है :

पिक, चामर, कच, संघ, कुच, कर, वायस हू होय।
खंजन, चंचल, मिरगमद, काम, विसन है सोय॥
छिती, तलाव, भुजंग पुनि, को वड़ भानु समान।
सारँग श्रीभगवान कौं, भजिए कृपानिधान॥
सारँग सुन्दर कौं कहत, रात दिवस, वड़ भाग।
खग, पानी अरु धन कहिय, अंबर, अवला, राग॥
रवि, ससि, दीपक, गगन हरि, केहरि, कुंभ, कुरंग।
चातक, दादुर, दीप, हल, ये कहिए सारंग॥

'नाममाला' में और भी अधिक चमत्कार है। नामों के साथ-साथ साहित्यिक सामग्री भी इसमें जुटाई गई है। जैसे :

अग, नग, भूभृत, दराभृत, शृंगी, शिखरी होय।
शैल, शिलोच्चय, गोत्र, हरि, अद्रि, ग्राम पुनि सोय॥
गिरि गोवर्धन वाम कर, धर्‌यौ स्याम अभिराम।
तो डरतें वा धकधकी, गई न अवलौं वाम॥

इन रचनाओं के अतिरिक्त आपके कुछ फुटकर पद भी मिलते हैं। किन्तु सर्वोत्तम रचना में 'रासपंचाध्यायी' और 'भ्रमरगीत' ये दो ग्रन्थ ही आते हैं। 'मिश्रबन्धुविनोद' में नन्ददासजी 'पद्माकर-श्रेणी' में रखे गये हैं। यह निर्णय सुरसिक साहित्य-मर्मज्ञ पाठकों पर ही छोड़ा जाता है, कि नन्ददास और पद्माकर में कितना कुछ अंतर है।

नन्ददास के समसामयिक ध्रुवदासजी ने इनकी भक्ति-भावना और भाव-रसिकता को बड़ी ही सुन्दर पंक्तियों में अंकित किया है :

नंददास जो कछु कह्यौ, राग-रंग में पागि।
अच्छर सरल सनेहमय, सुनत होति हिय जागि॥
रसिक-दसा अद्भुत हुती, करत कवित्त सुढार।
बात प्रेम की सुनत हीं, छुटत प्रेमजल-धार॥
रसिक बावरो-सो फिरै खोजत हित की बात।
आछे रस के वचन सुनि, बेगि बिवस ह्वै जात॥

वास्तव में, नन्ददासजी परमभागवत; महान् भावुक और उच्च प्रतिमावान् सत्कवि थे। इनकी रचना हृदय-वेधिनी, मर्म-स्पर्शिनी, सरस और सजीव है। नीचे नन्ददासजी की सरस रचनाओं में से कुछ पद्य उद्धृत किये जाते हैं :

रासपंचाध्यायी

रोला

वंदन करौं कृपानिधान श्रीसुक सुभकारी।
सुद्ध ज्योतिमय रूप, सदा सुन्दर अविकारी॥
हरि-लीला-रस मत्त मुदित नित विचरत जग में।
अद्भुतगति, कहुँ नहीं अटक, ह्वै निकसे मग में॥
नीलोत्पल[1]-दल-स्याम अंग नवजोवन भ्राजै।
कुटिल अलक मुखकमल, मनों अलि-अवलि विराजै॥
सुन्दर भाल विसाल दिपति जनु निकर निसाकर।
कृष्ण-भक्ति-प्रतिबिंब-तिमर[2] कों कोटि दिवाकर॥
कृपा-रंग-रस-अयन नयन राजत रतनारे[3]।
कृष्ण-रसामृत-पान-अलस कछु घूमघुमारे[4]॥
स्रवन कृष्ण-रस-भवन गंड-मंडल भल दरसैं।
प्रेमानंद-मलिंद[5] मंद मुसकनि मधु बरसैं॥

१नीला कमल। २अंधेरा, अज्ञान। ३लाल ४उनींदे, मस्त। ५भ्रमर।

उन्नत नासा, अधर-बिंब, सुक की छवि छीनी।
तिन बिच अद्‌भुत भाँति लसत कछु इक मसिभीनी[1] ॥
कंबु-कंठ की रेख देखि हरि धर्म प्रकासैं।
काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह जिहिं निरखत नासैं ॥
उरवर पर अति छवि की भीरा[2] वरनि न जाई।
जेहि भीतर जगमगत[3] निरंतर कुंवर कन्हाई ॥
सुन्दर उदर उदार रोमावलि राजति भारी।
हिय सरवर रसभरी चली मनु उमगि पनारी[4] ॥
ता रस[5] की कुंडिका[6] नाभि सोभित अस गहरी।
त्रिबली तामें ललित भाँति जनु उपजति लहरी ॥
अति सुदेस कटि देस सिंह सोभित सघनन अस।
जोवन-मद आकरसत[7], बरसत प्रेम-सुधा-रस ॥
गूढ़ जानु, आजानुबाहु, मद-गज गति लोलैं[8]।
गंगादिकन पवित्रकरन अवनी में डोलैं ॥
सुन्दर पद अरबिंद मधुर मकरंद मुग्ध जहँ।
मुनि-मन-मधुकर-निकर[9] सदा सेवत लोभी तहँ ॥
जब दिनमणि श्रीकृष्ण द्रगन तें दूरि भये दुरि।
पसरि परयो अँधियार सकल संसार घुमड़ घुरि ॥
तिमिर ग्रसित सब लोक-ओक-दुख देखि दयाकर।
प्रगट कियौ अद्‌भुत प्रभाव भागवत-विभाकर[10] ॥
जे सँसार अँधियार अगर में मगन भये वर।
तिन हित अद्‌भुत दीप प्रगट कीनों शु कृपाकर ॥

१मसि भीजना। ओठों पर मूछों का कुछ-कुछ दिखाई देना। इसे 'रेख निकलना' भी कहते हैं। यह वर्णन किशोरावस्था का है। २पुंज छोटी-सी पतली धारा। ३झलकते हैं। ४पुंज। ५प्रेमरूपी जल। ६कुंडी, गड्ढा। ७खींचता है। ८हिलती-डुलती। ९समूह। १०सूर्य।

'श्रीभागवत' सुनाम परम अभिराम, परम मति।
निगम-सार[1] सुकुमार[2] बिना गुरु कृपा अगम अति॥
ताहीं में मनि अति रहस्य यह पंचाध्यायी।
तन में जैसें पंचप्रान, असि सुक मुनि गाई॥
परम रसिक इक मित्र[3] मोहि तिन आग्या दीनीं।
ताहीं तें यह कथा जथामति भाषा कीनीं॥१॥...

ताहीं छिन उडुराज उदित रसरास-सहायक।
कुमकुम-मंडित-वदन प्रिया जनु नागरि-नायक॥
कोमल किरन अरुन मानों बन ब्याप रही यों।
मनसिज खेल्यौ फागु घुमड़ घुरि रह्यौ गुलाल ज्यों॥
फटिक[4]-छटा-सी किरन कुञ्ज-रंध्रन[5] जब आईं।
मानहुँ वितन[6] वितान सुदेस[7] तनाव तनाईं॥
मन्द-मन्द चल चारु चंद्रमा अति छबि पाई।
झलकत है जनु रमारमन[8] पिय कौतुक आई॥
तब लीनीं कर कमल जोग-मायासी[9] मुरली।
अघटत-घटना-चतुर, बहुरि अधरन सुर जु-रली[10]॥
जाकी धुनि तें निगम अगम[11] प्रगटित बड़नागर।
नादब्रह्म की जानि मोहिनी सब सुख-सागर॥
पुनि मोहन सों मिली कछू कल गान कियौ अस।
वाम विलोचन बास तियन मनहरन होय जस॥

१वेदों का निचोड़। २नित्यकिशोर शुकदेव। ३मित्र का नाम स्पष्ट नहीं किया गया है। कहते हैं, नंददासजी के मित्र से यहां गंगाबाईजी से आशय है। श्रीगोसाईं विट्ठलनाथ जी की शिष्या थी। यह कविता में अपना नाम "श्री विट्ठल गिरिधरन" लिखा करती थीं। ४स्फटिक; बिल्लौर पत्थर। ५छेद। ६अनंग, कामदेव। ७सुन्दर। ८विष्णु। ९पराप्रकृति, परमेश्वर की आदिशक्ति। १०मिली हुई। ११आगम, शास्त्र

मोहन-मुरली नाद स्रवन कीनों सब किनहूँ।
जथा-जथा-विधि रूप, तथा विधि परस्यौ तिनहूँ॥
तरनि[1]-किरन ज्यों मनि पखान[2] सबहिन के दरसे।
सुरजकांति मनि बिना नहीं कहुं पावक परसे॥
सुनत चलीं ब्रजबधू गीत-धुनि कौ मारग गहि।
भवन भीत द्रुम-कुञ्ज-पुञ्ज कितहूँ अटकी नहिं॥
नाद-अमृत कौ पंथ रँगीलो सुच्छम भारी॥
तेहिं मग ब्रजतिय चलें, आन कोउ नहिं अधिकारी॥
सुद्धप्रेममय रूप पंचभूतनि[3] तें न्यारी।
तिन्हैं कहा कोउ कहै, ज्योति-सी जगत[4]-उजारी॥
जे रुकि गईं घर अति अधीर गुनमय सरीरबस[5]।
पुन्य-पाप-प्रारब्ध-रच्यो तन नाहिं पच्यौ रस॥
परम दुसह श्रीकृष्ण-बिरह-दुख ब्याप्यो जिन में।
कोटि बरस लगि नरक-भोग-अघ भुगते छिन में॥
धातु-पात्र पापान[6] परसि कंचन ह्वै सोहै।
नंदसुवन-सों परम प्रेम यह अचरज को[7] है?
ते पुनि तिहिं मग चलीं रँगीलीं तजि ग्रह-संगम।
जनु पिंजरन तें उड़े, छुटे नवप्रेम-विहंगम॥२॥

दोहा

कुञ्ज-पुञ्ज ढूँढत फिरी, खोजत दीन दयाल।
प्राननाथ पाये नहीं, विकल भई ब्रज-बाल॥

१सूर्य। २सूर्यकांतमणि; कहते हैं कि सूर्य के तेज से यह पत्थर आप से आप पिघलने लगता है। ३पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पाँच तत्त्व। ४बिजली। ५बुद्धि, सुख-दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न आदि शरीर के गुण हैं। ६पारस पत्थर से आशय है। प्रवाद है, कि इसके स्पर्श से लोहा सुवर्ण हो जाता है। ७क्या।

रोला

विरहाकुल ह्वै गईं सबै पूछत वेली वन।
को जड़ को चैतन्य, न कछु जानत विरहीजन[1] ॥
हे मालति, हे जाति[2], जूथके[3], सुनि हित दै चित।
मान-हरन मन-हरन लाल गिरधरन लखे इत ?
हे केतकि, इततें कितहूँ चितये पिय रूसे[4]।
कै नँदनंदन मंद मुसुकि तुम्हरे मन मूसे[5] ?
हे मुक्ताफल, वेलि-धरे मुक्ताफल माला।
देखे नैन विसाल मोहना नँद के लाला[6] ॥
हे मंदार, उदार वीर करवीर[7] महामति।
देखे कहुँ वलवीर[8] धीर मन हरन धीर गति ?
हे चंदन, दुखदंदन सब की जरनि जुड़ावहु ॥
नँदनंदन जगवंदन चंदन हमहिं बतावहु ॥
पूछौ री, इन लतनि फूलि रहिं फूलनि जोई[10]।
सुन्दर पिय के परस विना अस फूल[11] न होई ॥
हे सखि, ए मृग-वधू इन्हैं किन पूछहु अनुसरि[12]।
डहडहे[13] इनके नैन, अवहिं कहुँ देखे हैं हरि ॥
अहो सुभग वन गन्धि, पवनि सँग थिर जु रही चल।
सुख के भवन दुख दमन रमन इतते चितये, बलि[14] ?
हे चम्पक, हे कुसुम, तुम्हैं छवि सब तें न्यारी।
नैकु बताय जु देउ, जहां हरि कुञ्ज-विहारी ॥

१यह पंक्ति मेघदूत के 'कामार्त्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु' का स्मरण दिलाती है। २जुही। ३यूथिका, पुष्प-विशेष। ४रूठे, क्रुद्ध। ५चुराये, हरे। ६नंद के लाड़िले पुत्र। ७वृक्ष-विशेष। ८बलभद्र के भाई श्रीकृष्ण। ९जलन शीतल करते हो। १०योग्य। ११आनंद। १२पीछे-पीछे जाकर। १३ आनन्दित। १४बलैया लेती हूँ;

हे कदंब, हे निंब, अंब, क्यों रहे मौन गहि ?
हे बट, उतँग सुरंग बीर कहुँ तुम इत-उत लहि ?
हे असोक, हरि सोक, लोकमनि[1] पियहि बतावहु।
अहो पनस[2], सुभ सरस मरत तिय अमिय पियावहु॥
जमुन निकट के बिटप पूँछि भइ निपट उदासी।
क्यों कहिहैं सखि अति कठोर ये तीरथ-बासी!
हे जमुना, सब जानि-बूझि तुम हठहि गहति हौ।
जो जल जग-उद्धार ताहिं तुम प्रगट बहति हौ॥
हे अवनी, नवनीत-चोर चित-चोर हमारे।
राखे कितहुँ दुराय बतावहु प्रान-पियारे॥
हे तुलसी, कल्यानि सदा गोविँद-पद-प्यारी।
क्यों न कहौ तुम नंदसुवन सों बिथा हमारी॥
जहँ आवत तमकुञ्ज[3]-पुँज गह्वर[4]-तरु-छाई।
अपने मुख चाँदने[5] चलत सुँदर बन माईं॥
इहि बिधि बन घन ढूँढ़ि बूझि उनमत[6] की नाईं।
करन लगीं मनहरन लाल-लीला[7] मन भाईं॥
मोहनलाल रसाल की लीला इनहीं सोहैं।
केवल तन्मय[8] भईं न कछु जानैं हम को हैं॥३॥
जो अनेक जोगेस्वर-हिय में ध्यान धरत हैं।
एकहिं बेर रूप इक सब कौ सुख बितरत हैं॥
जोगीजन बन जाय जतन करि कोटि जनम पचि[9]।
अति निर्मल करि राखत हिय में आसन रचि-रचि॥
कछु छिन तहँ नहिं जात नवल-नागर सुँदर हरि।

१त्रिभुवन-शिरोमणि। २बड़हर। ३सघन वृक्ष,बलि से अँधेरी कुंज। ४दुर्गम सघन। ५चंद्रमा का प्रकाश। ६उन्मत्त, पागल। ७प्यारे कृष्ण का चरित्र। ८तल्लीन, कृष्ण-रूप। ९थककर।

ब्रजजुवतिन के अंबर[1] पर बैठे अति रुचि करि ॥
कोटि-कोटि ब्रह्मांड जदपि एकहि ठकुराई[2]।
ब्रजदेविन की सभा साँवरे अति छवि पाई ॥
ज्यौं नवमंडल-मध्य कमल-कर्णिका सुभ्राजै।
त्यौं सब सुँदरि-सन्मुख सुन्दर स्याम विराजै ॥४॥
तब बोले ब्रजराज,कुँवर हौं रिनी[3] तुम्हारो।
अपने मनतैं दूरि करौ किन[4] दोष हमारो ?
कोटि कल्प लगि तुम प्रति, प्रति-उपकार करौं जौ।
हे मनहरनी तरुनी ! उरनी[5] नाहिं तबौं तौ ॥
सकल विस्व अपबस[6] करि मो माया सोहति है।
प्रेममयी तुम्हरी माया सो मोहिं मोहति है ॥
तुम जु करी सो कोउ न करै सुनि नवल किसोरी।
लोक-वेद की सुदृढ़ संखला[7] तृन-सम तोरी ॥५॥
सकल तियन के मध्य साँवरो पिय सोभित अस।
रत्नावलि[8]-मधि नीलमनी अद्भुत झलकै जस ॥
नव मरकतमनि स्याम कनक-मनिगन-ब्रजबाला।
वृन्दावन कौं रीझि मनौं पहिराई माला ॥
नूपुर, कंकन, किंकिनि[10], करतल, मंजुल मुरली।
ताल, मृदंग, उपंग[11], चंग ऐकै सुर जु-रली ॥
मृदुल-मधुर टंकार, ताल, झंकार मिली धुनि।
मधुरजंत्र की तार भँवर-गुञ्जार रली पुनि ॥
तैसिय मृदु पटकनि, चटकनि,[12] करतारनि[13] की।

१कपड़ा। २स्वामित्व; राज्य। ३ऋणी; अनुगृहीत। ४क्यों न हो। ५उऋण ६स्वाधीन। ७जंजीर। ८रत्नों की राशि, रत्नों के समान गोपियाँ। ९नील-मणि। १०तगड़ी। ११नस-तरंग, एक प्रकार का बाजा। १२चटचट-ध्वनि। १३हाथ की तालियों से।

लटकनि, मटकनि झलकनि कल कुंडल-हारन की ॥
साँवल पिय के संग नृतति यों ब्रज की बाला ।
जनु घन-मंडल मंजुल खेलति दामिनि-माला ॥
छविलि तियनि के पाछें आछें[1] विलुलित[2] बेनी ।
चंचलरूप-लतानि-संग डोलति अलि-सेनी[3] ।
मोहन पिय की मुसुकनि, ढलकनि मोर-मुकुट की ॥
सदा बसौ मन मेरे फरकनि[4] पियरे[5] पट की ॥
वदन-कमल पर अलक छुटी कछु श्रम की झलकनि[6] ।
सदा रहौ मन मेरे मोर-मुकुट की ढलकनि ॥
कोउ सखी कर पकरति, निरतति यों छविली तिय ।
मानों करतल फिरत देखि नट लटू होत पिय ।
कोउ नायक से भेद-भाव लावन्य-रूप-बस ।
अभिनय कर दिखरावति अरु गावत पिय के जस ॥६॥...
पिय के मुकुट की लटकनि, मटकनि मुरली-रव[7] अस ।
कुहुकि-कुहुकि मनु नाचत मंजुल मोर भरे-रस[8] ॥
सिरतें सुमन सुदेस जु बरसत अति आनँद-भरि ।
मनु पदगति पर रीझि अलक पूजनि फूलनि करि[9] ॥
स्रमजल सुन्दर बिन्दु रंग भरि अति छवि बरसत ।
प्रेम-भक्ति बिरवा[10] जिनके, तिनके हिय सरसत ।
वृन्दावन के त्रिविध पवन[11] बिजना[12] जु बिलोले[13] ।
जहँ-जहँ स्रमिति बिलोकत, तहँ-तहँ रस भरि डोलैं ॥
बड़े अरुन पट बासन[14] मंडल मंडित ऐसे ।
प्रेमजल के गोलक[15] कछु छवि उपजत जैसे ॥

१अच्छी तरह से । २हिलती हुई । ३भ्रमरों की श्रेणी, अर्थात् पंक्ति । ४फहराना । ५पीले । ६पसीने की बूँदे । ७स्वर । ८अ.नं.दास । ९फूलों से । १०पेड़ शीतल, मंद और सुगंध वायु । १२पंखा । १३भलते हैं ; १४वसन । १५आँख की पुतली ।

कुसुम-धूर धूमरी[1] कुंज मधुकरनि-पुञ्ज जहँ ।
ऐसेहुँ रस-आवेस[2] लटकि कीन्हों प्रवेस तहँ ॥७॥...
भीजि वसन तन लिपटि निपटि छवि अंकित है अस ।
नैननि के नहिं बैन, बैन के नैन नहीं जस ॥
नित्यरास-रस-मत्त नित्य गोपीजनवल्लभ[3] ।
नित्य निगम जो कहत नित्य, नवतन अति दुरलभ ।
यह अद्भुत रस-रास महाछवि कहति न आवै ।
सेस सहसमुख गावत तौहूँ अंत न पावै ॥
सिव मनहीं मन ध्यावै, काहू नाह जनावै ।
सनक सनंदन नारद सारद[4] अति मन भावै ॥८॥...
यह उज्वल रस-माल[5] कोटि जतनन करि पोई[6] ।
सावधान होइ पहिरौ, इहि तोरौ मति कोई ॥
स्रवन-कीरतन-ध्यान-सार सुमिरन कौ है पुनि ।
ग्यानसार, हरिध्यानसार, स्रुतिसार[7] गुथी पुनि ।
अघीरनी' मनहरनी, सुंदर रस-विस्तरनी ॥
'नंददास' के कंठ वसौ नित मंगलकरनी ॥९॥...

भँवर गीत

ऊधव कौ उपदेसु सुनौ ब्रज-नागरी ।
रूप-सील-लावन्य सबै गुन-आगरी ॥
प्रेम-धुजा रसरूपिनी, उपजावत सुखपुञ्ज ।
सुंदर स्याम-विलासिनी, नव वृन्दावन कुंज ।
सुनो ब्रज-नागरी ॥१॥
कहन स्याम-संदेस एक मैं तुम पै आयौ ।

१अँधेरी । २वेग । ३वश, प्यारे । ४शारदा, सरस्वती । ५प्रेमरस की माला 'रासपंचाध्यायी' से तात्पर्य है । ६पिरोई; गूँथी । वेदों का निचोड़ ।

कहन समै संकेत[1] कहूँ अवसर नहिं पायौ ॥
सोचत ही मन में रह्यौं, कब पाऊँ इक ठाऊँ।
कहि संदेस नँदलाल कौ, बहुरि मधुपुरी जाऊँ॥
सुनो ब्रज-नागरी ॥२॥

जो उनके गुन[2] होयँ वेद क्यों नेति[3] बखानैं ?
निरगुन सगुन आतम रचि ऊपर सुख सानैं ॥
बेद-पुराननि खोंजि कै, पायो कितहुं[4] न एक।
गुनही के गुन होहि ते, कहौ अकासहि टेक ॥
सुनो ब्रज-नागरी ॥३॥

जो उनके गुन नाहिं, और गुन भये कहाँ तें।
बीज-बिना तरु जमैं मोहिं तुम कहौ कहाँ तें।
वा गुन[5] की परछाँह री, माया-दरपन बीच।
गुन तें गुन न्यारे भये, अमल वारि मिलि कीच ॥
सखा सुन स्याम के ॥४॥

प्रेम जु कोऊ वस्तु रूप देखत लौ[6] लागै ॥
वस्तु दृष्टि बिन कहौ कहा प्रेमी अनुरागै ॥
तरनि चंद्र के रूप कों गुन गहि पायो जान।
तो उनको कह जानिये, गुनातीत भगवान ॥
सुनो ब्रज-नागरी ॥५॥

तरनि अकास प्रकास तेजमय रह्यौ दुराई[7]।
दिव्यदृष्टि बिनु कहौ, कौन पै देख्यौ जाई ?
जिनकी वे आँखैं[8] नहीं, देखैं कब वह रूप।
तिन्हैं साँच क्यों ऊपजै, परे कर्म के कूप ॥

१एकांत स्थल। २सत्व, रज और तम। ३'न इति' अर्थात् ऐसा नहीं ४कहीं भी। ५गोपियों के गुण से तात्पर्य भगवदीय दिव्य गुणों से है, मायात्मक त्रिगुण से नहीं। ६लव; लगन। ७छिपाकर। ८दिव्य नेत्र।

सखा सुन स्याम के ॥६॥

जो गुन आवै दृष्टि माँझ नहिं ईश्वर सारे।
इन सबहिनते वासुदेव[1]-अच्युत[2] हैं न्यारे॥
इन्द्री-दृष्टि-विकार तें, रहत अधोक्षज[3] जोति।
सुद्ध सरूपी जान जिय, तृप्ति[4] जु तातें होति॥

सुनो ब्रज-नागरी ॥७॥

नास्तिक जे हैं लोग, कहा जानैं हित-रूपै[5]।
प्रगट भानु को छाँड़ि गहैं परछाहीं धूपै॥
हम को बिन वा रूप के, और न कछू सुहाय।
ज्यों करतल आभास के, कोटिक ब्रह्म दिखाय॥

सखा सुन स्याम के ॥८॥

ताही छिन इक भँवर कहूँते उड़ि तहँ आयो।
ब्रजवनितन के पुञ्ज माहिं गुंजत छवि छायो॥
चढ़्यौ चहत पग-पगनि पर अरुन कमलदल जानि।
मनुमधुकर ऊधो भयो, प्रथमहि प्रगट्यौ आनि॥

मधुप को भेष धरि ॥९॥

ताहि भँवर सों कहैं सबै प्रतिउत्तर बातैं।
तर्क वितर्कन-जुक्त प्रेमरस-रूपी घातैं॥
जनि परसौ मम पाँव रे, तुम मानत हम चोर।
तुमहीं सों कपटी हुते, मोहन नंद-किसोर॥

यहाँ तें दूरि हो ॥१०॥

कोउ कहै, री मधुप भेष उनको ही धार्‌यौ।
स्याम-पीत[6] गुंजार बैन किंकिनि झनकार्‌यौ॥

१श्रीकृष्ण भगवान्। २विष्णु का एक नाम। ३विष्णु का एक नाम। ४आत्म-तुष्टि; ५प्रेम स्वरूप की। ६कृष्ण का वर्ण श्याम और पीतांबर का पीला है; भ्रमर भी श्याम और पीत होता है।

वा पुर गोरस[1] चोरि कै, फिरि आयो यहि देस।
इनको जनि मानहु कोऊ, कपटी इनको भेस॥
चोरि जनि जाय कछु॥११॥

कोउ कहै, रे मधुप कहा तू रस को जानै।
बहुत कुसुमपै बैठि सबै आपन सम मानै।
आपन सम हमको कियो, चाहत है मतिमंद।
दुविध ग्यान उपजाय कैं, दुखित प्रेम आनंद॥
कपट के छंद सों॥१२॥

कोउ कहै, रे मधुप कौन कह तोहि मधुकारी।
लिये फिरत मुख जोग गाँठि काटत बेकारी[2]॥
रुधिर पान किय बहुत कै, अरुन अधर रँगरात[3]।
अब ब्रज में आये कहा, करन कौन की घात॥
जात किन पातकी॥१३॥

कोउ कहै, रे मधुप प्रेम षटपद पसु देख्यौ।
अबलौं यहि ब्रजदेस माहिं कोउ नाहिं बिसेख्यौ॥
द्वै सिंग[4] आनन ऊपर रे, कारो-पीरो गात।
खल अमृत सम मानहीं, अमृत देखि डरात॥
बादि[5] यह रसिकता॥१४॥

कोउ कहै, रे मधुप ग्यान उलटो लै आयौ।
मुक्ति परे जे फेरि तिन्हैं पुनि करम बतायौ॥
वेद उपनिषद सार जे, मोहन गुन गहि लेत।
तिनके आतम सुद्धि करि, फिरि-फिरि संथा[6] देत॥
जोग चटसार[7] मैं॥१५॥

कोउ कहै, रे मधुप तुम्हैं लज्जा नहिं आवै।

१मक्खन। २व्यर्थ। ३लाल रंग। ४सींग। ५व्यर्थ। ६पाठ। ७पाठशाला।

पुनि-पुनि कहौं जु आय चलौ वृन्दावन रहिये।
प्रेम-पुंज को प्रेम जाय गोपिन संग लहिये॥
और काम सब छाँड़ि कै, उन लोगन सुख देहु।
नातरु टूट्यौ जात है, अब ही नेह-सनेहु॥
करौगे तो कहा॥२५॥

सुनत सखा के बैन नैन भरि आये दोऊ।
बिबस प्रेम आवेस रही नाहीं सुधि कोऊ॥
रोम-रोम-प्रति गोपिका, ह्वै रहि साँवल गात।*
कल्पतरोरुह साँवरो, ब्रजबनिता भई पात॥
उलहि अँग अँग तें॥२६॥

फुटकर पद

राम-कृष्ण कहिए उठि भोर।
अवध-ईस वे, धनुष धरे हैं, यह ब्रज-माखन-चोर॥
उनके छत्र-चँवर-सिंहासन, भरत सत्रुहन, लछमन जोर॥
इनके लकुट-मुकुट-पीताम्बर, नित गायन सँग नंदकिशोर॥
उन सागर में सिला तराई, इन राख्यौ गिरि नख की कोर॥
'नंददास' प्रभु सब तजि भजिए, जैसे निरखत चंद-चकोर॥१॥

---

*श्रीकृष्ण के साँवरे शरीर के रोम-रोम में, प्रेम-वेश के कारण, गोपियाँ हो गईं, मानो कल्प-वृक्ष में स्थान-स्थान पर पत्ते लग रहे हों।

हित हरिवंश

छप्पय

श्रीराधा-चरन-प्रधान हृदय अति सुदृढ़ उदासी।
कुंज-केलि-दंपती तहाँ की करत खवासी॥
सरबसु महाप्रसाद प्रसिध ताके अधिकारी।
बिधि निषेध नहिं,दास अनन्य उत्कट व्रतधारी॥
श्रीव्यास-सुवन-पथ अनुसरै, सोइ भलैं पहिचानि हैं।
श्रीहरिवंस-गुसाईं भजन की रीति सकृत कोइ जानि हैं॥

—नाभाजी

अनन्य राधावल्लभीय सिद्धांत के प्रवर्तक गोसाईं श्रीहित हरिवंशजी महाराज का जन्म बाद ग्राम ज़िला मथुरा में हुआ था। इनका जन्म-संवत् किसी के मत से १५५९ और किसी के मत से १५३० है। इनके पिता का नाम केशवदास मिश्र, उपनाम व्यासजी, तथा माता का नाम तारावती था। व्यासजी देवबन्द, ज़िला सहारनपुर में रहते थे। 'मिश्रबन्धुविनोद' में व्यास जी का उपनाम हरिराम शुक्ल लिखा है। हरिराम शुक्ल उपनाम कैसे हुआ—यह बड़े संदेह की बात है। यह गौड़ ब्राह्मण थे। हरिराम नाम की, तथा मिश्र के स्थान पर शुक्ल-वंश की कल्पना 'मिश्रबन्धुविनोद' में कैसे आई, समझ में नहीं आता। हरिराम नाम तो ओरछाधीश महाराज मधुकरशाह के राज्य-गुरु एवं हित हरिवंश के शिष्य प्रसिद्ध भक्त-कवि व्यासजी का था। कदाचित् विनोद-कारों को हरिवंशजी के पिता के विषय में इसी कारण से भ्रम हो गया है। यही नहीं, हित हरिवंशजी के जन्म-स्थान के संबन्ध में भी भारी भूल की गई है। बाद ग्राम को, जहाँ प्रति-वर्ष गोसाईं जी की जयंती मनाई जाती है, जन्म-स्थान न मानकर देवबन्द (देवबन) को, न जाने, किस आधार पर जन्म-भूमि मान लिया है।

गोसाईं जी के पिता देवबन्द में रहते अवश्य थे, किंतु वहां इनका जन्म नहीं हुआ था। बाद गांव मथुरा से ४ मील दक्षिण है। गोसाईं जी के अनन्य भक्त 'सेवकजी'[१] ने भी लिखा है :

धर्म-रहित जानी सब दुनी। जहां 'बाद' प्रगटे जग-धनी ॥

श्रीराधावल्लभीय पंडित गोपालप्रसादजी शर्मा ने 'श्रीहित-चरित्र' में गोसाईं जी का जन्म-संवत् १५३० माना है। 'हित-चरित्र' में आपकी जीवन-यात्रा लगभग ८० वर्ष की लिखी है। इस हिसाब से आपके गोलोक वास का संवत् अनुमानतः १६१० होता है। ओरछा-धीश महाराज मधुकरशाह के राजगुरु श्रीहरिराम व्यासजी लगभग १६२२ में गोसाईं जी के शरणापन्न हुये। सम्राट् अकबर को इस समय गद्दी पर बैठे १० वर्ष हुए थे। इसके कई वर्ष बाद महाराजा मधुकरशाह के पुत्र वीरसिंहदेव ने अकबर के विश्वास पात्र मंत्री अबुलफज़ल का वध किया। इस घटना के बाद व्यासजी ओरछे से वृन्दावन चले गये। फिर स्वयं महाराजा मधुकरशाह के मनाने पर भी आप ओरछा नहीं गये। इनका रचना-काल १६१८ से १६५५ तक माना जाता है। व्यास-जी ने श्रीहितजी एवं अन्य महात्माओं के विरह में जो पद[२] रचे वह १६५० के ऊपर के हैं, क्योंकि उस समय इनका चित्त बहुत विरक्त हो गया था। शायद ही फिर इन्होंने कोई उत्सव-संबन्धी कविता लिखी हो। इससे तो श्रीहित जी का लीला-संवरण सं० १६५० के लगभग आना चाहिए और जन्म-संवत् भी इस हिसाब से १६३० का नहीं बैठता।

कहते हैं कि श्रीहरिवंशजी ने स्वप्न में श्रीराधिकाजी से मंत्र ग्रहणकर

१ 'विनोद' के २२२ पृष्ठ पर सेवकजी को श्रीहित हरिवंशजी का पुत्र लिखा है। सेवकजी हितजी के पुत्र नहीं, किंतु उनके, स्वप्नद्वारा किये हुए, पट्टशिष्य थे।

२ "हुतो रस रसिकन सो आधार" और "विहारहिं स्वामी बिनु को गावै।" इत्यादि।

उनका शिष्यत्व स्वीकार किया था।

श्रीहरिवंशजी के एक कन्या और चार पुत्र हुए। पुत्रों के नाम वन-चंद्र, कृष्णचंद्र, गोपीनाथ और मोहनलाल थे। सं० १५८२ कार्तिक शुक्ल त्रयोदशी को गोसाईंजी ने श्रीराधावल्लभजी का श्री विग्रह वृन्दावन में स्थापित किया। यह महाराज गृहस्थ आश्रम में रहते हुए भी प्रायः विरक्त-से रहते थे। आपके भजन-साधन-सम्बन्धी स्थान सेवाकुंज, मानसरोवर और रास-मंडल माने जाते हैं। आपने संस्कृत और ब्रज-भाषा दोनों में ही बड़ी अपूर्व और सरस कविता की। १७० श्लोकों वाला 'राधा-सुधानिधि' काव्य आपका रचा हुआ है, यद्यपि किसी-किसी के मत से वह गौड़ीय श्रीप्रबोधानंद सरस्वती कृत भी माना जाता है। भाषा में 'हित-चौरासी' अनूठा ग्रन्थ है। पढ़ते समय कहीं-कहीं तो कवि-कोकिल जयदेव का स्मरण हो आता है कुछ फुटकर सिद्धान्ती पद भी मिलते हैं। 'मिश्रबन्धुविनोद' में आपने सेनापति की श्रेणी में स्थान पाया है! पर हमारी तुच्छ सम्मति में हित हरिवंशजी महाकवि देव से कम नहीं हैं। गोसाईंजी ने ब्रजसाहित्य का भारी उपकार किया है, इनके शिष्य-प्रशिष्य भी बड़े-बड़े कवि हो गये हैं। देव और बिहारी इसी कुल के अनुयायी माने जाते हैं। महाराज नरवाहन ध्रुवदास और हित वृन्दावनदास ब्रज-साहित्य-सागर के अमूल्य रत्न हैं। संतोष का विषय है कि 'विनोद' के दूसरे संस्करण में हित हरिवंशजी के संबन्ध में कुछ अधिक प्रामाणिक बातें लिखी गई हैं।

भक्ति-पक्ष में हरिवंशजी श्रीकृष्ण की वंशी के अवतार माने जाते हैं। 'हित' इनका उपनाम था। आप श्रीराधाकृष्ण के दिव्यप्रेम की साक्षात् मूर्ति थे। परात्पर भगवत्प्रेम की प्राप्ति कर लेने पर आपने विधि-निषेध के झगड़े, काम-कांचन का मोह और हरि विमुख धर्मों को तृणवत् तोड़ दिया था। तभी तो आपके सम्बन्ध में नाभाजी ने अपनी 'भक्तमाल' में लिखा है कि:—'श्रीहरिवंस गुसाईं भजन की रीति सकृत कोई जानि है।'

श्रीहितजी ने, आध्यात्मिक पक्ष के अर्थानुसार, श्रीराधाकृष्ण का

विशुद्ध श्रृङ्गार वर्णन किया है। इनके वर्णित 'रास-विहार' को रूप प्रकृति-पुरुष का दिव्य-रहस्य कह सकते हैं। 'श्रीगोसाईं जी के सिद्धांत' तथा 'हित-चतुरासी' से कुछ पद नीचे उद्धृत किये जाते हैं :

सिद्धांती पद

गौरी

(जैश्री) 'हित हरिवंश, प्रपंच वंच[1] सब काल व्याल कौ खायो।
यह जिय जानि स्याम- स्यामा-पद कमल संग सिर नायो ॥१॥§

कुंडलिया

चकई प्रान जु घट रहै, पिय बिछुरंत निकज्ज।
सर-अंतर अरु काल निसि, तरफ तेज घन गज्ज ॥
तरफ तेज घन गज्ज,[2] लज्ज[3] तुव वदनु न आवै ॥
जल-विहीन कर नैन भोर किहि भाय दिखावै ॥
'हित हरिवंश', विचार कौन अस बाद जु वकई।
सारस यह संदेह प्रान घट रहै जु चकई ॥२॥*

छप्पय

तैं भाजन[4] कृत जटित विमल चंदन कृत इंधन।
अमृत[5] पूरि तिहि मध्य करत सरषप बल रिंधन ॥
अद्भुत धर पर करत कष्ट कंचन हल वाहत[6]।
बारि करत पावारि, मंद बोवन विष चाहत ॥

१ बचकर। २ गरज। ३ लज्जा। ४ पात्र; शरीर। ५ आत्मा। ६ चलाता है।

§ओरछा-वासी श्रीव्यासजी, कहते हैं, इसी पद को सुनकर गोसाईं हरिवंशजी के शिष्य हो गये थे। इस पद में अनन्यता, मन की एकाग्रता और निरभिमानता का बड़ा ही सुन्दर उपदेश भरा हुआ है।

*इस पद में अध्यात्मदर्शन के अनुसार 'हित-सिद्धांत' का प्रतिपादन किया गया है। इसकी विस्तृत टीका प्रियादासजी ने लिखी है।

'हित हरिवंस' विचार कैं यह मनुज-देह गुरु चरन गहि।
सकहि तौ सब परपंच[1] तजि श्रीकृष्ण-कृष्ण गोविंद कहि ॥३॥*

पद

तातें भैया मेरी सौं[2], कृष्णगुन संचु[3]।
कुत्सित वाद विकारहिं परधन, सुनु सिख परतिय बंचु[4] ॥
मनि-गुन-पुंज जु ब्रजपति छाँड़त 'हित हरिवंस' सु कर गहि कंचु[5]।
पायो जानि जगत में सब जन कपटी कुटिल कलिजुगी टंचु[6]।
इहि परलोक सकल सुख पावत, मेरी सौं, कृष्ण गुन संचु ॥४॥*

अरिल्ल

मानुष कौ तन पाइ भजौ ब्रजनाथ कौं।
दर्वी[7] लैकैं मूढ़ जरावत हाथ कौं ॥
'हित हरिवंस' प्रपंच विषयरस मोह कै।
बिनु कञ्चन क्यों चलैं पचीसा[8] लोह कै ॥५॥

बिलावल

मोहनलाल के रंग राची।
मेरे ख्याल[9] परौ जिन कोऊ, बात दसौं दिसि माची ॥
कन्त[10] अनंत करौ किन कोऊ, नाहिं धारना साँची।
यह जिय जाहु भले सिर ऊपर, हौं तु प्रगट ह्वै नाची ॥
जाग्रत सयन रहत ऊपर मनि, ज्यौं कञ्चन सँग पाँची[11]।
'हित हरिवंस' डरौं काके डर, हौं नाहिन मति काँची[12] ॥६॥

१ सांसारिक झंझट। २ शपथ। ३ संचय कर। ४ अलग रह। ५ कांच, यहाँ विषय सुख से तात्पर्य है। ६ तुच्छ, नीच, दुष्ट। ७ कलछी; यह शब्द केवल, 'साधुमंडली' में ही प्रयुक्त होता है। ८ पाँसा। ९ बीच में; विषय में। १० पति। ११ पच्ची। १२ कच्ची बुद्धि।

*इन दोनों पदों द्वारा, कहते हैं, महाराज नरवाहनजी को उपदेश दिया गया था। पीछे यह नरवाहनजी श्रीहरिवंशजी के पट्टशिष्यों में गिने जाने लगे।

भैरवी

रहौ कोऊ काहू मनहि दियें।
मेरे प्राननाथ श्रीस्यामा, सपथ करौं तिन छियें॥
जे अवतार कदंव-[१] भजत हैं, धरि दृढ़व्रत जु हियें।
तेऊ उमगि तजत मरजादा, वन-विहार[२]-रस पियें॥
खोये रतन फिरत जे घर-घर, कौन काज इमि जियें।
'हित हरिवंस, अनतु[३] सचु[४] नाहीं, विन या रसहि लियें॥७॥

गौरी

आरति कीजे स्यामसुन्दर की। नँदनन्दन श्रीराधावर की॥
भक्ति कौ दीप, प्रेम की वाती। साधु संगति कर अनुदिन[५] राती।
आरति व्रज-जुवतिन-मन भावै। स्याम लीला 'हित हरिवंस' गावै॥८॥

दोहा

तनहिं राखु सत्संग में, मनहि प्रेमरस भेव।
सुख चाहत 'हरिवंस हित' कृष्ण-कल्पतरु सेव॥९॥
निकसि कुंज ठाढ़े भये, भुजा परस्पर अंस[६]।
राधावल्लभ-मुख-कमल, निरखत 'हित हरिवंस'॥१०॥*
सबसौं हित निहकाम[७] मन, वृन्दावन विस्राम।
राधावल्लभलाल कौ हृदय ध्यान, मुख नाम॥११॥
रसना कटौ जु अन रटौ[८], निरखि अन फुटौ नैन।
स्रवन फुटौ जो अन[९]सुनौ, विनु राधा-जसु वैन॥१२॥

१ समूह। २ बनविहार, जल-विहार। ३ अन्यत्र। ४ सुख। ५ नित्य। ६ गलबाहीं दिये हुए। ७ निष्काम; बिना किसी इच्छा के। ८ दूसरे का नाम लूँ। ९ अन्य दूसरा।

*इस सुन्दर पद में श्रीहित हरिवंशजी ने अपना अनन्य प्रेम-सिद्धांत गाया है।

श्रीहितचौरासी

सारङ्ग

आजु बन नीकें रास बनायौ।
पुलिन[1] पवित्र सुभग जमुना-तट, मोहन बेनु बजायौ॥
कल कंकन किंकिनि नूपुर -धुनि, सुनि खग-मृग सचुपायौ[2]।
जुवतिन-मंडल मध्य स्यामघन, सारंग-राग जमायौ[3]॥
ताल मृदंग उपंग[4] मुरज डफ[5], मिलि रस-सिंधु बढ़ायौ।
विविध विसद वृषभानु-नंदिनी, अंग -सुढंग दिखायौ॥
अभिनय[6] निपुन लटकि लटि लोचन, भृकुटि अनंद नचायौ।
ततथेई ताथेई[7] धरति नवल गति, पति ब्रजराज रिझायौ॥
बरसत कुसुम मुदित नभ-नायक, इन्द्र निसान[8] बजायौ।
(जैश्री) 'हित हरिवंस', रसिक राधापति, जस बितान जग छायौ॥१३॥

जोई-जोई प्यारो करैं सोई मोहि भावै,
भावै मोहि जोई, सोई-सोई करैं प्यारे॥
मोकों तो भावतीं[9] ठौर प्यारें के नैनन में,
प्यारे भये चाहैं मेरे नैनन के तारे॥
मेरे तन-मन प्रानहूँ तें प्रीतम प्रिय आपने,
कोटिक प्रान प्रीतम मोसों हारे॥
(जैश्री)'हित हरिवंस-हंस-हंसिनी[10] स्यामल गौर,
कहौ, कौन करे जल-तरंगिनि न्यारे॥१४॥*

१ किनारा। २ आनंद। ३ गुंजायमान कर दिया। ४ एक बाजा। ५ खाल से मढ़ा हुआ एक प्रकार का बाजा। ६ नृत्य-कला। ७ नृत्य की गति के शब्द-विशेष। ८ दुंदुभी। ९ प्यारी, अच्छी लगती है। १० श्रीकृष्ण और राधा

*इस पद में श्रीराधाकृष्ण की एकरूपता, भक्त की तल्लीनता एवं दिव्य कुञ्जकेलि का विशद वर्णन किया गया है।

बिलावल

सुनि मेरो बचन छबीली राधा। तैं पायौ रससिंधु[1] अगाधा॥
जाहि बिरंचि उमापति नाये[2]। तापै तैं बन-फूल बिनाये॥
तेरो रूप कहत नहिं आवै। (जैश्री) 'हित हरिवंस' कछुक जसु गावै॥१५॥

सारङ्ग

सरद बिमल, नभ चंद बिराजै। मधुर मधुर मुरली कल[3] बाजै॥
अति राजत घनस्याम-तमाला। कंचन-बेलि बनी ब्रज-बाला॥
भूषन बहुत, बिबिध रँग सारी[4]। अंग सुगंध दिखावति नारी॥
बरसत कुसुम मुदित सुर-जोषा[5]। सुनियतु दिवि दुंदुभि-कल-घोषा[6]॥
(जैश्री)'हित हरिवंस' मगन मन स्यामा। राधा-रमन सकल सुखधामा॥१६॥

सारङ्ग

आजु नीकी बनी राधिका नागरी।
ब्रज जुवति जूथ में रूप अरु चतुरई,
सील-सिंगार-गुन-सबनि तैं आगरी[7]॥
कमल दच्छिन भुजा बाम भुजा अंसु सखि,
गावती सरस मिलि मधुर सुर[8] राग री॥
सकल बिद्या बिहित[9] रहसि 'हरिवंस' हित,
मिलत नव कुञ्ज बर स्याम बड़ भाग री॥१७॥

बसंत

मधुरितु[10] वृन्दावन, आनंद न थोर।
राजति नागरी नव कुसल किसोर॥
जूथिका[11] जुगलरूप मंजरी रसाल।
बिथकित अलि मधु माधवी गुलाल॥
चंपक बकुल कुल बिबिध सरोज।

१सच्चिदानंद-स्वरूप श्रीकृष्ण। २वंदना की। ३सुन्दर। ४साड़ी। ५स्त्री। ६शब्द। ७बढ़कर; बड़ी। ८स्वर। ९सहित। १०बसंत ऋतु। ११यूथिका, चमेली।

केतकी मेदिनी मद मुदित मनोज ॥
रोचक रुचिर बहै त्रिविध समीर[1] ।
मुकुलित[2] नूत[3] नदित[4] पिक कीर ॥
पावन पुलिन घन मंजुल निकुंज ।
किसलय सैन रचित सुखपुंज ॥
मंजीर मुरज डफ[5] मुरली मृदंग ।
बाजत उपंग बीना वर मुख-चंग[6] ॥
मृगमद[7] मलयज कुंकुम अबीर ।
बदन अगर-सत सुरभित चीर ॥
गावत सुन्दर हरि सरस धमारि[8] ।
पुलकित खग-मृग बहत न बारि[9] ॥
(जैश्री)'हित हरिवंस' हंस-हंसिनी-समाज ।
ऐसेई करहु मिलि जुग-जुग राज ॥१८॥

देव गंधार

ब्रज-नवतरुनि-कदंब[10]-मुकुट-मनि स्यामा आजु बनी ।
नख-सिख लौं अँग-अंग-माधुरी मोहे स्याम धनी ॥
यौं राजत कबरी[11] गूथित कच कनककञ्ज[12]-बदनी ।
चिकुर[13]-चंद्रकनि बीच अरध बिधु मानौं ग्रसत फनी[14] ॥
सौभग रस सिर स्रवत पनारी पिय सीमंत ठनी ।
भ्रकुटि काम कोदंड, नैन सर, कज्जल रेख अनी[15] ॥
भाल तिलक, ताटंक गंड[16] पर नासा जलज मनी ।

१शीतल, मंद और सुगंधित वायु । २बौरे हुए । ३आम । ४बोलते हैं । ५चमड़े से मढ़ा हुआ एक प्रकार का बाजा, जो होली में बजाया जाता है । ६मुँहचंग, एक बाजा, जो मुँह से बजाया जाता है । ७कस्तूरी । ८होली में गाने का एक राग । ९आनंद के मारे यमुना का बहना तक बंद हो गया । १०समूह । ११वेन । १२सोने के जैसा कमल । १३बाल । १४साँप । १५नोक । १६गाल का ऊपरी भाग ।

दसन कुन्द, सरसाधर-पल्लव पीतम-मन-समनी ॥
(जैश्री)'हित हरिवंस' प्रसंसित स्यामा, कीरति बिसद घनी ।
गावत स्रवननि सुनत सुखाकर विस्व-दुरति[1]-दवनी[2] ॥१६॥

बिहाग

प्रीत न काहु कि कानि[3] बिचारैं ।
मारग अपमारग[4] बिथकित मन, को अनुसरत[5] निवारै ॥
ज्यौं पावस सलिता[6]-जल उमगति सनमुख सिंधु सिधारैं ।
ज्यौं नादहिं मन दिये कुरंगनि, प्रगट पारधी[7] मारै ॥
(जैश्री)'हित हरिवंसहिं' लगसारँग[8] ज्यौं सलभ[9] सरीरहिं जारै ।
नाइक निपुन नवलमोहन बिनु कौन अपनपौ हारै ॥२०॥

केदारा

देखौ भाई, सुंदरता की सींवाँ[10] ।
ब्रज-नव-तरुनि-कदंब[11]-नागरी निरखि करति अध ग्रींवाँ[12] ॥
जो कोउ कोटि कलप लगि जीवै रसना कोटिक पावैं ।
तऊ रुचिर वदनारबिंद की सोभा कहति न आवै ॥
देवलोक भुवलोक रसातल सुनि कविकुल मन डरियै ।
सहज माधुरी अंग-अंग की, कहि, कासौं पटतरियै[13] ॥
(जैश्री)'हित हरिवंस' प्रताप रूप गुन वय बल स्याम उजागर ।
जाकी भ्रू-विलास बस पसुरिव[14], दिन बिथकित रससागर[15] ॥२१॥

सारङ्ग

प्रथम जथामति प्रणाऊं श्रीवृन्दावन अति रम्य ।
श्री राधिका-कृपा बिनु सब के मननि अगम्य ॥

१पाप, रोग । २नाश करनेवाली । ३मर्यादा । ४कुमार्ग । ५चलते हुए । ६सरिता, नदी । ७बहेलिया । ८दीपक । ९पतिंगा । १०सीमा, हद । ११समूह । १२नीचे को गर्दन करती हैं, लज्जित हो जाती हैं । १३उपमा देनी चाहिए । १४ पशु अर्थात् पर-वश के समान । १५श्रीकृष्ण ।

बर जमुना-जल सींचत दिन हीं सरद बसंत।
विविध भाँति सुमननि के सौरभ अलि कुलमंत॥
अरुन नूत[1]-पल्लव पर कूजत कोकिल कीर।
निर्तन करत सखी-कुल अति आनंद-अधीर॥
बहत पवन रुचिदायक सीतल मंद सुगंध।
अरुन नील सित मुकुलित जहँ-तहँ पुष्पन-बंध॥
रसिक रास जहँ खेलत स्यामा-स्याम किसोर।
उभै बाहु परि-रंजित उठे उनींदे[2] भोर॥
ताल रबाब[3] मुरज डफ बाजत मधुर मृदंग।
सरस उकति गति सूचत वर बाँसुरी मुखचंग॥
दोउ मिलि चाचरि[4] गावत गौरी राग अलापि।
मानस-मृग बल बेधत भृकुटि-धनुष दृग चापि॥
दोउ करतारिनु[5] पटकति, लटकति इतउत जाति।
'हो हो' होरी बोलति अति आनँद किलकाति॥
रसिकलाल पर मेलति[6] कामिनि बंदन-धूरि[7]।
पिय पिचकारिनु छिरकतु ताकि-ताकि कुमकुम पूरि॥
कबहुँ-कबहुँ चंदन-तरु-निर्मित तरल हिंडोल।
चढ़ि दोऊजन झूलत, फूलत[8] करत कलोल॥
हित, चिंतक निज चेरिनु उर आनँद न समाति।
निरखि निपट नैननि सुख तृन तोरति बलि जाति॥२२॥

सारङ्ग

मोहन मदन त्रिभंगी। मोहन मुनी मन रंगी॥
मोहन मन सघन प्रगट परमानंद गुन गंभीर गुपाला।

१आम। २निद्रित। ३वाद्य विशेष। ४चर्चरी। ५करताल। ६डालती है। ७गुलाल। ८प्रसन्न होते हैं।

सीस किरीट, स्रवन मनि-कुंडल, उर मंडित बनमाला[1] ॥
पीतांबर तनु धातु-विचित्रित[2] कल किंकिन कटि चंगी।
नखमणि-तरनि चरन-सरसीरुह मोहन मदन त्रिभंगी ॥
मोहन वेनु बजावै। इहि रव नारि बुलावै ॥
आई ब्रजनारि सुनि वंसी-रव[3] गृह-पति-बंधु बिसारे।
दरसन मदन-गुपाल मनोहर मनसिज-ताप निवारे ॥
हरषित वदन बंक[4] अवलोकनि सरस मधुर धुनि गावै।
मधुमय स्याम समान अधर धरें मोहन वेनु बजावै ॥
रास रच्यौ बन-माहीं। विमल कल्पतरु-छाहीं ॥
विमल कल्पतरु-तीर सुपेसल[5] सरद रैन वर चंदा।
सीतल मंद सुगंध पवन वहै, तहँ खेलत नँद-नंदा ॥
अद्भुत ताल मृदंग मनोहर, किंकिनि सवद कराहीं।
जमुना-पुलिन रसिक रस-सागर रास रच्यौ बन माहीं ॥२३॥

१कुन्द, कमल, मंदार और तुलसी की पैरों तक लटकनेवाली लंबी माला। २अनुरंजित। ३ध्वनि, शब्द। ४तिरछी। ५कोमल, सुन्दर।

गदाधर भट्ट

छप्पय

सज्जन सुहृद सुसील वचन आरज प्रतिपालै ।
निरमत्सर निष्काम, कृपा-करुना कौ आलै ॥
अनन्य भजन दृढ़ करन धर्‌यौ वपु भक्तन काजै ।
परम धरम कौ सेतु, विदित वृन्दावन गाजै ॥
भागवत-सुधा बरषै बदन, काहू कों नाहिंन दुखद ।
गुण-निकर गदाधर भट्ट अति, सबहिन कों लागै सुखद ॥
—नाभाजी

भक्तवर गदाधर भट्टजी दक्षिण देश के किसी ग्राम के निवासी थे। इनके जन्मसंवत् का कोई निश्चय पता नहीं चलता, पर यह तो निर्विवाद बात है, कि यह महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव के समसामयिक थे। महाप्रभु को आप श्रीमद्भागवत सुनाया करते थे। 'मिश्रबन्धुविनोद' में इनका कविताकाल संवत् १७२२ के लगभग लिखा है। जान पड़ता है, विनोदकारों ने इनके संबन्ध में ठीक-ठीक पूछताछ नहीं की। नाभा-कृत भक्तमाल के टीकाकार प्रियादासजी ने भट्टजी के संबन्ध में जो लिखा है, उसका सारांश नीचे दिया जाता है :

भट्टजी श्रीराधाकृष्ण के पहले से ही अनन्य भक्त थे। आप बड़ी ही सरस रचना रचा करते थे। एक दिन श्रीजीवगोसाईंजी के आगे दो साधुओं ने भट्टजी का बनाया यह पद गाया :

सखी, हौं स्याम-रंग रँगी ।
देखि बिकाय गयी वह मूरति, सूरति माहिं पगी ॥
संग हुतो अपनो सपनो सो, सोइ रही रस खोई ।

जागेहुँ आगे दृष्टि परै सखि, नैकु न न्यारो होई ॥
एक जु मेरी अँखियन में निसिद्यौस रह्यो करि भौन ।
गाइ चरावत जात सुन्यौ सखि, सो धौं कन्हैया कौन ?
कासों कहौं, कौन पतियावै, कौन करै बकवाद ।
कैसेकैं कहि जात 'गदाधर' गूँगे कौ गुर-स्वाद ॥

यह पद सुनकर जीवगोसाईंजी ने उन साधुओं के हाथ भट्टजी के पास एक पत्र लिख भेजा। उन लोगों ने जाकर भट्टजी को वह पत्र दे दिया। उसमें यह श्लोक लिखा था :

अनाराध्य राधापदाम्भोजयुग्ममनाश्रित्य वृन्दाटवीं तत्पदाङ्काम् ।
असंभाष्य तद्भावगम्भीरचित्तान्, कुतः श्यामसिंधोः रसस्यावगाहः ॥

यह श्लोक पढ़ कर भट्टजी प्रेमावेश में मूर्च्छित हो गये। संज्ञा प्राप्त होने पर तुरन्त सब छोड़-छाड़कर, सीधे वृन्दावन को चल दिये वृन्दावन में आप महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव के शरणापन्न हुए। श्रीमहाप्रभुजी के आप विशेष कृपा-पात्र थे। आप का चरित्र एवं स्वभाव कैसा था, यह भक्तवर नाभाजी के उपर्युक्त छप्पय से भली भाँति प्रकट हो जाता है।

भट्टजी की रचना बड़ी ही सरस, सानुप्रास और भक्ति-भावपूर्ण है। आपकी कविता अष्टछाप के उत्कृष्ट कवियों के टक्कर की है। साहित्यिक गुणों के अतिरिक्त आप के पदों में त्याग, अनुराग और भक्ति का वह चित्र खचित दिखाई देता है, जो बिरले भक्त-कवियों में मिलता है। आप का कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं मिलता; केवल कुछ फुटकर पद मिलते हैं, जो बड़े उत्तम और सुन्दर हैं। भट्टजी ब्रजसाहित्य और गौर-सम्प्रदाय के अभिमान-स्वरूप हैं, इसमें संदेह नहीं।

विभास

दिन दूलह[१] मेरो कुंवर कन्हैया ।
नितप्रति सखा सिंगार सँवारत, नित आरती उतारति मैया ॥

[१] नित्य बना-ठना; सदा एक रस।

नितप्रति गीत वाद्य[1] मंगल धुनि, नित सुर-मुनिवर विरद[2]-कहैया।
सिर पर श्रीब्रजराज राजवित, तैसेही ढिंग बलनिधि बलभैया[3] ॥
नितप्रति रासविलास ब्याहविधि, नित सुरतिय सुमननि बरसैया।
नित नव-नव आनंद वारिनिधि, नित ही गदाधर लेत बलैया ॥१॥

चिन्तय[4] चित्त! चिरं हरि-चरणं। गोपवधू जन-हृदयाभरणं ॥
स्वाकालंकृत वृन्दारण्यं। निज कर दयिता[5] कुंकुम धन्यं ॥
रत्नमयातुल[6] कर्णाभरणं। ध्येयं चरणाम्बुज नभ वरणं ॥
भालमिलद्वर कुंकुम-तिलकं। चन्दन चित्रित वक्षः फलकं ॥
अरुणाधर-विनिहित[7] वर वेणुं। मुनि-दुर्लभ-चरणाम्बुज-रेणुं ॥
तारावलि-निभ[8] मौक्तिक[9] हारं। सम्भृत सौंदर्यामृत सारं ॥
विततोरसि[10] विलसद्वनमालं। कटितट-घरित सुकिंकिणि-जालं ॥
वलयांगद[11] संगत[12] भुजदंडं। दनुज-कुलांत विधावति चंडं ॥
चरण-रणित[13] मणिमय मंजीरं[14]। सच्चित्सुख-घन सुभग शरीरं ॥
त्रैलोक्याद्भुत शोभा रुचिरं। गोपतनुं नर चिन्तय सुचिरं ॥
दुर्गत-बन्धुं करुणा सिंधुं। विश्वहितं हृदि[15] कुरुजन बन्धुं ॥
क्रीडंतं निज सखिभिः साकं। गोपवधूजन-पुण्य-विपाकं[16] ॥
अशरण-शरणं भवभय-हरणं। प्रणम 'गदाधर' गिरिवर-धरणं ॥२॥

ध्रुपद

श्रीगोविंद-पद-पल्लव सिर पर विराजमान,
कैसे कहि आवै या सुख को परिमान[17]।
ब्रजनरेस-देस बसत कालानल हूँ त्रसत,
बिलसत मन हुलसत करि लीलामृत-पान।

१बाजा। २यश। ३बलभद्र। ४चिंतन कर, ध्यानकर। ५स्त्री। ६रत्नमय-अतुल। ७युक्त। ८शोभा। ९मोती। १०वितत + उरसि, चौड़ी छाती पर। ११कड़े और बाजूबंद। १२युक्त। १३ बजता हुआ। १४नूपुर। १५हृदय में १६कर्म। १७सीमा।

भीजे[1] नैन नयन-रहत प्रभु के गुनगान[2] कहत,
मानत नहिं त्रिविध ताप[3] जानत नहिं आन ।
तिनके मुख-कमल-दरस, पावन पद-रेनु[4] परस,
अधम जन 'गदाधर'-से पावें सनमान ॥३॥

देश

मोहन-बदन की सोभा ।
जाहि देखत उठति मंडित आनंद की गोभा[5] ॥
नैन धीर अधीर कछु-कछु असित[6] सित[7] राते[8] ।
प्रिया - आनन चंद्रिका-मधुपान-रस-माते ।
वंसिका फलहंसिका[9] सुख कमल-रस-रांची[10] ।
पवन परसत अलक अलिकुल कलह-सी मांची ।
ललित लोल कपोल, कुंडल मधुरमकराकार ।
जुगल सिसु सौदामिनी मनु नचत नट चटसार[11] ॥
विमल जलज सुढार मुक्ता नासिका दीनों ।
ऊँचे आसन पर असुर-गुरु[12] उदो-सी कीनों ।
भौंह सोहनिका कहाँ अरु भाल कुमकुम[13]-बिंदु ।
स्यामबादर[14]-रेख परि मनु अबहिं ऊग्यौ इंदु ॥
लग्यौ मन ललचाइ तातें टरत नहिं टारयौ ।
अमित अद्भुत माधुरी[15] पर 'गदाधर' वारयौ ॥४॥

श्री

नमो, नमो जय श्रीगोविंद ।
आनँदमय ब्रज सरस सरोवर, प्रगटित विमल नील अरबिंद ॥

१सजल नेत्र । २समूह । ३आधिभौतिक आधिदैविक और आध्यात्मिक दुःख । ४रज । ५लहर । ६श्याम । ७श्वेत । ८लाल । ९तिनी । १०रंगी, मग्न । ११रंगभूमि, नृत्यशाला । १२शुक्र, जिनका रंग श्वेत है । १३रोरी । १४काले बादल । १५छवि ।

जसुमति-नीर-नेह नित पोषित, नवनव ललित लाड़[1] सुखकंद।
ब्रजपति-तरनि[2] प्रताप-प्रफुल्लित, प्रसरित[3] सुजस सुवास अमंद॥
सहचरि-जाल-मराल संग रँग, रसभरि नित खेलत सानंद।
अलि गोपीजन नैन 'गदाधर', सादर पिवत रूप मकरंद॥५॥

सारङ्ग

हरि हरि हरि हरि रट रसना मम।
पीवति खाति रहति निधरक[4] भई, होत कहा तोकों स्रम॥
तैं तो सुनी कथा नहिं मो-से, उधरे अमित महाधम।
ग्यान ध्यान जप तप तीरथ ब्रत, जोग जाग[5] बिनु संजम॥
हेम हरन-[6] द्विज-द्रोह मान-मद, अरु पर-गुरु-दारागम[7]।
नाम-प्रताप-प्रबल-पावक में होत भसम अघ अमित सलभ[8] सम॥
इहि कलिकाल-कराल-ब्याल-बिष-ज्वाल बिषम भोये[9]हम।
बिनु इहि मंत्र 'गदाधर' कौ क्यों, मिटिहै मोह-महातम॥६॥

बिहाग

जो मन स्याम-सरोवरि न्हाहि।
बहुत दिनन कौ जर्‌यौ बर्‌यौ तू, तबहीं भले सिराहि॥
नयन बयन कर चरन-कमल से, कुंडल मकर समान।
अलकावली सिवाल-जाल तहँ, भौंह-मीन सो जान॥
कमठ-पीठ[10] दोउ भाग उरस्थल, सोभित दीप[11] नितंब।
मनि मुकुता-आभरन बिराजत, ग्रह नछत्र प्रतिबिंब॥
नाभि-भँवर त्रिबली-तरंग, झलकत सुंदरता-बारि।
पीत बसन फहरानि उठी जनु पदुम रेनु[12]-छबि धारि॥

१प्यार। २सूर्य। ३फैला हुआ। क्या ही सुन्दर रूपक है! ४निडर। ५यज्ञ। ६सुवर्ण की चोरी। ७परस्त्री-गमन। ८पतिंगे। ९रंगे हुए। १०कछुआ, जिसकी उपमा पीठ से दी जाती है। ११द्वीप। १२कमल का पराग।

सारस-सरिस सरस रसना-रव, हंसक[१]-धुनि कलहंस।
कुमुद-दाम[२] बग-पंगति[३] बैठी, कविकुल करत प्रसंस॥
क्रीड़ा करति जहाँ गोपीजन, बैठि मनोरथ-नाव।
बारबार यह कहत 'गदाधर', देह सँवारौ दाँव[४]॥७॥*

आसावरी

है हरि तें हरिनाम बड़ेरो[५], ताकों मूढ़ करत कत भेरो[६]।
प्रगट दरस मुचकुन्दहिं[७] दीन्हौं, ताहू आयुसु भो तप केरो॥
सुत-हित नाम अजामिल[८] लीनों, या भव में न कियो फिरि फेरो[९]॥
पर-अपवाद[१०]-स्वाद जिय राच्यौ, वृथा करत बकवाद घनेरो॥
कौन दसा ह्वै है जु 'गदाधर', हरि हरि कहत जात कह तेरो॥८॥

गौरी

नंद कुल-चंद वृषभानु-कुल-कौमुदी
उदित वृन्दा-विपिन विमल आकासे।
निकट वेष्टित[११] सखीवृन्द वर तारिका[१२],
लोचन-चकोर तिन रूप-रस-प्यासे॥
रसिकजन अनुराग-उदधि तजी मरजाद,
भाव अगनित कुमुदिनी-गन विकासे।
कहि 'गदाधर' सकल विस्व असुरनि विना,
भानु-भव-ताप अग्यान न विनासे॥९॥

१बिछुआ नूपुर; से आशय है। २माला। ३बगुला की पंक्ति। ४यह मौका हाथ से न जाने दो। ५बड़ा। ६झेल; देर। ७इक्ष्वाकु-वंशी एक राजा। इन्होंने कालयवन को भस्म कर दिया था। पीछे श्रीकृष्ण ने आकर इन्हें दर्शन दिया पुराणों में लिखा है, कि यही मुचकुन्द कल्पांत के बाद सूर्य-वंश पुनः चलायेंगे। ८एक पापी ब्राह्मण, जो अंतकाल अपने नारायण नामक पुत्र का नाम लेने से मुक्त हो गया था। ९पुनर्जन्म। १०निंदा। ११युक्त। १२तारा।

*इस पद का रूपक क्या ही सुन्दर और सर्वांगपूर्ण है।

सारङ्ग

कबै हरि, कृपा करिहौ सुरति मेरी। और न कोऊ काटन कों मोह-बेरी[1] ॥
काम-लोभ आदि ये निर्दय अहेरी[2]। मिलिकैं मन-मति-मृगी चहुँधा घेरी।
रोपी आय पास पासि[3] दुरासा केरी। देत वाही में फिरि-फिरि फेरी ॥
परी कुपथ कंटक आपदा घनेरी। नैक हीं न पावति भजि भजन सेरी[4] ॥
दंभ के आरंभ ही सतसंगति डेरी। करै क्यों 'गदाधर' बिनु करुना तेरी॥१०॥

धुवक

जयति श्री राधिके सकल-सुख-साधिके,
तरुनि-मनि नित्य नवतन किसोरी।
कृष्ण-तनु लीन मनरूप की चातकी,
कृष्ण-मुख-हिम-किरिन[5] की चकोरी ॥
कृष्णदृग-भृङ्ग-विश्राम हित पद्मिनी[6],
कृष्णदृग-मृगज[7] बंधन सुडोरी।
कृष्ण-अनुराग-मकरंद की मधुकरी,
कृष्ण-गुन-गान-रस-सिंधु बोरी ॥
विमुख परचित तें चित्त जाकौ सदा,
करत निज नाह[8] की चित्त-चोरी।
प्रकृति यह 'गदाधर' कहत कैसे बनै,
अमित महिमा, इतै बुद्धि थोरी[9] ॥११॥

बसंत

देखौ प्यारी, कुञ्ज-बिहारी मूरतिवंत बसंत ॥
मौरी[10] तरुनि तरनिजा[11] तन में, मनसिज-रस बरसंत ॥
अरुन अधर नव-पल्लव-सोभा बिहँसन कुसुम-बिकास।

१बेड़ी, बंधन। २शिकारी। ३फाँसी। ४ओर। ५चन्द्रमा। ६कमलिनी।
७हिरन का बच्चा। ८नाथ, स्वामी। ९थोड़ी; छोटी। १०बौरी हुई। ११यमुना।

फूले विमल कमल-से लोचन, सूचत[1] मन उल्लास ॥
चलि चूरन कुन्तल अलिमाला, मुरली कोकिल नाद ॥
देखत गोपीजन वनराई[2], मदन मुदित उनमाद ॥
सहज सुवास स्वास मलयानिल[3], लागत परम सुहायौ ॥
श्रीराधा-माधवी 'गदाधर', प्रभु परसत सचु[4] पायौ ॥१२॥

सारङ्ग

दधि मथति नन्दनरिंद-रानी करति सुत-गुन-गान ।
नील नीरद अंग दिव्य दुकूल वर परिधान ॥
केस कुसुमनि किरनि मनि ताटंक[5] झलकत कान ।
स्वेदकन[7]-गन वदन-विधु पर सुधा-विंदु-समान ॥
नेत[8] करषत हरष वरषत वलय-किंकिन-क्वानें[9] ॥
पय-पयोधर[10] स्रवत, चातक-कृष्ण पिवत निदान ॥
सहस-आनन कहि सकै नहिं जासु भाग्य-वखान ।
जगतवंद्य गोविंद-माता 'गदाधर' करि ध्यान ॥१३॥

दंडक

जय महाराज व्रजराज-कुल-तिलक गोविंद गोपीजनानन्द राधारमन ।
नन्दनृप-गेहिनी-गर्भ-आकर[11] रतन, सिष्ट[12]-कष्टद धृष्ट दुष्ट दानव-दमन ॥
वल-दलनगर्व-पर्वत-विदारन[13] व्रजभक्त-रच्छा-दच्छ[14] गिरिराज-धरधीर ।
विविध वेला कुसल मुसलधर[15] संगलै चारुचरनांकचिततरनि-तनया-तीर ॥
कोटि कंदर्प[16]-दर्पापहर[17] लावन्य धन्य, वृन्दारन्य-भूषन मधुर तरु ।

१प्रकट करते हैं । २वनराज । ३मलय-सुगंधित वायु । ४सुख । ५राजा । ६तरौना । ७पसीने की बूंदे । ८मंथानी की डोरी । ९झनकार; शब्द । १०मेघ, स्तन । ११खानि । १२साधु । १३इन्द्र; पुराणों में लिखा है कि पर्वत पहले सपक्ष थे, ये उड़-उड़कर बड़ा उपद्रव मचाते थे । इन्द्र ने, अपने वज्र से उनके पंख काटकर, संसार में शांति स्थापित कर दी । १४चतुर । १५बलभद्रजी । १६कामदेव । १७गर्व-भंजन ।

मुरलिका-नाद-पीयूषनि महानंदन विदित सकल ब्रह्म रुद्रादि सुरवरु ॥
'गदाधर' विषे वृष्टि करुना-दृष्टि करु दीन को त्रिविध-संताप ताप-तवन[1] ।
हैं सुनी तुव कृपा कृपनजन[2] गामिनी, बहुरि पैहै कहा मो बराबर कवन ॥१४॥

मलार

रंग हिंडोरना[3] मन मोह्यौ ।
सहज वृन्दाविपिन-पावस, सदा आनन्द-केलि ।
जहँ सघन द्रुम-घटा-घन सौं किधु-कंचन-वेलि ॥
कुसुम किसलय सुरंग[4] सुरधनु मंद पवन झकोर ।
नदत[5] गहगह[6] कंठ भरि कलकंठ चित्रक मोर ॥
मनिन-बरनी किरनि नव तृन निरखि मुदित कुरंग ।
थल कमलछल छत्राक[7] बिच-बिच बूट विद्रुम-भंग ॥
भ्रमत अलि-मद-अंध विविध सुगंध-लहरि अपार ।
तहँ कलित-ललित हिँडोरना कल कल्पद्रुम[8] की डार ॥
खचे मन मानिक महाघन, रचे चित्र-विचित्र ।
देखिबे कौं किये अनिमिष नैन रसिकन मित्र ॥
झलमलत झलमलनि मोती मनहुँ आनँद-नीर ।
तिहिं निरखि सुर मुनि हार कोटिक लजे तजि मनधीर ॥
वै नपुन बीना बेनु, लाल प्रमान गान-विधान ।
बलि 'गदाधर' स्याम-स्यामा-चरनप्रद कल्यान[9] ॥१५॥

मलार

झूलै कुँवरि गोप राइन की । मधि राधा सुन्दरि सुकुमारि ॥
प्रथमहि रितु पावस आरम्भ । श्रीवृषभानु मँगाये खंभ ॥
काढ़ि भवन तें रतन अमोल । पचि-रचि-रुचिर रचाइ हिंडोल ॥

१तपन, जलन । २पतित । ३हिंडोला । ४रंग-बिरंगा इन्द्रधनुष । ५बोलते हैं । ६सुरीला गला । ७कुकुरमुत्ता । ८कल्पवृक्ष; यहाँ कदंब से तात्पर्य है । ९आनंद ।

एक-तें एक सुभग सुकुमारि । रची मनों विधि कुंकुम नारि ॥
जगमगाति नव जोवन-जोति। निरखि नैन चकचौंधी होति ॥
वरन-वरन चूनरी सुरंग । फवी सलौने सोने-अंग ॥
राजत मनि-अभरन रमनीय । गुहीं जुही कबरीं कमनीय[१] ॥
गावहिं सुघर सरस रसगीत । दुलरावैं मन मोहन मीत ॥
प्रेम-बिवस भई सकहिं न गाइ । उपज्यौ आनँद उर न समाइ ॥
दुरि देखत गोकुल-कुलराइ[२] । सोभा निरखत मन न अघाइ ॥
'मुदित' गदाधर' नन्दकिसोर । लोचन भये भरे के चोर ॥१६॥

देश

राधे, रूप अद्भुत रीति ।
सहज जे प्रतिकूल[३] तो तन, रहे छाँड़ि अनीति ॥
कचनि[४] रचना राहु ढिगहीं, मुदित बदन मयंक ।
तिलक-बान, कमान[५] द्दग, मृग रहे निपट निसंक ॥
रतन-जतननि जटित जुग ताटंक[६] रवि रहे छाज ।
तदपि दूनी जोति मोतिन, मंडली उडुराज ॥
अधर सुघर सुपक्व बिंबा, सुभग दसन अनार ।
धीर धरिकै कीर-नासा, करत नहिं संचार ॥
निकट कटि-केहरी पै, गज-गति न मेटी जाति ।
प्रगट गज-गति जहाँ जंघा, कदलि-रुचि हुलसाति[७] ॥
'गदाधरि' वलि जाइ बूझत, लगत हैं मन त्रास ।
इती संपति सहित क्यों पय, देत नाहिं मवास[८] ॥१७॥

१सुन्दर । बेनी में जुही के फूल गुँथे हुए हैं । २श्रीकृष्ण । ३परस्पर-विरोधी; विपरीत धर्मवाले । ४बाल, जिनके कालेपन की उपमा काले राहु से दी गई है । ५धनुष । ६तरौना । ७प्रगट...हुलसाति = हाथी केले के पेड़ को पकड़ कर गिरा देता है, पर यहाँ यह बात नहीं है । गज-गामिनी राधिका की जंघा रूपी केले तो और भी प्रसन्न होते हैं । ८शरण ।

हिंडोल

भूलत नागरि नागर लाल ।
मंद-मंद सब सखी भुलावति, गावति गीत रसाल ॥
फरहराति पटपीत[1] नील[2] के, अंचल चंचल, चाल ।
मनहुँ परस्पर उमँगि ध्यान-छवि, प्रगट भई तिहिं काल ॥
सिलसिलात अति प्रिया-सीस तें, लटकति बेनी नाल ।
जनु पिय-मुकुट-बरहि[3] भ्रमबस तहँ, ब्याली[4] बिकल बिहाल ॥
स्यामल गौर परस्पर प्रति छवि, सोभा बिसद बिसाल ।
निरखि 'गदाधर' रसिक कुँवरि-मन, परयौ सुरस जंजाल ॥१८॥

केदारा

आजु मोहन रची रासरस-मंडली ।
उदित पूरन निसानाथ निर्मल दिसा,
देखि दिनकर-सुता[5] सुभग पुलिन-स्थली[6] ॥
बीच हरि बीच हरिनाच्छि-माला[7] बनी,
तरुनता पिछ जनु कनक-कदली रली[8] ॥
पवन-बस चपल दल तुलना सों देखियत,
चारु हस्तक भेद भाँति भारी भली ॥
चरन-विन्यास[10], कपूर-कुंकुम - धूरि ।
पूरि रहि चारिदिसि कुञ्जबन की गली ॥
कुन्द - मन्दार - अरविंद - मकरंद - मद,
पुञ्ज-पुञ्जनि मिले मन्जु गुंजत अली ॥
गान-रस तान के बान बेध्यौ बिस्व.

१श्री कृष्ण का पीतांबर । २राधिका का नीलांबर । ३मोर । ४सर्पिणी । ५यमुना । ६तट का स्थान । ७मृगनयनी गोपियों की पंक्ति । ८मिली । ९नृत्य विशेष । १०गति के ताल के साथ चरणों का ठमक-ठमक रखना । ११मृणाल ।

जान अभिमान मुनि-ध्यान-रति दलमली[1] ॥
अधर गिरधरन के लागि कैं जगत,
विजयी भई माधुरी मुरलिका काकली[2] ॥
रस-सिरे मध्य मण्डल बिराजत खरे,
नन्दनन्दन कुँवर भानुजू की लली[3] ।
देखु अनिमेषु लोचन 'गदाधर' जुगल,
लेखु प्रिय आपने भाग-महिमा फली ॥१९॥

सारङ्ग

संगीत-रस कुसल नृत्य-आवेस-वस,
लसति राधा रस-मण्डल-विहारिनी ॥
दिव्य गति चरन चारन चक्रवर्ती,
तो कुँवर स्यामल मनोहर मनोहारिनी ॥
लोचन विसाल मृदुहास मन उल्लास,
नन्दनंदन-मनसि[4] मोद - विस्तारिनी ॥
मृदुल पद-विन्यास चलित वलयावती,
किंकिनी मंजु मंजीर झंकारिनी ॥
रूप निरुपम काँति भाँति वरनी न जाति,
पहिरि आभरन रवि षोड़स-सिंगारिनी ॥
मृदंग बीना ताल सुर सम संचार,
चारुता चातुरी सार अनुसारिनी ॥
मधुर मुख-सबद पीयूष बरसत मनों,
सींचि पिय-स्रवन तन-पुलक[5]-कुल-कारिनी ॥
कहि 'गदाधर' जु गिरिराजधर तें अधिक,
विदित[6] रस-ग्रंथि अद्भुतकला-धारिनी ॥२०॥

१नष्ट करदी, भंग कर दी। २मधुर ध्वनि। ३लाड़िली पुत्री। ४मन में। ५रोमांच। ६प्रकट।

गौरी

आजु ब्रजराज कौ कुँवर वनतें वन्यो[१],
देखि, आवत मधुर अधर रंजित वेनु।
मधुर कल गान निज नाम सुनि स्रवन पुट,
परम प्रमुदित वदन फेरि हूँकति धेनु ॥
मद-विघूर्नित[२] नैन मन्द विहँसनि वैन,
कुटिल अलकावलि ललित गोपद-रेनु[३]।
ग्वाल बालनि-जाल करत कोलाहलनि
सृङ्ग दल ताल धुनि रचत संचत[४] चैनु[५] ॥
मुकुट की लटक, अरु चटक[६] पटपीत की
प्रगट अंकुरित[७] गोपी मनहिं मैनु[८]।
कहि 'गदाधर' जु इहि न्याय[९] ब्रज-सुन्दरी
विमल वनमाल के वीच चाहुत ऐनु[१०] ॥२१॥

कान्हरा

जम्हाई रिझाई सारंग-नैनी[११]।
अति रस काननि अमरत वरषत,
अँखियाँ जल झलमलाय[१२] आई तन पुलकनि-स्रेनी।
आयु तकति करताल देत[१३] दीनों न जोइ,
मुरझाइ भाइ-भीनी[१४] गज गैनी[१५] ॥

प्रेम-पागि उर लागि रही 'गदाधर'
प्रभु के पिय अंग-अंग-सुखदैनी ॥२२॥

भैरवी

अघ-संहारिनी, अधम-उधारिनी,
कलिकाल-तारिनी मधु-मथन[१]-गुन-कथा।
मङ्गल-विधायिनी, प्रेम-रस-दायिनी,
भक्ति अनपायिनी[२] होइ जिय सर्वथा ॥
मथि वेद[३] मथि ग्रंथ कथि व्यासादि,
अजहुँ आधुनिक तन कहत हैं मतिजथा।
परमपद सोपान करि 'गदाधर' पान,
आन अलाप[४] तें जात जीवन वृथा ॥२३॥

सारङ्ग

जमुना देवी कों न भलाई।
नामरूप गुन लै हरिजू कौ, न्यारी अपनी चाल चलाई ॥
अपवस[५] देस कियो भ्राता[६] को, उनहिं परसि कोउ तहाँ न जाई।
जे तन तजत तीर तुम्हरे, ते तात-किरन में गैल लगाई[७] ॥
मुक्तिवधू कौ करि दूतत्व[८], अधमनि कों लै आनि मिलाई।
आपुन स्याम, आन[९] उज्वल करि, तात[१०] तपत अपु सीतलताई ॥
जल कों छल करि[११], अनल अघन कों, यह सुनिकैं कोउ क्यों पतिआई।

१मधु दैत्य को मारनेवाले श्रीकृष्ण। २निरंतर रहनेवाली। ३वेदों में से सार निकालकर। ४बातचीत। ५अपने अधीन। ६यमुना जी ने अपने भाई यम का देश अपने अधीन कर लिया, अर्थात् अपने पुण्य-प्रताप से नरक के द्वार बन्द कर दिये। ७हे यमुने, जो तुम्हारे तीर पर मरते हैं, वे तुम्हारे पिता सूर्य के मंडल का भेद कर सीधे ब्रह्म-लोक चले जाते हैं। ८दूतीपन। ९दूसरों को निर्मल कर देती है १०सूर्य से आशय है। ११छद्म-वेष धारण कर।

निसिदिन पच्छपात पतितनकौ, तदपि 'गदाधर' प्रभु मन भाई ॥२४॥

भैरवी

मो कुल[1] कर्म कलमष नासत, देखि प्रवाह प्रभाकर-कन्या[2] ।
वह देखौ पाप जात जित-हित वहे, ज्यों मृगराज देखि मृगसैन्य ॥
दै पय-पान पूत लौं[3] पोषति, जननि कृतारथ धनि वहु धन्या ।
दीनों चहति 'गदाधरजू' पै, चरन-सरन अति प्रीति अनन्या ॥२५॥

गाली

सुन्दर स्याम सुजान सिरोमनि, देउँ कहा कहि गारी[4] हो ।
बड़े लोग के औगुन वरनत, सकुचि उठति मन भारी हो ॥
को करि सकै पिता कौ निरनौ[5], जाति-पाँति को जानै हो ।
जाके मन जैसीयै आवति, तैसिय भाँति वखानै हो ॥
तुम पुनि प्रकट होय वारे[6] तें, कौन भलाई कीनी हो ।
मुक्तिवधू उत्तमजन-लायक, लै अधमनि कौं दीनी हो ॥
वसि दस मास गर्भ माता के, इहि आसा करि जाये* हो ।
सो घर छाँड़ि जीभ के लालच[8] भये हो पूत पराये[9] हो ॥
वारे तें गोकुल गोपिन के सूने घर तुम डाटे हो ।
पैठे तहाँ निसंक रंक-लौं दधि के भाजन चाटे हो ॥
आपु कहाइ धनी को ढोटा[10] भात कृपन लौं माँग्यो हो ।

१ मेरे अर्थात जीव के सब शुभ शुभ कर्म । २ सूर्य-पुत्री यमुना । ३समान । ४ विवाह की गालियाँ; एक प्रकार का गीत, जिसमें विवाह के अवसर पर ससुराल की स्त्रियाँ दूलह को व्यंग्यभरी बातें सुनाती हैं। ५निर्णय । ६बचपन से । ७पैदा किये गये । ८चटोरपन । ९दूसरे के; देवकी के गर्भ से जन्म लेकर दूध-दही के लालच से गोकुल में आकर अपने को यशोदा के पुत्र कहलाने लगे । १०बेटा ।

*इस पद में विरोधाभास अलंकार है । महाकवि केशवदास ने रामचन्द्रिका में सरयू का भी ऐसा ही वर्णन किया है ।

मान-भंग पर दूजैं[1] जाचतु, नैकु सँकोच न लाग्यो हो ॥
सब कोउ कहत नन्दबाबा कौ, घर भरयौ रतन अमोले हो ।
गर गुंजा, सिर मोर-पखौवा[2], गायन कै सँग डोलै हो ॥
मोहन बसीकरन चट-चेटक[3], मंत्र-जंत्र सब जानै हो ।
तातें भले-भले सब तुमकों भले-भले करि मानै हो ॥
बरनों कहा जथामति मेरी बेदहुँ पार न पावै हो ।
भट्ट 'गदाधर' प्रभु की महिमा गावत ही उर आवै हो ॥२१॥

१सुदामा से चावल माँग कर खाये । २मोर के पखे । ३इन्द्रजाल, जादू टोना ।

स्वामी हरिदास

छप्पय

जुगल-नाम सों, नेम, जपत नित कुञ्जविहारी।
अवलोकत नित रहैं केलि-सुख के अधिकारी॥
गान-कला-गंधर्व स्याम-स्यामा कों तोषैं।
उत्तम भोग लगाय मोर मरकट तिमि पोषैं॥
नित नृपति द्वारा ठाढ़े रहैं, दरसन आसा जास की।
अस आसधीर-उद्योतकर, 'रसिक' छाप हरिदास की॥

—नाभाजी

श्रीस्वामी हरिदासजी का जन्म-संवत् अनिश्चित-सा ही है। किन्तु इसमें संदेह नहीं कि यह सम्राट् अकबर के सिंहासनारूढ़ होने के पहले ही प्रख्यात हो चुके थे। स्वामीजी कहाँ, किस कुल में अवतीर्ण हुए थे, यह-भी कुछ विवादास्पद-सा है। वे लोग, जो इनके वंशधर कहे जाते हैं, इन्हें सारस्वत ब्राह्मण, मुलतान के समीप उच्च गाँव का निवासी बताते हैं। और स्वर्गीय बाबू राधाकृष्णदास ने 'भक्तसिंधु' के अनुसार इनका सनाढ्य ब्राह्मण, कोल के निकट हरिदासपुर का निवासी होना लिखा है। भक्तसिंधु के साथ स्वामीजी की शिष्य-परम्परावाले श्रीसहचरिशरण भी अपना स्वर मिला रहे हैं :

श्री स्वामी हरिदास रसिक सिरमौर अनीहा।
द्विज सनाढ्य सिरताज सुजसु कहि सकत न जीहा॥
गुरु-अनुकंपा मिल्यौ ललित निधिवन तमाल पै।
सत्तर लौं तरु बैठि गाने गुन प्रिया-लाल पै॥

—ललितप्रकाश की वाणी, पृष्ठ १३१

उसी छंद के आगे सहचरिशरणजी फिर लिखते हैं :

वीटल विपुल सनाढ्य अनाढ्य धन-धर्म पताका।
श्री गुरु अनुग अनन्य अनूपम जनु ससि राका॥

बीठल विपुलजी स्वामीजी के मामा तथा प्रधान शिष्य थे। बीठल विपुलजी सनाढ्य थे। सनाढ्यों एवं सारस्वतों का परस्पर संबन्ध नहीं होता। अतएव स्वामीजी को भी सनाढ्य माना है। इस विषय पर बहुत विवाद चल चुका है। हमें इसपर कोई आग्रह नहीं कि स्वामीजी किस वंश के विभूषण थे—सनाढ्य थे या सारस्वत। हमारी दृष्टि में तो वे इन सभी सांसारिक जाति भेदों और वंश-बन्धनों से परे थे। वे तो वास्तव में 'भागवत' वंश के थे और 'अच्युत' गोत्रज, जो प्रमाण मिले वे हमने ऊपर लिख भर दिये हैं। अपनी राय हमने किसी पर स्थिर नहीं की। व्रज-माधुरी रस के अनन्य मधुव्रत स्वामी हरिदासजी महाराज सनाढ्य थे या सारस्वत इन बातों पर हमारी दृष्टि ही नहीं जानी चाहिए वह तो बस 'श्रीराधाकृष्णीय' थे।

स्वामी हरिदासजी बड़े ही त्यागी निस्पृह और रसिकाग्रगण्य महात्मा थे। निबार्क-संप्रदाय के अंतर्गत 'टट्टी-संस्थान' के संस्थापक आप ही हैं। संगीत के आप बड़े भारी आचार्य माने जाते हैं। प्रसिद्ध गायनाचार्य तानसेन के आप गुरु थे। कहते हैं, एक बार साधु का भेष धारणकर तानसेन के साथ बादशाह अकबर भी स्वामीजी का संगीत सुनने गया था। बहुत सारी भेंट रखने पर भी आपने कुछ ग्रहण नहीं किया।

आप अष्टप्रहर श्रीराधाकृष्ण के लीला विहार में मस्त रहा करते थे। भावावेश में आप को प्रायः सहजा समाधि लगी रहती थी। सुनते हैं, एक बार एक भक्त स्वामीजी को भेंट करने के लिए इत्र की एक शीशी लाया। स्वामीजी ने उस शीशी को ज़मीन पर उँडेल दिया। सेवक के पूछने पर आपने इत्र उँडेल देने का यह कारण बतलाया कि 'आज मैं श्री बिहारीजी के साथ होली खेल रहा था। तुम अच्छे अवसर पर इत्र

साथे: देखो, काम आगया। मैंने तुम्हारी शीशी को श्रीबिहारीजी के ऊपर उँड़ेला है। ज़मीन पर नहीं विश्वास न हो, देख आओ।" सचमुच ही श्रीबिहारीजी के वस्त्र इत्र से सराबोर पाये गये। इस प्रसंग के लिखने का यह तात्पर्य नहीं है कि लोग इसका ऐतिहासिक तत्व देखने की चेष्टा करें। इसपर कोई विश्वास करे या न करे, पर इसमें तो संदेह नहीं, कि महात्माओं के भक्ति-भाव अद्भुत होते हैं।

स्वामीजी ने पदों के अतिरिक्त और छंदों में कविता नहीं लिखी।[1] आपके पद भी ऐसे हैं, जो साधारणतया पढ़ने में पिंगल-संगत नहीं जान पड़ते, पर संगीत के रूप में वे पूरे उतरते हैं। उनमें कविता का बाहरी चमत्कार चाहे न हो, पर मनोहारिता, मार्मिकता और भक्ति तो उनमें बड़े ऊँचे दरजे की है। आपने सिद्धांत और शृंगार दोनों पर ही पदावली लिखी है। सिद्धांत के १६ तथा शृंगार-रं[illegible] भी ११० पद मिलते हैं।[2]

१ 'कविता-कौमुदी' (भाग १) के पृष्ठ १४१ पर स्वामी हरिदासजी का एक कवित्त लिखा है। वह यह है :

गायौ न गोपाल मन लाइ कै निवारि लाज,
पायौ न प्रसाद साधु-मंडली में जाइ कैं।
धायौ न धमक वृन्दाविपिन की कुंजन में,
रह्यौ न सरन जाय बिठ्ठलेस राइ कैं॥
नाथ जू न देखि छक्यौ छिन हूँ छबीली छबि,
सिंह पौरी परस्यौ नाहिं सीसहूँ नवाइ कैं।
कहै 'हरिदास' तोहि लाज हू न आवै नेक,
जनम गँवायौ न कमायौ कछु आइ कैं॥

यह कवित्त स्वामी हरिदासजी का रचा नहीं है। वल्लभ-कुल में हरिदास नाम के एक अन्य कवि हुए हैं, उन्हीं का यह कवित्त है। इनके और भी कवित्त पाये जाते हैं। वैसे ही 'बिट्ठलेस' न धजू' और 'सिंह पौरि' प्रत्यक्ष ही वल्लभ-कुल की साक्षी दे रहे हैं।

२. 'मिश्रबंधुविनोद' के प्रथम संस्करण के ३०७ पृष्ठ पर स्वामी हरिदासजी

आपकी विहार-विषयक पदावली को 'केलिमाला' भी कहते हैं। टट्टीसंस्थान में एक से एक बढ़कर सुकवि, त्यागी, अनुरागी और अनुभवी महात्मा हुए हैं। श्रीकृष्ण-संबन्धी कविता-सरिता के अविरत प्रवाह में टट्टीवालों ने बड़ा योग दिया है। इस सब का श्रेय रसिक-सम्राट् श्रीस्वामी हरिदासजी को ही है। आपके कुछ पद नीचे उद्धृत किये जाते हैं:

सिद्धांत

विभास

ज्योंही-ज्योंही तुम राखत हौ,
त्योंही-त्योंही रहियतु हैं, हो हरि।
और अचरचै पाइ धरौं,
सु तौ कहौं कौन के पैंड भरि[1] ॥
जदपि हौं अपनो भायो[2] कियो चाहौं,
कैसे करि सकौं, सो तुम राखो पकरि।
कहि 'हरिदास' पिंजरा के जनावर लौं,
तरफराइ रह्यो उड़िबे कों कितोउ करि ॥१॥*

विभास

काहू कौ वस नाहिं तुम्हारी कृपातें, सब होय विहारी-विहारिनि।[3]
और मिथ्या प्रपंच काहे कों भाषिये, सो तो है हारनि[4]।
जाहि तुमसों हित, ताहि तुम हित करौ, सब सुख-कारनि।

कृत 'भरथरी-वैराग्य' का उल्लेख है, किंतु हमें यह सत्य नहीं जान पड़ता। क्योंकि स्वामीजी ने श्रीराधाकृष्ण के नित्य विहार-संबंधी पदों के अतिरिक्त और कोई ग्रन्थ नहीं लिखा। संभव है, 'भरथरी-चरित्र' के रचयिता कोई दूसरे ही हरिदास हों।

१ बल से, आधार से। २ मन-चाहा। ३ श्रीकृष्ण और राधिका। ४ हार, वृथा श्रम।

*इस पद में जीव की परतन्त्रता तथा भगवत्-कृपा से मुक्ति प्राप्ति दिखाई गई है।

श्री 'हरिदास' के स्वामी स्यामा कुंज-बिहारी, प्राननि के आधारनि ॥१॥*

आसावरी

हित तौ कीजै कमलनैन सों, जा हित के आगे और हित लागै फीको ।
कै हित कीजै साधु-सँगति सों, जावै कलमष जी को ॥
हरि कौ हित ऐसो जैसो रंग मजीठ[1], संसार हित कसूँभि[2] दिन दुती[3] को ।
कहि 'हरिदास' हित कीजै बिहारी सों, और न निवाहु जानि जी को ॥२॥

तिनका[4] बियारि[5] के बस ।
ज्यों भावै त्यों उड़ाइ लै जाइ आपने रस[6] ।
ब्रह्मलोक सिवलोक और लोक अस ॥
कहि 'हरिदास' विचारि देख्यौं बिना बिहारी नाहीं जस ॥४॥

आसावरी

हरि के नाम कौं आलस क्यों, करत है रे, काल फिरत सर साँधैं[7] ।
हीरा बहुत जवाहर संचे, कहा भयो हस्ती दर बाँधैं ॥
बेर-कुबेर[8] कछू नहिं जानत, चढ़ो फिरत है काँधैं ॥
कहि 'हरिदास' कछू न चलत जब, आवत अंत[9] की आँधैं ॥५॥

आसावरी

मन लगाइ प्रीति कर-करवा[10] सौं, ब्रज-बीथिन दीजै सोहिनी ।
वृन्दावन सौं, बन-उपबन सौं, गुंजमाल कर पोहिनी[11] ॥

१मजीठ का रंग कभी छूटता ही नहीं । २कच्चा लाल रंग । ३दो दिन का, क्षणिक । ४तृण, यहाँ जीव से आशय है । ५वायु; यहाँ भगवत्प्रेरणा से तात्पर्य है । ६अपनी इच्छा से । ७धनुष पर बाण चढ़ाये हुए; एकदम तैयार । ८मौक़ा-बेमौक़ा । ९मृत्यु की घड़ियाँ । १०मिट्टी का एक टोंटीदार बरतन; स्वामी जी अपने पास बरतनों के नाते एक करवा ही रखते थे । ११गूँथना ।

*इसमें भी जीव के पुरुषार्थ की हीनता और भगवान् की कृपा की प्रधानता कही गई है ।

गो गो-सुतन सौं, मृग-सुतन सौं, और तन[1] नैकु न जोहिनी[2] ॥
'श्रीहरिदास'के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी सौं, चित्त ज्यों सिर पर दोहिनी[3] ॥६॥

कल्याण

हरि कौ ऐसोई सब खेल ।
मृगतृस्ना जग व्यापि रही है कहूँ बिजोरो[4] न बेल ॥
धन-मद जोवन-मद औ राज-मद, ज्यों पंछिन में डेल[5] ॥
कहि 'हरिदास', यहै जिय जानौ, तीरथ कौ सो मेल[6] ॥७॥

कल्याण

झूँठी बात साँची करि दिखावत हौ, हरि नागर ।
निसिदिन बुनत-उधेरत[7] ही जात प्रपंच कौ सागर ॥
ठाठ बनाइ धर्‌यो[8] मिहरी कौ, है पुरुष[9] तें आगर[10] ।
कहि 'हरिदास' यहै जिय जानौ, सुपने कौ-सो जागर ॥८॥

कल्याण

जौलौं जीवै तौलौं हरि भजु रे मन, और बात सब बादि[11] ।
दिवस चारि कौ हला-भला[12], तूं कहा लेइगौ लादि ॥
माया-मद गुन-मद जोवन-मद, भूल्यौ नगर-बिवादि ।
कहि 'हरिदास' लोभ चरपट भयो, काहे की लागै फिरादि[13] ॥९॥

कल्याण

प्रेम-समुद्र रूप-रसि गहिरे, कैसे लागै घाट ।
बेकार्‌यो दै जानि कहावत, जानिपनौ[14] की कहा परी बाट ॥

१ओर । २देखना । ३जैसे स्त्रियाँ अपने सिर के घड़े पर, सब से बात-चीत करती हुई भी, सदा एकाग्रचित से ध्यान रखती है । ४फल विशेष । ५एक पक्षी । ६क्षणिक मेल, तीर्थों में क्षणभर के लिए कितनों से ही मेल-मिलाप हो जाता है । ७बनाते-मिटाते । ८स्त्रीः यहाँ 'माया' से तात्पर्य है । ९महा । १०बढ़कर । ११वृथा । १२चैन-चान । १३फ़र्याद । १४ज्ञान ।

काहू[1] को सर परै न सूधो, मारत गाल[2] गली-गली हाट[3]।
कहि 'हरिदास' बिहारिहिं जानो, तकौ न औघट[4] घाट ॥१०॥

केलिमाला

कान्हरा

प्यारी[5], जैसे तेरी आँखिन में हौं अपनपौ
देखत, तैसे तुम देखति हौ किधौं नाहीं ?'
हौं तोसौं कहौं प्यारे[6], आँख मूँदि
रहौं, लाल[7] निकसि कहाँ जाहीं ॥
मोकों निकसिवे कों ठौर बताओ,
साँची कहौं, बलि जाउँ, लागौं पाहीं[8] ।'
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा;
तुमहिं देख्यौ चाहत और सुख लागत नाहीं ॥११॥*

कान्हरा

आजु तृन-टूटत[9] है री, ललित त्रिभंगी[10] पर।
चरन-चरन पर, मुरलि अधर पर,
चितवनि बंक छबीली भ्रुव पर ॥
चलहु न बेगि राधिका पिय पै[11],
जो भई चाहत हौ सर्वोपरि।
'श्रीहरिदास' समय जब नीको, हिल-मिलि केलि अटल रति ध्रुव पर ॥१२॥

१किसी का अहमन्यतायुक्त पुरुषार्थ सफल नहीं हुआ। २दाँव बनाता फिरता है। ३बाजार। ४कुमार्ग। ५श्रीराधिकाजी से आशय है। ६श्रीकृष्ण से आशय है। ७श्रीकृष्ण। ८पैरों पड़ता हूँ। ९बलिहारी है। १०बाँकेबिहारी श्रीकृष्ण। ११पास।

*इस पद में मिलन-मग्न श्रीराधाकृष्ण की तन्मयता का सुन्दर चित्र खींचा गया है।

कान्हरा

अद्भुत गति उपजति, अति नाचत, दोऊ मंडल कुँवर-किसोरी।
सकल सुगन्ध अङ्ग भरि भोरी, पिय नृत्यति, मुसुकति मुख मोरी॥
ताल धरैं वनिता मृदङ्ग, चंद्रा-गति-घात[1] वजैं थोरी-थोरी।
मधुर भाव-भाषा विचित्र अति, ललित गीत गावैं चित चोरी॥
श्रीवृन्दावन फूलनि फूल्यौ, पूरन ससि, समीर-गति[2] थोरी।
गति विलास, रस-हास परस्पर, भूतल अद्भुत जोरी[3]॥
श्रीजमुना-जल बिथकित[4], पुहुपनि, छवि रतिपति डारत तून-तोरी।
'श्रीहरिदास'के स्वामी स्यामा, कुंजविहारी जू कौ रस[5] रसना कहै कोरी॥१३

कान्हरा

तुव जस कोटि ब्रह्मांड विराजे राधे।
श्री सोभा वरनी न जाइ अगाधे, बहुतक जन्म विचारत ही गये साधे-साधे[6]॥
'श्रीहरिदास' कहतरी प्यारी, ये दिन[7] मैं क्रम करि-करि लाधे[8]॥१४॥

कान्हरा

सोई तो वचन मो सौं मानि, तैं मेरो लाल मोह्यो, री साँवरो॥
नव निकुञ्ज-सुखपुञ्ज-महल में सुवस[9] वसौ यह गाँवरो॥
नव-नव लाड़ लड़ाइ लाड़िली नहिं-नहिं यह ब्रज बावरो॥
'श्रीहरिदास'के स्वामी स्यामा, कुञ्जविहारी पै वारूँगी मालती-भावरौ॥१५

केदारा

झूलत डोल[10] दुलहिनी-दूलहु।
उड़त अबीर कुमकुमा छिरकत, खेल परस्पर भूलहु॥
बाजत ताल रवाब[11] और बहु तरनि तनैया[12] कूलहु।

१मृदंग की एक थाप। २ मंद-मंद वायु। ३जोटा। ४स्थिर हो गया। ५आनन्द। ६साधन करते-करते। ७तेरी महिमा करने के लिए ये दिन। ८प्राप्त किये। ९स्वतंत्रता से, सुख से। १०फूलों का झूला। ११ वाद्य-विशेष। १२सूर्य-पुत्री यमुना।

(श्रीहरिदासके) स्वामी स्यामा कुञ्जविहारी को अंत[1] नहिं फूलहु ॥१६॥

केदारा

प्यारी, तेरो वदन-चंद देखे,
मेरे हृदय-सरोवर में कुमोदिनी फूली।
मन के मनोरथ तरंग अपार,
सुन्दरता तहँ गति-मति भूली॥
तेरो कोप ग्राह[2] ग्रसै लिये जात,
छुड़ाये न छूटत रह्यो बुधिबल भूली[3]।
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा चरन-बनसी[4],
गहि काढ़ि रहे लपटाइ गहि भुजमूली ॥१७॥

---

[1] अन्त तक आनंद नहीं है। [2] क्रोध-रूपी मगर। [3] निष्फल। [4] लोहे का एक काँटा, जिसमें छोटे चारा पर मछलियाँ फँसाते हैं।

श्रीसूरदास मदनमोहन

छप्पय

गान-काव्य-गुन-रासि सुहृद सहचरि-अवतारी।
राधाकृष्ण-उपासि, रहसि सुख के अधिकारी॥
नवरस मुख्य सिंगार विविध भाँतिन करि गायौ।
वदन उच्चरत बेर सहस पाछैं ह्वै धायौ॥
अंगीकारहि की अवधि, इया आख्या भ्राता जमल।
श्रीमदनमोहन सूरदास की नाम-सृङ्खला जुरि अटल॥

—नाभाजी

श्रीसूरदास मदनमोहन, सम्राट अकबर के राज्य-काल में, संडीले के अमीन थे। इनका रचना काल सम्वत् १५९० के लगभग जान पड़ता है। इनका असली नाम सूरध्वज था। आप श्री मदनमोहन जी* के परम भक्त थे। अपने नाम के साथ अपने इष्टदेव का नाम इतनी घनिष्ठता से सम्बद्ध कर लिया था, कि इनका असली नाम छिप ही गया और लोग इन्हें सूरदास मदनमोहन कहने लगे, जैसा कि नाभाजी ने लिखा है।

श्रीमदनमोहन सूरदास की नाम-सृङ्खला जुरि अटल।

यह जाति के ब्राह्मण और श्री चैतन्य सम्प्रदाय के नैष्ठिक वैष्णव थे। साधु-सेवी तो आप ऐसे थे कि जो रुपया-पैसा आता, बिना आगा-पीछा देखे, साधु-सेवा में सब खर्च कर डालते थे। कहते हैं, एक बार संडीले

*'मिश्रबन्धुविनोद' के ३५४ पृष्ठ पर इनके सम्बन्ध में लिखा है कि यह मदनमोहन के शिष्य थे। शायद विनोदकारों को 'मदनमोहन' नाम में किसी सांप्रदायिक गोसाईं' का भ्रम हो गया है।

की तहसील से तेरह लाख रुपया तहसील होकर आया। आपने सब का सब साधु-सेवा में खर्च कर दिया। शाही खजाने में कंकड़ पत्थरों से भरकर संदूक भेज दिये। संदूकों के अंदर एक-एक कागज भी रख दिया, जिसमें लिखा था—

तेरह लाख सँडीले आये, सब साधुन मिलि गटके।
'सूरदास मदनमोहन' आधी रात सटके।

आपकी उदारता और सरलता पर बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ। कहने लगा—'रुपये साधुओं ने गटक लिये तो कोई हर्ज नहीं, पर सूरदास क्यों आधी रात को सटक गये; भागने का काम ही क्या था ?' बादशाह ने आपके पास एक फरमान, कसूर की माफी और दरबार में हाजिर होने का भेजा। पर सूरदासजी न गये। कहला भेजा—'अब आमिली और सूबेदारी से श्रीवृन्दावन की गलियों में झाड़ू देना हजारगुना अच्छा है।' तभी से आप सँडीला छोड़कर ब्रज में आ बसे।

इनकी कविता बड़ी ही सरस और मनोहारिणी है। सभी पद संगीत-संगत हैं। सूरदास नाम होने से इनके बहुत से पद तो 'सूरसागर' में मिल गये हैं। इनका कोई ग्रंथ नहीं मिलता। श्रद्धेय श्रीराधाचरण गोस्वामी के अनुग्रह से कुछ फुटकर पद मिले हैं, जो नीचे लिखे जाते हैं—

ललित

पाछे ललिता[1], आगे स्यामा प्यारी,
ता आगे पिय मारग फूल बिछावत जात।
कठिन कली बीन-बीन न्यारी करत,
प्यारी के चरन कोमल जानि सकुचत जिय, गड़िवेऊ डरात॥
दीर्घ लता कर सों निरवारत[2] पाछे,
गहे डारि सीस नाहि परसत पल्लव पात।

१ श्रीराधाजी की एक सखी। २ हटाते हैं।

"सूरदास मदनमोहन' पिय की आधिनताई,
देखत मेरे री नैन सिरात[1] ॥१॥

मलार

माई री, झूलत रंग हिंडौरैं।
सोभा तन स्याम-गोरैं नील,
पीत पट दामिनी के भोरैं[2] ॥
सखीजन चहूँ ओरैं झुलावति,
थोरैं-थोरैं पवन गवन आवैं सोंधे[3] की झकोरैं[4]।
सोभासिंधु मन बोरैं[5] नैननि सों,
नैन जोरैं रीझि, प्रान वारति छवि पर तृन-तोरैं,
'सूरदास मदनमोहन' चित चोरैं,
मुरली की धुनि सुनि सुरवधू सिर ढोरैं[6] ॥२॥

ललित

अहो मेरी लाड़िली सुकुमारि पालनै झूलैं।
मृदु मुसकानि निरखि नैननि सुख, कीरतिजू[7] मन-ही-मन फूलैं ॥
कबहूँ चटकोरा चटकावति, झुँझन झुँझना छूलन झूलैं ॥
कबहुँक लेत उछंग अंक भरि, अंतरगन की हरति है सूलैं ॥
श्रीवृषभानु गोद लै बैठे मन-क्रम-वचन साधना तूलैं ॥
'सूरदास मदनमोहन' के अंतरनिधि की खानि सो खूलैं[8] ॥३॥

वधाई

नंदजू मेरे मन आनंद भयो हौं गोवर्धन[9] तें आयो

१ठंडे होते हैं, तृप्त होते हैं। २धोखे से; उपमा-योग्य होने से। ३सुगंध। ४लहरें। ५डुबाये हुए हैं। ६पछता रही है; मुरली की मनोहर ध्वनि सुन कर देवांगनाएँ मन-ही-मन पछताती हुई कहती हैं, कि हाय, हम आज ब्रज-गोपिकाएँ क्यों न हुईं? ७राधिका की माता। ८खुलती है, उजागर होती है। ९गोवर्द्धन पर्वत के पास उसी नाम का एक ग्राम।

तुम्हरे पुत्र भयो हौं सुनिकैं, अति आतुर उठि धायौ ॥
बंदीजन अरु भिच्छुक सुनि-सुनि देस-देस तें आये।
इक पहले ही आसा लागे, बहुत दिनिनि तें छाये ॥
ते पहिरें कंचन मनि-मुक्ता, नाना वसन अनूप।
मोहि मिले मारग में मानों जात कहूँ के भूप ॥
तुम तो परम उदार नंदजू, जोइ माँग्यौ सोइ दीनौ।
ऐसा और कौन त्रिभुवन में तुम-सरि[१] साकौ[२] कीनौ ॥
लच्छ[३] हेतु तौ पर्यौ रहौं हौं बिनु देखे नहिं जैहौं।
नंदराइ सुनि बिनती मेरी तबै बिदा भलि ह्वैहौं ॥
दीजे मोहिं कृपा करि साईं, जो हौं आयौ माँगन।
जसुमति-सुत अपने पाइनि चलि खेलत आवै आँगन ॥
जब तुम मदनमोहन कहि टेरौ, यह सुनि हौं घर जाऊँ।
हौं तौ तेरो घर को ढाढ़ी[४], 'सूरदास' मो नाऊँ ॥

बधाई

प्रगट भई सोभा त्रिभुवन की भानु[५] गोप कै आइ।
अद्भुत रूप देखि ब्रज-बनिता रीझीं लेति बलाइ[६] ॥
नहिं कमला नहिं सची नहीं रति उपमाहूँ न समाइ।
जा हित प्रगट भये ब्रजभूषन, धन्य पिता धन माइ ॥
जुग-जुग राज करौ दोऊ जन, इत तुव उत नँदराइ।
उनके मदनमोहन, तेरे स्यामा, 'सूरदास' बलि जाइ ॥५॥

आसावरी

प्रीतम प्यारी राजत रंगमहल।
गरजि-गरजि रिमझिम-रिमझिम
बूँदनि लाग्यौ बरसनि घन ॥

१बराबरी। २कीर्ति। ३एक नाच मुद्रा। ४गवैयों का एक भेद, जो केवल जन्मोत्सव के अवसर पर गाता-नाचता है। ५महाराज वृषभानु। ६बलैयाँ।

बोलत चातक-मोर दामिनी दमकि,
आवै झूमि बादर अवनि परसन ॥
तैसी हरियारी सावन मनभावन
आनँद उर उपजावन इन्द्र-वधू-दरसन ॥
'मदनमोहन' प्रिया सँग गावत राग मलार
ललित लता लागी सुनि-सुनि सरसन[1] ॥६॥

मलार

गौर गोविंद नवल किसोर सखी चितचोर,
ठाढ़े हैं द्रुम की छहियाँ।
अधर धरे मुरली ऊँच सुर लीयें सुनि तोहि बुलावत हैं,
माईरी, तू कत कहति नहियाँ ॥
विनही अंजन खंजन-से नैना पिय-मन-रंजन,
रहैं तिरछा ह्वै पिय-मन-महियाँ।
'सूरदास मदनमोहन' के ध्यान तेरो निसि वासर
सखी, कौन प्रकृति तो पहियाँ ॥७॥

कान्हरा

स्याम-निकट सनमुख ह्वै बैठी स्यामा कंचनमनि आभूषन पहिरैं।
सांवरे तन में प्रतिबिंबित हैं, मानों स्नान करत बैठी जमुना-जल में गहिरैं ॥
अंग-अंग-आभास[2] तरंग गौर स्यामता सुन्दरता सोभा की लहरैं।
'सूरदास मदनमोहन', मोपै कहि न आवति, मेरी दृष्टि न ठहरैं[3] ॥८॥

कान्हरा

तू सुनि कान दै री, मुरली
तेरे गुन गावैं स्याम कुंज-भवन।

१ हरी-भरी होने लगीं, प्रसन्न होने लगीं। २ छाया। ३ दिव्य सौंदर्य के आगे आँखें चकाचौंध में पड़ गई हैं।

सनमुख होइ करि ताहि को आँकौं[1] भरि
सो तन परसि आवै जो पवन ॥
तेरोई ध्यान धरत उर-अंतर नैन मूँदि
निकसत उर डरपत, तेरोई आगम[2] सुनि स्रवनन ।
'सूरदास मदनमोहन' सों तू चलि
मिलि तोहि तें[3] पायौ नाम राधारमन ॥६॥

देस

मेरी गति तुमहीं अनेक तोष पाऊँ
चरन-कमल-नख-मनि पर विषै-सुख बहाऊँ ।
घर-घर जो डोलौं[4], तौ हरि तुम्हैं लजाऊँ ॥
तुम्हरौ कहाय कहौ कौन कौ कहाऊँ ?
तुमसौ प्रभु छाँड़ि कहा दीनन कों धाऊँ ?
सीस तुम्हैं नाय कहौ कौन कों नवाऊँ ?
कंचन उर हार छाँड़ि काँच क्यों बनाऊँ ?
सोभा सब हानि करूँ, जगत कों हँसाऊँ ।
हाथी तें उतरि कहा गदहा चढ़ि धाऊँ ॥
कुमकुम कौ लेप छाँड़ि काजर मुँह लाऊँ[5] !
कामधेनु घर में तजि, अजा[6] क्यों दुहाऊँ ?
कनक-महल छाँड़ि क्योंऽब[7] परनकुटी[8] छाऊँ ?
पाइन जो पेलौ[9] प्रभु तौ न अनत जाऊँ ॥
'सूरदास मदनमोहन' जनम-जनम गाऊँ ।

१ हृदय से लगा ले । ताहि को......पवन = उस वायु को ही भेंट ले, जो प्यारे कृष्ण के शरीर का स्पर्श कर आती है । २ आगमन । ३ तेरे ही साथ रमने से । ४ द्वार-द्वार पर भीख माँगता फिरूँ । ५ लगाऊँ । ६ बकरी । ७ क्यों अब । ८ पत्तों और घास-फूस की झोंपड़ी । ९ ठेलो; धक्का देकर निकाल दो ।

संतन की पानहीं[1] को रच्छक कहाऊँ ॥१०॥*

प्रभाती

स्याम लाल, प्रात भयो, जागौ बलि जाऊँ।
चुटिया सुरझाय[2] बीच सुमन लै गुथाऊँ॥
उगत सूर्य ज्योति भई कुलहिरी[3] बनाऊँ।
पाँय बाँधि घूँघरू सु चालिबो सिखाऊँ॥
'सूरदास मदनमोहन' गुन तिहारो गाऊँ।
हरखि-निरखि गोविंद-छवि जीवन-फल पाऊँ॥११॥

ध्रुवपद

खेलिए आँगन छगन-मगन[4] कीजिए कलेवा।
छीके तें सौंधी दधि ऊपर तें काढ़ि धरी,
पहिरि लेउ झंगुली, फेंटा[5] बाँधि लेहु मेवा॥
ग्वालन के संग खेलन जाहु खेलन के मिस भूपन[6] ल्याहु
कौन परी प्यारे निसिदिन की टेवा[7]।
'सूरदास मदनमोहन' घर में ही खेलौ प्यारे ललन
भँवरा[8] चकडोर[9] देहौं हँस चकोर परेवा[10] ॥१२॥

१ जूती। २कंघी से सुलझाकर। ३ टोपी। ४ श्री कृष्ण का वात्सल्यरस-सूचक प्यार का नाम। ५ कमर पर कसने का दुपट्टा। ६ गुंजाओं या फूलों के गहने। ७ आदत। ८ लट्टू। ९चकरी; बच्चों के खिलौने।

*सूरदास जी की यह मनोकामना, कि मैं संतों की जूतियों की रखवाली किया करूँ, पूरी हो गयी। एक दिन एक साधु इन्हें अपनी जूतियाँ सौंपकर श्री मदनमोहन जी का दर्शन करने चला गया। जब गोसाईं जी ने इन्हें किसी काम से बुलवाया, तब कहला भेजा कि 'आज मेरी मनोवाञ्छा सफल हो गई। अभी तक तो कोरा जमा-खर्च ही था, आज मुझे वह सेवा मिल गयी, जिसकी सदा से इच्छा थी।'

बिलावल

मधु के मतवारे स्याम खोलौ प्यारे पलकैं।
सीस मुकुट लटा छुटी और छुटी अलकैं॥
सुर नर मुनि द्वार ठाढ़े दरस हेतु किलकैं[१]।
नासिका के मोती सोहैं बीच लाल ललकैं॥
कटि पीतांबर मुरली कर स्रवन कुंडल झलकैं।
'सूरदास मदनमोहन' दरस दैहौ भलकैं[२]॥१३॥

देश

चलौ रि मुरली सुनिए कान्ह बजाई जमुना-तीर।
तजि लोक लाज, कुल की कानि गुरु-जन की भीर[३]॥
जमुना-जल थकित भयौ बछा[४] न पीवैं छीर॥
सुर-विमान थकित भये, थकित कोकिल-कीर।
देह की सुधि बिसरि गई, बिसरौ तन कौ चीर[५]।
मात तात बिसरि गये, बिसरे बालक बीर[६]॥
मुरली-धुनि मधुर बाजै, कैसे कैं धरौं धीर।
'सूरदास मदनमोहन' जानत हौ पर-पीर॥१४॥

---

१ आनंद मना रहे हैं। २ भली-भाँति ३ भय। ४ गाय के बछड़े।
५ कपड़ा। ६ भाई।

श्रीभट्ट

छप्पय

मधुर-भाव-संवलित, ललित लीला सुवलित छवि।
निरखत हरखत हृदय प्रेम बरसत, सुकलित कवि।
भव-निस्तारन-हेत देत दृढ़भक्ति सबनि नित।
जासु सुजसु-ससि-उदै हरत अति तम भ्रम स्रमचित॥
आनंदकन्द श्रीनंदसुत श्रीवृषभानु-सुता-भजन।
श्रीभट्ट सुभट प्रगट्यौ अघट रस रसिकन मनमोद-वन॥

—नाभाजी

श्रीनिंबार्क कुलावतंश विद्वच्चक्रचूड़ामणि केशव काश्मीरीजी के श्री भट्टजी अंतरङ्ग शिष्य थे। केशव काश्मीरीजी के सम्बन्ध में यह श्लोक बहुत प्रसिद्ध है :—

वागीशा यस्य वदने, हृत्कञ्जे च हरिः स्वयम्।
यस्यादेशकरा देवाः मंत्रराज-प्रसादतः॥

वास्तव में केशव काश्मीरीजी ने आचार्योचित वह कार्य किया, जिसके कारण निंबार्क संप्रदाय की नींव सदा के लिए सुदृढ़ हो गयी। आपके शिष्य श्रीभट्टजी ने तो मानों संप्रदाय-मंदिर पर कलश रख दिया। गुरुदेव ऐश्वर्य के पूर्णप्रतिपादक थे, तो भट्टजी माधुर्य के सच्चे मधुव्रत थे। श्रीभट्टजी का जन्म-संवत् अनुमानतः १५९५ के लगभग जान पड़ता है, और इनका कविता-काल संवत् १६२५ सिद्ध हुआ है।

श्रीभट्टजीने 'युगल-शतक' के नाम से केवल सौ पदों की रचना की। आपके शिष्य श्रीहरिव्यासदेवजी ने 'युगुल-शतक' पर एक विस्तृत पद्यात्मक टीका लिखी, जिसे 'महावानी' कहते हैं। कविता की दृष्टि से 'युगल-शतक'

बहुत ऊँचा नहीं है, पर यदि उसका भक्त-दृष्टि से अनुशीलन किया जाय, तो उसमें वह चमत्कार अवश्य मिलेगा, जो रसिक महात्माओं की बानियों में निहित होता है।

कहते हैं कि आपकी हार्दिक उत्कंठा पूरी करने के लिए भक्तवत्सल भगवान् समय-समय पर नित्य नयी-नयी लीलाएँ दिखाया करते थे। जैसे, एकबार भावावेश में भट्टजी महाराज मलार राग अलापने लगे। पद यह है: —

भीजत कब देखौं इन नैना।
स्यामाजू की सुरँग चूनरी, मोहन को उपरैना॥

इतना ही गाया, कि आप की लालसा पूरी हो गयी। क्या देखा, सो शेष पद से प्रकट हो जाता है :—

स्यामा-स्याम कुंजतर ठाढ़े, जतन कियौ कछु मैं ना।
'श्रीभट्ट', उमड़ि घटा चहुँदिसि तें, घिरि आई जल-सैना॥

भट्टजी के हृदय-गगन में ज्यों ही श्याम-घटा उठी, कि रस-वर्षा आरम्भ हो गयी। घन-श्याम और सौदामिनी राधिका की जोड़ी प्रत्यक्ष हो गई। धन्य माधुर्यमत्त श्रीभट्ट! आपकी धारणा कैसी भव्य है :—

सेव्य हमारे श्री प्रिय प्यारे वृन्दाविपिन-विलासी।
नँद-नन्दन - वृषभानु-नंदिनी-चरन-अनन्य-उपासी॥
मत्त प्रनय-बस सदा एकरस विविध निकुंज-निवासी।
'श्रीभट' जुगुल रूप बंसीवट सेवत सब सुखरासी॥

आपके कुछ पद यहाँ उद्धृत किये जाते हैं :—

युगल-शतक

पद

मदनगुपाल, सरन तेरी आयो।
चरनकमल की सरन दीजिये, चेरो करि राखौ घर-जायो[1]॥

1. घर में पैदा हुआ; पाला-पोसा गुलाम।

धनिधनि मात पिता सुत बंधू, धनि जननी जिन गोद खिलायो।
धनिधनि चरन चलत तीरथ कों, धनि गुरुजन हरिनाम सुनायो॥
जे नर विमुख भये गोविंद सों, जनम अनेक महादुख पायो।
'श्रीभट्ट' के प्रभु दियौ अभय-पद[1], जम डर्‌प्यो[2] जब दास कहायो॥१॥

दोहा

मोहन जन ब्रजभूमि सब, मोहन सहज समाज।
मोहन जमुना-कुंज तहँ विहरत श्रीब्रजराज॥२॥

पद

ब्रजभूमि मोहिनी मैं जानी।
मोहन कुंज, मोहन वृन्दावन, मोहन जमुना-पानी॥
मोहन नारि सकल गोकुल की बोलति अमरित-बानी[3]।
'श्रीभट्ट' के प्रभु मोहन नागर, मोहनि राधारानी॥३॥

दोहा

सेव्य हमारे हैं सदा, वृन्दाविपिन-विलासि।
नँद-नंदन-वृषभानुजा, चरन-अनन्य-उपासि॥४॥

पद

सेव्य हमारे हैं पिय प्यारे वृन्दाविपिन-विलासी।
नँद-नन्दन वृषभानु-नंदिनी चरन-अनन्यउपासी॥
मत्त प्रनय[4] बस, सदा एकरस[5] विविध निकुंज-निवासी।
'श्रीभट्ट' जुगुलरूप बंसीवट सेवत सब सुखरासी॥५॥

१ वह पद, जिसके पा जाने पर सांसारिक त्रिविध दुःखों का आत्यंतिक नाश हो जाता है। २ डर गया। ३ अमृत के समान मधुर वाणी। प्रसिद्ध ही है, कि 'वाचि श्रीमाथुरीणाम्।' ४ प्रणय-मत्त, प्रेम में मतवाले। ५ निरंतर एक दशा में; सहजा समाधि में लीन।

दोहा

आन[1] कहै आनै न उर, हरि गुरु सों रति होय।
सुखनिधि स्यामा-स्याम के, पद पावै भल[2] सोय ॥६॥

पद

स्यामा-स्याम-पद पावै सोई।
मन-बच-क्रम करि सदा नित्य जेहिं, हरिगुरु-पद-पंकज-रति होई।
नंद-सुवन वृषभानु-सुता-पद, भजै तजै मन आनै जोई ॥
'श्रीभट्ट' अटकि रहे स्वामीपन आन अतै मानै सब छोई[3] ॥७॥

दोहा

जन्म-जन्म जिनके सदा, हम चाकर निसि-भोर।
त्रिभुवन-पोषन सुधाकर, ठाकुर जुगलकिसोर ॥८॥

पद

जुगलकिसोर हमारे ठाकुर।
सदा-सर्वदा हम जिनके हैं, जनम-जनम घर-जाये चाकर ॥
चूक परै परिहरै न कबहूँ, सबहीं भांति दया के आकर[4]।
जै 'श्रीभट्ट' प्रगट त्रिभुवन में प्रनतनि पोषत परम-सुधाकर ॥९॥

दोहा

तनिक न धीरज धरि सकै, सुनि धुनि होत अधीन।
बंसी[5] बंसीलाल की, बन्धन को मन-मीन ॥१०॥

पद

बंसी त्रिभंगी लाल की मन मीन की बनसी ॥
कहा अंतर धरि दुरी रहै छई सूरति घनसी[6] ॥

१ आन...उर=अपने इष्ट को छोड़कर दूसरे को मन में लावें। २ भली भाँति। ३ रही, व्यर्थ। ४खानि, स्थान। ५ मछलियों के फँसाने का काँटे का काँटा, मुरली। ६ बादलों की घटा के समान।

हरि देखे बिनु क्यों रहौं, धीरज नहिं तनसी[१]
जै 'श्रीभट्ट' हरि-रस-बस भई, सुनि धुनि नेकु मनसी[२] ॥११॥

दोहा

मेरे मन की अघटना के तुम जाननिहारु।
बलि, राधे-नँद-नन्दना, चरन दिखाये चारु ॥१२॥

पद

बलि-बलि, श्री नंद-नंदना।
मेरे मन की अमित अघटना को जाने तुम बिना ॥
भलेई चारु चरन दरसाये, ह्वँ द्रुत फिरिहौं वृंदावना।
जै 'श्रीभट्ट' स्यामा-स्याम रूप पै निवछावर तन-मना ॥१३॥

दोहा

अंग-अंग-दुति माधुरी, बिधि मुख चन्द्रचकोर।
अटके 'श्रीभट'-दृष्टि में, नटवर नवलकिशोर ॥१४॥

पद

बसौ मेरे नैननि में दोऊ चंद।
गौरबरनि वृषभानु-नन्दनी, स्यामबरन नँद-नन्द।
गोलक[४] रहे लुभाय रूप में, निरखत आनन्द-कन्द।
जै 'श्रीभट्ट', प्रेम-रस बन्धन, क्यों छूटै दृढ़ फंद ॥१५॥

दोहा

जमुना बन्सीवट निकट, हरन हिंडोरो हीय।
रँग देव्यादि[५] झुलावहीं, झूलत प्यारी पीय ॥१६॥

१ तनिक-सा। २ मनक, अर्थात् भन-सी आवाज। ३ टक लगा कर। ४ आँखों की पुतलियाँ। ५ रंगदेवी आदि; राधिकाजी की अष्ट सखियाँ।

पद

हिंडोरौ झूलति हैं पियप्यारी ।
श्री रँगदेवी सुदेयी[1] बिसाखा, झोंटा देति ललिता री ॥
श्री जमुना वंसीवट कै तट सुभग भूमि हरियारी ।
तैसेइ दादुर मोर करत धुनि, सुनि मन हरत महा री ॥
घन रजनी दामिनि तें डरपै, पिय-हिय लपटि सुकुमारी ।
जै 'श्रीभट्ट' निरखि दंपति-छवि, देत अपनपौ वारी ॥१७॥

दोहा

वेदी पुलनि विराजहीं, मंगल वेलि-तमाल ।
नच्यौ किधौं यह रच्यौ है, ब्याह विहारीलाल ॥१८॥

पद

श्री व्रजराज कै युवराज, मानों ब्याह वृन्दावन रच्यौ ।
पुलिन-वेदी[2] विराजैं दंपति, देखि-देखि कैं मन सच्यौ[3]॥
है पुरोहित रिचा[4] उचारत, बेलि-तमाल मंडप खच्यौ ।
जै 'श्रीभट' भाँवरी परत नटवर, अंकमाल प्रिया-संग नच्यौ ॥१९॥

दोहा

तिहिं छिन की बलि जाउँ सखि, जिहिं छिन भाँवरि लेत ।
लालबिहारी साँवरे, गौरबिहारिनि-हेत ॥२०॥

पद

जै श्री बिहारिनि गौर, बिहारीलाल साँवरे ।
तिहिं छिन की बलि जाउँ सखी री, परित जिहिं छिन भाँवरे॥
कंचन-मनि-मरकत-मनि प्रगटे, बसिए जो नँदगाँव रे ।
बिधिना रचित न होय जै 'श्रीभट', राधा-मोहन नाव[5] रे ॥२१॥

१ सुदेवी, ललिता, विशाखा—सखियों के नाम । २ यमुना का तट मानों वेदी है । ३ सुख पूर्ण । ४ वेदमंत्र । ५ नाम ।

दोहा

'श्रीभट' प्रकट "जुगल सत", पढ़ै कंठ तिहुँकाल।
जुगल-केलि-अवलोक तें, मिटै विषय-जंजाल[1] ॥२२॥

छप्पय

दस पद हैं सिद्धांत, वीस-षट[2] ब्रज-लीला पद।
सेवा सुख सोलहौ, सहज सुख एक-वीस[3] हद॥
आठै सुख, अरु उनत-वीस[4] उच्छव सुख लहिए।
श्रीजुत 'श्रीभटदेव' रच्यौ 'सतजुगल'[5] जो कहिए॥
निज भजन-भाव-रुचि तें किये, इते भेद ये उर धरौ।
रूप-रसिक सब संत जन, अनुमोदन याकौ करौ ॥२३॥

१ संसारी झंझट। २ छब्बीस। ३ इक्कीस। ४ उन्नीस। ५ 'युगल-शतक' ग्रंथ का नाम।

हरिराम व्यास

छप्पय

काहू के आराध्य मच्छ, कछ, सूकर, नरहरि ।
बावन, परसाधरन, सेतु-बंधनहुँ सैल करि ॥
एकन के यह रीति, नेम नवधा सों लाये ।
सुकुल समोखन-सुवन, अच्युतगोत्री जु लड़ाये ॥
नौगुनो तोरि नूपुर गुह्यौ, महतसभा-मधि रास के ।
उत्कर्ष तिलक अरु दाम कौ, भक्त इष्ट अति व्यास के ॥

—नाभाजी

हरिराम व्यास, ब्रजमण्डल में 'व्यासजी' के नाम से ही प्रसिद्ध हैं । यह ओरछा के रहनेवाले सनाढ्य ब्राह्मण थे । तत्कालीन ओरछाधीश महाराजा मधुकरशाह के यह राजगुरु थे । इनका कविता-काल संवत् १६२० जान पड़ता है । कहते हैं कि यह पहले गौर-संप्रदाय के अनुयायी थे । पीछे श्रीहितहरिवंशजी के शिष्य होकर राधावल्लभीय हो गये । इनके वंशज आज भी गौर-संप्रदाय का तिलक धारण करते हैं ।

व्यासजी के सम्बन्ध में 'मिश्रबन्धुविनोद' में भारी भूल हुई है । उसमें व्यासजी का दो स्थानों पर उल्लेख आया है, जो इस प्रकार है :

कवि-संख्या	कवि-नाम	कविता-काल	पृष्ठ-संख्या
(७८)	व्यासस्वामी-उर्छा बुन्देलखण्ड	१६१५	३२७
(१८१)	व्यासजी-ओड़छावाले	१६८५	४५०

उर्छा और ओड़छा दोनों एक ही हैं । इसी प्रकार व्यास स्वामी कहिए, चाहे व्यासजी । विनोद में (७८) संख्यावाले व्यास स्वामी 'हरिव्यासी' मत के संस्थापक और (२८१) संख्यावाले व्यासजी निम्बार्क-सम्प्रदाय के 'हरि व्यास-देव' कहे गये हैं । उदाहरणार्थ, 'मिश्र

बन्धु विनोद' मेंजो पद दिये गये हैं, वे भी एक ही बानी से दो विभिन्न स्थानों पर दो व्यासों को मानकर उद्धृत किये गये हैं।

अतः दो भिन्न-भिन्न स्थानों पर उल्लिखित व्यास एक ही हैं, दो नहीं। ये न हरिव्यास देव थे और न हरिव्यासी-मत के प्रवर्तक। इनका निंबार्क-संप्रदाय से कोई संबन्ध नहीं था। हरिव्यासी शाखा के संस्थापक हरिव्यासदेव महात्मा श्रीभट्टजी के शिष्य थे। ओरछावाले हरिराम व्यास श्री राधावल्लभीय थे, निंबार्कीय नहीं। जान पड़ता है, 'शिवसिंहसरोज' के आधार पर, बिना व्यास-वंशियों अथवा वैष्णवों से पूछताछ किये ही, सुबुध मिश्रबन्धुओं ने व्यासजी के सम्बन्ध में ऐसा लिख दिया है।

व्यासजी संस्कृत के प्रकांड विद्वान् थे। यह सदा शास्त्रार्थ करने की धुन में रहते थे। एक दिन यह श्रीहितहरिवंशजी के पास पहुँचे। उन्हें भी शास्त्रार्थ के लिए ललकारा। गोसांईजी ने सौ बात की एक बात इस पद में सुना दी :

'यह जु, एक मन बहुत ठौर करि, कहि कौने सचु पायो।
जहँ-तहँ विपति जार-जुवती ज्यों, प्रगट पिंगला गायो ॥'

इत्यादि।

यह पद सुनकर पंडिताग्रगण्य व्यास का सारा विद्या-बल चूर-चूर हो गया। आप उसी दिन गोसाईंजी के अनन्य भक्त हो गये। व्यासजी राधा-वल्लभीय होते हुए भी अन्य सम्प्रदायों के प्रति भेद-भाव नहीं रखते थे। उनकी दृष्टि में सन्त-मात्र भगवत् स्वरूप थे।

ओरछे में सब प्रकार का मान-सम्मान होने पर भी आप उसे छोड़ कर वृन्दावन चले आये। महाराजा मधुकरशाह, गुरुभक्ति-वश इन्हें लेने के लिए जब वृन्दावन आये, तब ये विरहाकुल होकर यह पद गाने लगे:—

वृन्दावन के रूख (वृक्ष) हमारे, मात-पिता सुत बंध।
गुरु गोविंद साधु गति-मति सुख, फल-फूलनि कौ गंध।
इनहिं पीठि दै अनत डीठि करि, सो अंधन में अंध ॥

'व्यास' इनहिं छोड़ै औ छुड़ावै, ताकौ परियो कंध ॥

वृन्दावन की गुल्म-लताएँ छोड़कर ये फिर कभी ओरछा नहीं गये। इन्होंने तत्कालीन सन्त-महात्माओं के सत्सङ्ग में व्रजमाधुरी का जो रस लूटा उसे अपनी वानी मे कई स्थानों पर बड़ी भक्ति-भावना से अंकित किया है।

व्यासजी भगवान से भी भक्तों को कहीं अधिक ऊँचा मानते थे। साधु-सेवा के लिए आपने सर्वस्व समर्पण कर दिया था। जाति और पद का तो आपको तनिक भी ध्यान नहीं था, जैसा कि आपकी इन साखियों से प्रकट होता है :—

'व्यास' कुलीननि कोटि मिलि, पंडित लाख पचीस।
स्वपच भक्त की पावहीं, तुलैं न तिनके सीस ॥
'व्यास' मिठाई विप्र की, तामें लागै आगि।
वृन्दावन के स्वपच की, जूठनि खैये माँगि ॥

इन्होंने अपना अनन्य रसिक-व्रत आजीवन निबाहा। सर्वस्व त्याग दिया, पर सन्त-सेवा से विमुख नहीं हुए।

इनके तीन पुत्र थे। तीनों ही सन्त और सुकवि थे। व्यासजी गुरु-भक्त तो एक ही थे। श्रीहितहरिवंशजी के गोलोक-वास पर, उनके विरह में, इन्होंने जो पद लिखा था, उससे इनकी अद्वितीय गुरुभक्ति प्रकट होती है। वह प्रसिद्ध पद यह है :

हुतो रस रसिकन कौ आधार।
बिन हरिबंसहिं सरस रीति कौ, कापै चलिहै भार ?
को राधा दुलरावै, गावै, वचन सुनावै चार;
वृन्दावन की सहज माधुरी, कहिहै कौन उदार ?
पद-रचना अब कापै ह्वै है, निरस भयौ संसार।
बड़ौ अभाग अनन्य सभा कौ, उठिगो ठाठ-सिंगार।
जिन बिन दिन-छिन जुग सम बीतत, सहज रूप-आगार।
'व्यास', एक कुल-कुमुद-चंद्र बिनु, उडुगन जूठौ थार ॥

व्यासजी के लगभग ८०० पदों का एक हस्तलिखित संग्रह हमें उपलब्ध हुआ है। इसमें इनके सिद्धांती तथा विहार-सम्बन्धी पद संगृहीत हैं। इसमें इनके १४५ दोहे भी हैं, जो साखियों के नाम से प्रसिद्ध हैं। सिद्धांती पदों और साखियों में वैराग्य-ज्ञान और अनन्य-भक्ति का बड़ा ही उत्तम वर्णन किया गया है। व्यासजी ने धर्म-दंभियों को खूब खरी-खरी सुनाई है। विहार के पद कितने ललित और भाव-पूर्ण हैं, इसके लिखने की आवश्यकता नहीं। आश्चर्य और खेद का विषय है कि व्यासजी 'मिश्रबन्धुविनोद' में साधारण श्रेणी के कवि माने गये हैं। नीलसखीजीने व्यासजी की बानी के विषय में क्या ही सुन्दर पद कहा है :—

जय-जय बिसद ब्यास की बानी।
मूलाधार इष्ट रसमय, उतकर्ष भक्ति-रस-पानी॥
लोक-वेद-भेदन तें न्यारी, प्यारी मधुर कहानी।
स्वादिल सुचि रुचि उपजै पावत, मृदु मनसा न अघानी॥
सक्ति अमोघ विमुख-भंजन की, प्रगट प्रभाव बखानी।
मत्तमधुप-रसिकन के मन की, रस-रंजित रजधानी॥
सखी-रूप नवनीत उपासन, अमृत निकास्यौ आनी।
'नीलसखी' प्रनमामि नित्य, सो अद्भुत कथा-मथानी॥

व्यासजी के कुछ सिद्धांती पद, साखियाँ और विहार-सम्बन्धी पद उद्धृत किये जाते हैं :—

सिद्धांत के पद

सारङ्ग

राधावल्लभ मेरौ प्यारौ।
सरवोपरि सबही कौ ठाकुर, सब सुख-दानि हमारौ॥
ब्रज-वृन्दावन-नायक, सेवा-लायक स्याम उज्यारौ।
प्रीति-रीति पहिचानैं, जानैं, रसिकन कौ रखवारौ॥
स्यामकमल-दल-लोचन, मोचन-दुख, नैनन कौ तारौ।

अवतारी[1] सब अवतारन कौ, महतारी-महतारी[2] ॥
मूरतिवंत[3] काम गोपिन कौं, गाय-गोप कौ गारौ ।
'व्यास' दास कौ प्रान-सजीवन, छिनभर हृदय न टारौ ॥१॥

सारङ्ग

वृन्दावन की सोभा देखैं मेरे नैन सिरात[4] ।
कुञ्ज-निकुञ्ज-पुञ्ज सुख बरसत, सब कौ हरषत गात ॥
राधा-मोहन के निज मन्दिर, महाप्रलय नहिं जात ।
ब्रह्मा तें उपज्यौ न, अखंडित कबहूँ नाहिं नसात ॥
फनि[5]पर, रवि[6] तरि नहिं बिराट महँ, नहिं संध्या नहिं प्रात ।
निरगुन-सगुन ब्रह्म तें न्यारौ, बिहरत सदा सुहात ।
'व्यास', बिलास-रास अद्भुत गति, निगम अगोचर बात[7] ॥२॥

देवगंधार

श्रीवृन्दावन देखत, नैन सिरात ।
इन मेरे लोभी नैननि में, सोभा-सिंधु न मात[8] ॥
संतत सरद बसंत बेलि-द्रुम, झूलत-फूलत रात[9] ।
नँदनंदन वृषभानु-नंदिनी, मानहुँ मिलि मुसक्यात ॥
ताल तमाल रसाल साल, पल-पल चमकत[10] फल-पात[11] ।
मनहुँ गौर मुख बिधुकर[12]-रंजित, सोभित साँवल गात ॥
किंसुक नवल नवीन माधुरी, बिकसित हिय उरझात ।

१ जिसके अंश से और सब अवतार होते हैं, जैसा श्रीमद्भागवत में कहा है: 'एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।' २ [illegible]; यह शब्द केवल व्यासजी ने प्रयुक्त किया है। ३ साक्षात्। ४ प्रसन्न होते हैं। ५ शेषनाग के ऊपर नहीं है। ६ सूर्य के नीचे अथवा सौरजगत् में नहीं है। ७ रहस्य; सारांश यह, कि वृन्दावन प्राकृत नहीं है। ८ समाता है। ९ रहता है। १० झिलमिल-झिलमिल हो रहे हैं। ११ पत्ते। १२ चंद्रमा की किरणें।

मनहुँ अबीर-गुलाल-भरे तन, दंपति अति अकुलात ॥
नाचत मोर-कोकिला गावत, कीर-चकोर सुहात।
मनहुँ रास-रस नाचैं दोऊ, विछुरि न जानै प्रात ॥
त्रिभुवन कौ कवि कहि न सकत कछु, अद्भुत छवि की बात।
'व्यास' वचन नहिं मुख कहि आवै, ज्यों गूँगो गुर[1] खात ॥३॥

चर्चरी

नव चक्र-चूड़ा[2]-नृपति-मनि साँवरो, राधिका तरुनि-मनि पट्टरानी।
सेस ग्रह आदि वैकुंठ परिजंत[3] सब, लोक-थानैत[4] व्रज राजधानी॥
मेघ छानवे[5] कोटि वाग सींचत जहाँ, मुक्ति चारौ[6] जहाँ भरति पानी।
सूर-ससि पाहरू पवन जन इन्दिरा[7] चरन-दासी, भाट निगम-बानी ॥
धर्म कुतवाल[8], सुक सूत नारद चारु, फिरत चर[9] चारि सनकादि[10] ग्यानी।
सत्त्व गुन पौरिया, काल बँधुवा[11] जहाँ, कर्मबस काम रति सुख-निसानी॥
कनक-मरकत[12]-धरनि कुञ्ज कुसुमित महल, मध्य कमनीय सयनीय ठानी
पलन विछुरत दोऊ, जात नहिं तहँ कोऊ, 'व्यास' महलनि लिये पीकदानी॥

धनाश्री

हरि-दासन के निकट न आवत प्रेत पितर जमदूत।
जोगी भोगी संन्यासी अरु पंडित मुंडित धूत[13] ॥
ग्रह गन्नेस[14] सुरेस सिवा-सिव डर करि भागत भूत।
सिधि-निधि विधि-निषेध हरिनामहिं डरपत रहत कपूत ॥
सुख-दुख पाप-पुन्य मायामय ईति-भीति आकूत[15]।
'व्यास' आस तजि सब की भजिए व्रज वसि भगत सपूत ॥५॥

१गुड़। २मस्तक,श्रेष्ठ। ३ पर्यन्त। ४थाने; छोटे-छोटे स्थान। ५ पुराणों के अनुसार छ्यानवे करोड़ मेघ माने गये हैं। ६सायुज्य, सालोक्य, सामीप्य और सारूप्य। ७लक्ष्मी। ८कोतवाल, नगर-रक्षक। ९गुप्तचर। १०सनक, सनंदन, सनातन और सनत्कुमार। ११ कैदी। १२ नीलम मणि। १३ धूर्त, पाखंडी। १४गणेश। १५ मतलब।

सारङ्ग

रसिक अनन्य हमारी जाति ।
कुलदेवी राधा, बरसानो खेरौ[1], ब्रजवासिन सों पाँति ॥
गीत गोपाल, जनेऊ माला, सिखा सिखंडि[2], हरिमन्दिर[3] भाल ।
हरिगुननाम बेद-धुनि सुनियतु, मूँज पखावज, कुस[4] करताल ॥
साखा जमुना, हरि-लीला षटकर्म[5], प्रसाद प्रानधन रास ।
सेवा[6] विधि-निषेध, जड़ संगति, वृत्ति सदा वृन्दावन-वास ॥
सुमृति[7] भागवत, कृष्ण-नाम संध्या-तर्पन-गायत्री जाप[8] ।
बंसी रिषि[9], जजमान कलपतरु, 'व्यास' न देत असीस-सराप ॥६॥*

सारङ्ग

ऐसों हीं वसिए ब्रज-वीथिन ।
साधुन के पनवारे[10] चुनि-चुनि, उदर पोषिए सीथिन[11] ।
घूरन में के बीनि चिनगटा,[12] रच्छा कीजै सीतन[13] ।
कुञ्ज-कुञ्ज-प्रति लोटि लगै उड़ि, रज ब्रज की अंगीतन ॥
नितप्रति दरस स्याम-स्यामा की, नित जमुना-जल-पीतन ।

१ श्रीराधिकाजी की जन्मभूमि बरसाना ही हमारा खेड़ा या आदिघर है । २ मोर-पंख ही शिखा है । ३ तिलकयुक्त मस्तक ही भगवान् का मंदिर है । ४ हरि-भजन करते समय हाथ से ताली बजाना कुश है । ५ ब्राह्मणों के छः कर्म अर्थात् वेद पढ़ना और पढ़ाना, यज्ञ करना और कराना तथा दान देना और लेना । ६ भगवान् की या संतों की सेवा । ७ स्मृति; धर्मशास्त्र-संबंधी पुस्तकें । ८ हरि-नाम-स्मरण ही गायत्री का जप है । ९ ऋषि । १० पत्तल । ११ जूठे भात से । १२ चिथड़ा । १३ जाड़े से ।

*कहते हैं, एक बार रासमंडल में श्रीकृष्ण का नूपुर टूट गया । व्यासजी ने तुरंत अपना जनेऊ तोड़कर उससे ठाकुरजी का नूपुर बाँध दिया । यह देखकर कोरे कर्मठ ब्राह्मण व्यासजी पर बहुत नाराज हुए । इस पर व्यासजी ने यह पद गाकर अपने 'ब्राह्मणत्व' को सिद्ध कर दिया ।

ऐसेहि 'व्यास' रचै तन पावन, ऐसेहिं मिलत अतीतन[1] ॥७॥

सारङ्ग

जैए कौन के अब द्वार ।
जो जिय होय प्रीति काहू के, दुख सहिए सौ बार ॥
घर-घर राजस-तामस बाढ्यौ, धन-जोबन कौ गार ।
काम-बिवस ह्वै दान देत, नीचन कों होत उदार ।
साधु न सूझत, बात न बूझत, ये कलि के ब्यौहार ॥
'ब्यासदास' कत भाजि उबरिए, परिए माँझीदार ॥८॥

सारङ्ग

कहा-कहा नहिं सहत सरीर ।
स्याम-सरन बिनु करम सहाइ न, जनम-मरन की पीर ॥
करुनावंत साधु-संगति बिनु, मनहिं देय को धीर ॥
भक्त-भागवत-बिनु को मेटै, सुख दै दुख की भीर[2] ॥
बिनु अपराध चहूँ दिसि बरसत, पिसुन[3]-बचन अति तीर[4]।
कृष्ण-कृपा कवची[5] तें उबरैं, पावै तब हीं सीर[6] ॥
चेतहु भैया, बेगि बढ़ी कलि-काल-नदी गम्भीर ।
'ब्यास'-बचन बलि वृन्दावन बसि, सेवहु कुंज-कुटीर ॥९॥

सोरङ्ग

भजौ सुत, साँचे स्याम पिताहि ।
जाके सरन जात हीं मिटिहै, दारुनदुख की दाहि[7] ॥
कृपावंत भगवंत सुने मैं, छिन छाँड़ौ जिनि ताहि ।
तेरे सकल मनोरथ पूजैं, जो मथुरा लौं जाहि ॥
वै गोपाल दयाल, दीन तूं, करिहैं कृपा निबाहि ।
और न ठौर अनाथ दुखिन कों, मैं देख्यौं जग माहि ॥

१ वैरागियों से । २ समूह । ३ निर्दय, दुष्ट । ४ बाण के समान । ५ कवच । ६ शीतलता शांति । ७ दाह, जलन ।

करुना-वरुनालय की महिमा, मो पै कही न जाहि ।
'व्यासदास' के प्रभु कों सेवत, हारि भई कहु काहि ॥१०॥*

सारङ्ग

धर्म दुर्यौ, कलिराज दिखाई ।
कीनौं प्रगट प्रताप आपनौ, सब बिपरीति चलाई ।
धन भौ मीत, धर्म भौ बैरी, पतितन सों हितवाई[1] ॥
जोगी जती तपी संन्यासी, व्रत[2] छाँड़्यौ अकुलाई ।
बरनास्रम की कौन चलावै, संतन हूँ में आई ॥
देखत संत भयानक लागत, भावत[3] ससुर जमाई ।
संपति सुकृति सनेह मान चित, ग्रह व्यौहार बड़ाई ॥
कियो कुमंत्री लोभ आपुनो, महामोह जु सहाई ।
काम क्रोध मद मोह मतसरा, दीन्हीं देस दुहाई ॥
दान लेन कों बड़े पातकी, मचलन को बँभनाई[4] ।
लरन-मरन को बड़े तामसी[5], बारौं कोटि कसाई[6] ॥
उपदेसन कों गुरू गुसाईं, आचरनै[7] अधमाई ।
'व्यासदास' के सुकृत, साँकरे[8] में गोपाल सहाई ॥११॥

केदारा

भटकत फिरत गौड़[9] गुजरात ।
सुखनिधि मथुरा तजि वृन्दावन दामनि[10] कों अकुलात ॥
जीवनमूर जहाँ की धूरहिं छाँड़त हूँ न लजात ।
मुक्ति-पुंज समताहि[11] न पावत एक कुंज के पात ॥

१ मित्रता । २ अपना-अपना धर्म । ३ प्यारे । ४ किसी से मुड़चिरापन से कुछ लेने में ही अब भलमनसत रह गया है । ५ क्रोधी । ६ हत्यारे । ७ आचरण में । ८ संकट में । ९ बंगाल । १० रुपये-पैसे के लिए । ११ उपमा को ।

* अंत समय श्री व्यासजी ने अपने रोते हुए पुत्रों को उपदेश करते हुए यह पद कहा था ।

जाकौ तक[1] सक्र[2] कौ दुरलभ, ताहि न बूझत बात।
'व्यास', विवेक बिना संसारहिं लूटतहूँ न अघात ॥१२॥

सारङ्ग

जो दुख होत विमुख[3] घर आये।
ज्यों कारौ[4] लागै कारी निसि, कोटिक बीछी खाये[5] ॥
दुपहर जेठ जरत बारू[6] में, घायन लौन लगाये।
काँटन माँझि फिरै बिन पनहीं, मूड़ैं टोला खाये ॥
ज्यों बाँझहिं दुख होत सौति कौ सुंदर बेटा जाये।
देखत हीं मुख होत जितौ दुख बिसरत नहिं बिसराये ॥
भटकत फिरत निलज बरजत हीं कूकर ज्यों झहराये[7]।
गारी देत बिलग[8] नहिं मानत, फूलत दमरी[9] पाये।
अति दुख दुष्ट जगत में जेते नैकु न मेरे भाये।
भूलि दरस नहिं कीजौ वाकौ, 'व्यास' वचन बिसराये ॥१३॥

सारङ्ग

सुने न देखे भक्त भिखारी।
तिनके दाम-काम कौ लोभ न, जिनके कुञ्ज-विहारी ॥
सुक नारद अरु सिव सनकादिक ये अनुरागी भारी।
तिनकौ मत भागवत न समुझै सबकी बुधिपचिहारी ॥
रसना, इन्द्री[10] दोऊ बैरिन, जिनकी अनी[11] अन्यारी[12]।
करि आहार-विहार परस्पर बैर करत बिभिचारी ॥
विषयिनि की परतीति न हरि सौं, प्रीति-रीति बाजारी[13]।
'व्यास' आस-सागर में बूड़ैं आई[14] भक्ति बिसारी ॥१४॥

१मट्ठा। २शक्र, इन्द्र। ३हरि-विमुख। ४काला; काला सांप। ५काट लेने पर। ६जलती हुई बालू। ७तिरस्कार होने पर भी। ८बुरा नहीं मानता है। ९दमड़ी अर्थात् थोड़ा-सा धन पा जाने से कुप्पा-जैसा फूल जाता है। १०इन्द्रिय; यहाँ शिश्नेन्द्रिय से तात्पर्य है। ११नोक। १२पैनी। १३लुच्चाई से भरी हुई। १४अनायास मिली हुई।

जो सुख होत भक्त घर आये।
सो सुख होत नहीं बहु संपति, बाँझहिं बेटा जाये॥
जो सुख होत भक्त-चरनोदक, पीवत गात लगाये।
सो सुख अति सपनेहुँ नहिं पैयतु, कोटिक तीरथ न्हाये॥
जो सुख कबहुँ न पैयतु पितु-घर, सुत कौ पूत खिलाये।
सो सुख होत भक्त-बचननि सुनि, नैननि-नीर[1] बहाये॥
जो सुख होत मिलत साधुन सों, छिन-छिन रंग[2] बढ़ाये।
सो सुख होत न नैकु 'ब्यास' कों, लंक सुमेरहुँ पाये॥१५॥

सारङ्ग

हरि-बिनु को अपनो संसार।
माया-मोह-बँध्यौ जग बूड़त, काल-नदी की धार॥
जैसे संघट[3] होत नाव में, रहत न पैले पार[4]।
सुत-संपति-दारा सों ऐसे, बिछुरत लगै न बार॥
जैसे सपने रंक पाय निधि, जाने कछू न सार।
ऐसे छिनभंगुर देही के गरबहि करत गँवार॥
जैसे अँधरे टेकत डोलत, गनत न खाइ[5]-पनार[6]।
ऐसे 'ब्यास' बहुत उपदेसे, सुनि-सुनि[7] गये न पार॥१६॥

सारङ्ग

कहत सुनत बहुतै दिन बीते, भक्ति न मनमें आई।
स्याम-कृपा बिनु साधु-संग बिनु, कहि कौने रति[8] पाई?
अपने-अपने मद-मत भूले, करत आपनी भाई[9]।
'कह्यौ हमारो बहुत करत हैं, बहुतन में प्रभुताई॥'

१प्रेम के आँसू बहाने से। २प्रेम। ३साथ। ४परले पार, उस पार। ५गड्ढा। ६नाला। ७ज्ञानोपदेश सुनकर भी मुक्त नहीं हुए। ८अनुरक्ति; भक्ति। ९अपनी मनचाही, मनमुखी बात।

'मैं समझी सब काहु न समझी, मैं सबहिन समझाई।
'भोरे[1] भक्त हुते सब तब के[2], हमरें बहु चतुराई ॥'
'हमहीं अति परिपक्व भये, औरनि कै सबै कचाई[3]।
कहनि सुहेली[4] रहनि दुहेली[5], बातनि बहुत बड़ाई ॥
हरिमंदिर माला धरि गुरु करि, जीवन के दुखदाई।
दया-दीनता दास-भाव बिनु, मिलें न 'व्यास' कन्हाई ॥१७॥

धनाश्री

वृन्दावन साँचो धन भैया।
कनक-कूट[6] कोटिक लगि तजिए, भजिए कुँवर-कन्हैया ॥
जहँ श्रीराधा-चरनरेनु की कमला लेति बलैया।
तिनमें गोपी नाच नचावति, मोहन बेनु बजैया ॥
कामधेनु कौ छीरसिंधु तजि भजहु नंद की गैया।
चार्‌यौ मुक्ति कहा लै करिहौ, जहाँ जसोदा मैया ॥
अद्‌भुत लीला, अद्‌भुत वैभव, सत[7] सुकदेव कहैया।
आरत[8] 'व्यास' पुकारत बन में थोरे लोग सुनैया ॥१८॥

कान्हरा

परमधन राधे-नाम अधार।
जाहि स्याम मुरली में टेरत, सुमिरत बारंबार ॥
जंत्र-मंत्र और वेद-तंत्र में, सबै तार[9] कौ तार।
श्रीसुक[10] प्रगट कियौ नहिं यातें, जानि सार कौ सार॥
कोटिन रूप[11] धरे नँद-नंदन तऊ न पायौ पार।

१भोले, मूर्ख। २पुराने। ३कच्चापन। ४कहना सुन्दर है। ५रहना दो प्रकार का है। हाथी के दांत दिखाने के और होते हैं और खाने के और; कपट-भाव। ६सुमेरु पर्वत। ७सत्य; सार। ८दूसरों के हित में आर्त्त। ९रहस्य का रहस्य। १०श्री...सार = इसीसे सर्वत्र अधिकारी न पाकर शुकदेवजी ने श्रीमद्-भागवत में, श्रीराधिकाजी का नाम स्पष्ट रूप से नहीं कहा है। ११छद्मरूप।

'व्यासदास' अब प्रगट बखानत, डारि भार में भार ॥१९॥

साखी

आदि अंत अरु मध्य में, गहि रसिकन की रीति।
संत सबै गुरु देव हैं, 'व्यासहिं' यह परतीति ॥१॥
'व्यासहिं' बाह्मन जिन गनौ, हरि-भक्तन कौ दास।
राधावल्लभ कारनै, सह्यौ जगत-उपहास ॥२॥
'व्यास' न कथनी[1] काम की, करनीं[2] है इक सार।
भक्ति बिना पंडित वृथा, ज्यौं खर चंदन भार ॥३॥
'व्यास' रसिक सब चलि बसे, नीरस रहे कुवंस[3]।
बक[4]-ठग की संगति भई, परिहरि गये जु हंस ॥४॥
श्रीराधावर ध्यायकैं, और ध्याइए कौन।
'व्यासहिं' देत[5] बनै नहीं, बरी-बरी-प्रति लौन ॥५॥
'व्यास' बड़ाई लोक की, कूकर की पहिचानि।
प्रीति करैं मुख चाटही, बैर करैं तनु-हानि ॥६॥
मुहरैं मेवा अनत के, मिथ्या भोग-बिलास।
बृन्दावन के स्वपच की, जूठन खैए 'व्यास' ॥७॥
'व्यास' आस करि माँगिवौ, हरि हूँ हरुवौ[6] होय।
बावन[7] ह्वै बलि कैं गये, यह जानत सब कोय ॥८॥
नैन न मूँदे ध्यान को, किये न अंगन-न्यास[8]।
नाचि-गाय स्यामहिं मिले, बस बृन्दावन 'व्यास' ॥९॥
'व्यास' राधिकारमन बिनु, कहूँ न पायौ सुक्ख।

१कोरा कथन, मौखिक वाद-विवाद। २शास्त्र-विहित कर्तव्य कर्म। ३बुरे वंश, कुपूत, हरि-विमुख। ४बगुला। ५देत...लौन—एक-एक बड़ा (दाल की बड़ियाँ) पर नमक डालते नहीं बनता। एक-एक देवता का अलग-अलग पूजन नहीं करते बनता। ६हलका, तिरस्कृत। ७विष्णु का वामन अवतार। इसी अवतार में राजा बलि को छला था। ८संध्या-वंदन के अंगन्यास इत्यादि

डारन-डारन[१] मैं फिर्यौ, पातन-पातन[२] दुक्ख ॥१०॥
'व्यास' भक्ति की कुबुधि गहि, गुरु गोविन्दहिं मारि।
कै या व्रतहिं निवाहि लै, कै मालादि उतारि ॥११॥
मन जो चरननि तर बसै, तनु जो अनत हि जाय।
अस चरननि मन अनत ही, ताहि न 'व्यास' पत्याय ॥१२॥
प्रेम अतनु या जगत में, जानै विरलो कोय।
'व्यास' सतनु क्यों परसिहैं, पचि हार्यौ जग रोय ॥१३॥
अपने-अपने मत लगे, वादि मचावत सोर।
ज्यों-त्यों सब कौं सेइबो, एकै नन्दकिसोर ॥१४॥*
हरि-हीरा निरमोल है, निरधन गाहक 'व्यास'।
ऊँचो फल क्यों पावही चौंप करत उपहास ॥१५॥
मुख मीठी बातैं कहै, हिरदै निपट कठोर।
'व्यास' कहौ क्यों पायहै, नागर नंद-किसोर ॥१६॥
'व्यासदास'-से पतित सों, भृगु[३] कौ पलटौ[४] लेहु।
उर उर दीनों एक पग, तुम दोऊ पग देहु ॥१७॥
'व्यास', आस इत जगत की, उत चाहत हिय स्याम।
निलज अधम सकुचत नहीं, चाहत है अभिराम ॥१८॥

१डाल-डाल पर। २पत्ते-पत्ते पर। ३भृगु मुनि; जिन्होंने सर्वश्रेष्ठ धर्म क्षमा की परीक्षा लेने के लिए विष्णु भगवान् की छाती पर लात मारी थी। ४बदला। व्यासजी कहते हैं—'हे हरे। भृगुमुनि ने आप के वक्षःस्थल पर एक लात मारी थी। क्या आप उनका बदला लेना चाहते हैं? तो मेरे हृदय पर अपने दोनों चरणों को रखकर बदला चुका लीजिए न, क्योंकि मैं भी भृगु का ही सजातीय ब्राह्मण हूँ।' क्या ही अनोखी सूझ है।

*यह दोहा बिहारी-सतसई में भी है। यह नहीं कहा जा सकता कि बिहारी ने इसे अपनी सतसई में रख लिया है। संपादकों की भूल से ही ऐसी गड़बड़ी का होना संभव है।

मो मन अटक्यौ स्याम सौं, गड़्यौ रूप में जाय।
चहले[1] परि निकसै नहीं, मनों दूबरी[2] गाय। १९ ॥
साधुन की सेवा कियें, हरि पावत संतोष।
साधु-विमुख जे हरि भजैं, 'व्यास', वढ़ै दिन रोप ॥२०॥
स्वान प्रसादहि छ्वी गयो, कौआ गयो विटारि[3]।
दोऊ पावन 'व्यास' के. कह भागौत[4] विचारि ॥२१॥
'व्यास' जु रसिकन की रहनि, वहुत कठिन है वीर।
मन आनन्द घटै न छिन, सहत जगत की पीर ॥२२॥
सती सूरमा संतजन, इन समान नहिं और।
अगम पंथ पे पग धरैं, डिगै न पावै ठौर ॥२३॥
उपदेस्यौ रसिकन प्रथम, तव पाये हरिवंस।
जव हरिवंस कृपा करी, मिटे 'व्यास' के संस[5] ॥२४॥
'व्यास' वड़ाई और की, मेरे मन धिक्कार।
रसिकन की गारी भली, यह मेरो सिंगार ॥२५॥
काहू के वल भजन कौ, काहू के आचार।
'व्यास. भरोसे कुँवारि[6] के सोवत पाउँ पसार ॥२६॥
मोह-मया[7] के फंद वहु, 'व्यासहि' लीनों घेरि।
श्रीहरिवंस कृपा करी, लीनों मोकों टेरि ॥२७॥
'व्यास' आस परिवंस की, तिनहीं के वड़ भाग।
वृन्दावन की कुञ्ज में, सदा रहत अनुराग ॥२८॥
'व्यास' भक्ति को फल लह्यौ, वृन्दावन की धूरि[8]।
श्री हरिवंस-प्रताप तें पाई, जीवन-मूरि ॥२९॥
मेरे मन आधार प्रभु, श्रीवृन्दावन — चंद।
नितप्रति यह सुमरत रहौ, 'व्यासहि' मन आनन्द ॥३०॥

१ दलदल। २ दुबली। ३ चोंच मार गया। ४ भागवत। ५ संशय, चिन्ता
६ श्री राधिका जी। ७ माया। ८ धूल; रज।

श्रीहरि-भक्ति न जानहीं, माया ही सौं हेत।
जीवत ह्वैहैं पातकी, मरिकैं ह्वैहैं प्रेत ॥३१॥
'व्यास' दीनता के सुखहि, कह जानै जग मंद[१]।
दीन भये तें मिलत हैं, दीनबन्धु सुख-कंद ॥३२॥
वृन्दावन के स्वपच कौ, रहिए सेवक होय।
तासों भेद न कीजिए, पीजै पद-रज धोय ॥३३॥
'व्यास' मिठाई विप्र की, तामें लागै आगि[२]।
वृन्दावन के स्वपच की जूठनि खैए माँगि ॥३४॥
'व्यास', कुलीलनि कोटि मिलि, पंडित लाख पचीस।
स्वपच भक्त की पानहीं[३] तुलैं न तिनके सीस ॥३५॥
'व्यास, न व्यापक[४] देखिए, निरगुन परै न जानि।
तव भक्तन हित औतरे[५], राधा-वल्लभ आनि ॥३६॥

विहार के पद

विहारा

गौर मुख चंद्रमा की भाँति।
सदा उदित वृन्दावन प्रमुदित, कुमुदित वल्लभ[६]-जाति ॥
नील निचोल[७] सुहार, गगन में लसति तारिका-पाँति[८]।
झलकत अलक, दसन-दुति दमकत, मनहुँ किरन कुलकाँति[९] ॥
हास-कला कल सरद-सुहाई, तनु छवि चाँदनि राति।
नैन कुरंग निकट सिंहनि-उर, उन पर अति अनखाति ॥
नाह निकट नहिं राहु-विरह, डरपत सोभा न समाति।
देखत पाप न रहत 'व्यास' दासी-तन-ताप बुझाति ॥१॥

मलार

आजु कछु कुञ्जनि में बरषा-सी।

१मूर्ख। २वह चूल्हे में जला दी जाय। ३जूती। ४सर्वव्यापी ब्रह्म। ५अवतार लिया। ६प्रिय। ७वस्त्र। ८ताराओं की पंक्ति। ९कांति।

बादल-दल[1] में देखि सखी री, चमकति है चपला-सी ॥
नान्हीं-नान्हीं बूँदनि कछु धुरवा[2]-से, पवन बहै सुखरासी ।
मन्द-मन्द गरजनि-सी सुनियतु, नाचति मोर-सभा-सी ॥
इन्द्र-धनुष बग-पंगति डोलति, बोलति, कोककला-सी ।
इन्द्र वधू[3]-छवि छाय रही, मनु गिरि पर अरुन घटा-सी ॥
उमँगि महीरुह[4]-सी महि फूली[5], भूली मृगमाला-सी ।
रटति 'व्यास' चातक ज्यों रसना, रस[6] पीवत ही प्यासी ॥२॥*

कल्यान

सुघर राधिका प्रवीन[7] बीना, वर रास रच्यौ
स्याम-संग वर सुगन्ध तरनि-तनय[8]-तीरे ।
आनन्दकँद वृन्दावन सरद मन्द-मन्द पवन
कुसुम-पुञ्ज ताप-दवन[9], धुनत कलकुटीरे[10] ॥
रुनित[11] किंकिनी सुचारु, नूपुर तिमि वलय-हारु[12],
अंग वर मृदंग ताल तरल रंग भीरे ।
गावत अति रंग रह्यौ, मोपै नहिं जात कह्यौ,
'व्यास' रस-प्रवाह बह्यौ निरखि नैन सीरे ॥३॥

सारङ्ग

नृत्यत नागर नटवर वपु धरि सुख-सागरहिं बढ़ावत ।
सरद सुखद निसि ससि गोरंजित[13] वृन्दावन उपजावत ॥
ताल लिये गोपाललाल सँग ललिता मृदंग बजावति ।
हरिबंसी हरिदासी गावति, सुघर[14] रबाब[15] बजावति ॥

१घन-घटाएँ । २मेघ । ३बीरबहूटी । ४वृक्ष । ५प्रसन्नता से हरी-भरी हो गई । ६आनंदामृत । ७वीणा बजाने में चतुर । ८सूर्य-पुत्री, यमुना । ९दमन; नाश करने वाला । १०कुटी या कुंज में । ११शब्दायमान । १२हाथों में पहिनने के कड़े । १३ गायकों के सुरों से बढ़ी हुई धुन से कुछ-कुछ धुँधला-सा । १४चतुर । १५बाजा-विशेष ।
*इस पद में प्रकृति श्री का क्या ही सजीव चित्रण है !

मिस्रित धुनि सुनि खग-मृग मोहित जमुना[1] जल न बहावति।
लेत तिरपि विगलित माला तित कुसुमावलि बरसावति॥
जय जय साधु करति हरि सहचरि, 'व्यास' चिराक[2] दिखावति॥४॥

केदारा

पिय कों नाचन सिखवति प्यारी।
वृन्दावन में रास रच्यौ है, सरद-इन्दु-उँजियारी॥
मात गुमान लकुट लियें ठाढ़ी, डरपत कुञ्जविहारी।
'व्यास' स्वामिनी की छवि निरखति, हँसि-हँसि दै करतारी॥५॥

रास-पंचाध्यायी*

त्रिपदी छन्द

निठुर वचन जिनि बोलहु नाथ, निज दासी जिनि करहु अनाथ;
रास-रसिक गुन गाइहौं।
नव कुंकुम-जल बरसत जहाँ, उड़त कपूर-धूर[3] जहँ तहाँ,
और फूल-फल को गनै ?
तहाँ स्यामघन रासहि रच्यौ, मरकत[4]; मनि कंचन सों खच्यौ;
सोभा कहति न आवई॥
चारु मण्डली जुवतिन बनी, द्वै-द्वै बिच आये हरि धनी[5];
अद्भुत कौतुक प्रगटि कियौ॥

१ स्थिर होकर यमुना भी रास देख रही हैं। २ दीपक। ३ कपूर का चूर्ण। ४ मरकत... खच्यौ = नीलम मणि के समान श्रीकृष्ण कंचनवर्ण गोपियों के साथ शोभायमान हो रहे हैं। ५ प्यारे।

*संग्रह-कर्त्ताओं की भूल से व्यासजी की यह 'रास-पंचाध्यायी' 'सूर-सागर' में रख दी गयी है। इसकी रचना भी सूरदास की रास-विहार विषयक रचना से कुछ कम नहीं है; और कदाचित् इसी से 'सूरसागर' के संपादकों को ऐसा करने में भ्रम हो गया है।

पद पटकति लटकति लट, बाहु, भौंहन मटकति हँसति उछाहु;
अंचल चंचल झूमका ॥
मन कुंडल ताटंक पिलोल[1], मुख सुखरासि कहै मृदु बोल;
गंडल [2]मंडित स्वेदकन ॥
विलुलित[3] माला, विगलित [4] केस, घूमत, लटकत मुकुट विसेस;
कुसुम खसैं सिर तें घने ॥
हरषित वेनु बजायो छैल, चंदहिं[5] बिसरी घर की गैल,
तारागन मनमें लजैं ॥
मोहनि-धुनि बैकुंठहि गयी, नारायन मन प्रीति जु भयी,
कमला सों बोले बचन—
"कुञ्जविहारी विहरत देखि, जीवन जनम सुफल करि लेखि;
यह सुख हम कों है कहाँ !
श्रीवृन्दावन हम तें दूरि, कैसैं करि उड़ि लागै धूरि;
रास-रसिक गुन गाइहौं ॥"
धुनि कोलाहल दस दिसि जाति, कल्प समान भयौ सुखराति;
जीव-जंतु मुदमंत सब ॥
उलटि बह्यौ जमुना कौ नीरु, बालक-बच्छ न पीवत खीरु[6];
राधारमन-ठगे[7] सबै ॥
गिरिवर तरुवर पुलकित गात, गोगन-थन तें दूध चुचात[8];
सुनि खग-मृग मुनिव्रत[9] धर्यौ ॥१॥*

[1]चंचल, हिलता हुआ। [2]गालों का ऊपरी भाग। [3]हिलती हुई, लरजती हुई। [4]बिखुरे हुए। [5]चंदहि...गैल=चंद्रमा स्थिर हो गया। [6]दूध। [7]मोहित कर लिये। [8]चू रहा है। [9]आनंद के मारे विदेह-से हो गये; समाधिस्थ हो गये।

*भक्ति-पथ में वैकुण्ठ-वासी नारायण और लक्ष्मी से गोलोक-वृन्दावन-वासी श्रीकृष्ण और श्रीराधिका परे हैं। नारायण और लक्ष्मी श्रीकृष्ण और राधिका के

कह्यौ भागवत में अनुराग, कैसे समुझै बिनु बड़भाग:
श्रीगुरु सुक जु कृपा करी ॥
'व्यास' आस करि बरन्यौ रास; चाहत हौं वृन्दावन-वास ;
करि राधे, इतनी कृपा ॥
निज दासी अपनी करि मोहिं, नितप्रति स्यामा सेऊँ तोहिं;
नव निकुञ्ज-सुख-पुञ्ज में ॥
हरिवंसी[1] हरिदासी[2] जहाँ, मोहिं करुना करि राखौ तहाँ;
नितबिहार-आधार दै ॥
कहत-सुनत बाढ़ै रसरीति, स्रोतहिं वक्तहिं हरिपद-प्रीति;
रास-रसिक गुन गाइहौं ॥२॥*

अंशावतार कहे जाते हैं। अतः यह नित्य-विहार का आनन्द-लाभ उन्हें कहाँ?

१ श्रीराधावल्लभीय सहचरी। २ टट्टी-सांप्रदायिक सहचरी।

*व्यास जी श्रीहितहरिवंश और श्रीस्वामीहरिदास को सम भक्ति-भाव से देखते थे। उनकी दृष्टि में संकीर्ण सांप्रदायिक भेद-भाव के लिए स्थान नहीं था।

कृष्णदास

छप्पय

श्री वल्लभगुरु-दत्त भजन-सागर गुन-आगर ।
कवित नोष, निर्दोष, नाथ-सेवा में नागर ॥
बानी वंदित विदुष सुजस गोपाल अलंकृत ।
व्रजरज अति आराध्य वहै धारी सर्वसु चित ॥
सान्निध्य सदा हरिदास-वर, गौर-स्याम-दृढ़-व्रत लियौ ।
गिरिधरन रीझि कृष्णदास से नाम मांझ साझो दियौ ॥

—नाभाजी

महात्मा कृष्णदासजी गोस्वामी श्रीवल्लभाचार्यजी के शिष्य थे। गोसाईं विट्ठलनाथजी ने इनकी भी 'अष्टछाप' में गणना की है। इनकी कविता, सूरदास और नंददास की रचनाओं को छोड़कर, 'अष्ट-छाप' में सर्वोत्कृष्ट मानी जाती है। यह जाति के शूद्र थे, पर श्रीवल्लभा-चार्यजी के परम कृपापात्र होने से यह श्रीनाथजी के मन्दिर के सर्वप्रधान प्रबन्धकर्ता नियुक्त किये गये। इनका जन्म-संवत्, श्रीनाथ द्वारा के नित्य कीर्तन के अनुसार, '१५९० है। '८४ वैष्णव की वार्ता' में इनका विस्तृत जीवन-चरित्र लिखा है। लिखा है कि, एक बार गोसाईं विट्ठल-नाथजी से रुष्ट होकर इन्होंने श्रीनाथजी के मन्दिर में उनकी ड्योढ़ी बन्द करदी। इस बातपर गोसाईंजी के कृपापात्र महाराजा वीरबल ने कृष्ण-दासजी को कैद कर लिया। पर क्या गोसाईंजी इस कार्यवाही से संतुष्ट हो सकते थे? उन्हें एक परमभक्त के बंदी हो जाने से इतना कष्ट हुआ कि अन्न-जलतक छोड़ दिया। यह देखकर वीरबल ने कृष्णदास को कारागार से मुक्त कर दिया। गोसाईंजी ने पुनः इन्हें मन्दिर का प्रबन्ध सौंप दिया।

'इन्होंने श्रीराधाकृष्ण के विशुद्ध शृंगार का पदों द्वारा बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। इनका कोई ग्रंथ नहीं मिलता। हमने 'कृष्णदास जू को कीर्तन' नाम का एक हस्तलिखित संग्रह देखा है। उसमें इनके १२५ पद हैं। इनकी कविता बड़ी ही सरस और भावमयी है। कहते हैं, यह सूरदासजी से अपनी कविता के संबन्ध में लागडाँट रखा करते थे। इनका गोलोकवास सम्वत् १६६५ के लगभग हुआ।

देवगंधार

जब तें स्याम-सरन हौं पायो।
तब तें भेंट भई श्रीवल्लभ[१], निज पति[२] नाम बताओ॥
और अविद्या[३] छाँड़ि मलिनमति, स्रुतिपथ आइ दृढ़ायो।
'कृष्णदास' जन चहुँ जुग खोजत, अब निहचै मन आयो॥१॥

बिलावल

बाल-दसा गोपाल की सब काहू प्यारी।
लै-लै गोद खिलावहीं, जसुमति महतारी॥
पीत झँगुलि[४] तन सोहही, सिर कुलहि[५] बिराजै।
छुद्रघंटिका[६] कटि बनी, पाय नूपुर बाजै॥
मुरि-मुरि नाचै मोर-ज्यौं, सुर-नर-मुनि मोहै।
'कृष्णदास' प्रभु नंद के आँगन में सोहै॥२॥

विभास

रास-रस गोविंद करत बिहार।
सूर-सुता[७] के पुलिन रम्य महँ, फूले कुंद-मँदार॥

१ यह आचार्यवर विष्णुस्वामी सम्प्रदाय की परंपरा में हुए हैं। आपने दाक्षिणात्य होकर भी ब्रज-भाषा-साहित्य का अतुल उपकार किया। शुद्धाद्वैतमत का प्रति पादन कर आचार्यवर ने मायावाद का खंडन किया। २ जीव के भर्ता श्रीकृष्ण। ३ माया; हेर-फेर का ज्ञान। ४ बच्चों का कुरता; अलफा। ५ टोपी। ६ करधनी। ७ सूर्य-पुत्री, यमुना।

अद्भुत सतदल[1] विकसित कोमल, मुकुलित कुमुद कल्हार[2] ।
मलय-पवन वह सारदि[3] पूरनचंद्र, मधुप झंकार ॥
सुघरराय[4] संगीत-कलानिधि, मोहन नंदकुमार ।
व्रजभामिनि-सँग प्रमुदित नाचत, तन चरच्चित घनसार[5] ॥३॥

ललित

इहि मन कैसेकैं रहत राख्यौ ।
जिहि मधुकर ह्वै गिरधर पिय कौ वदन कमल-रस[6] चाख्यौ ॥
जु कछुक मैं कानी वरवस ह्वै ताही कौ सो साख्यौ[7] ।
वारवार बहु-बिधि समुझायौ ऊँचो[8]-नीचो भाख्यौ ॥
केहुँ[9] न मानत महाहठीलौ, कही तुम्हारी आख्यौ[10] ।
'कृष्णदास' कहँलौं हौं वरनौं, रूपमधुर-मधु चाख्यौ ॥४॥

नट

गौपालै देखन किन[11] आई री ।
आजु बने गोविंद मानिनी, तोकों लैन पठाई री ।
तरनि-तनया-पुलिन विमल सरद निसि जुन्हाई[12] री ।
राकापति-कर-रंजित द्रुमलता भूमि सुहाई री ॥
गोवर्द्धन-धरन - लाल गान सों बुलाई री ।
'कृष्णदास, प्रभु सों मिलन जुवतिनि सुखदाई री ॥५॥

विभास

आजु पिय सों तू मिली री, मानो ।
स्रमजलकन भरि वदन की सोभा, निरखि नभसि[13] उडुराज लिसानो[14] ॥

१सौ पंखड़ी वाला कमल । २पुष्प-विशेष । ३शरद ऋतु की । ४निपुण-शिरोमणि । ५कपूर । ६पराग । ७साक्षी । ८साम, दाम, दंड, भेद सब तरह से समझाया । ९किसी भी तरह । १०उल्लंघन कर गया । ११क्यों नहीं । १२चाँदनी । १३आकाश में । १४अपने को निस्तेज-सा समझकर चंद्रमा मन ही मन कुढ़ गया ।

त्रिभुवन-जुवतिन कौ सुख सरवसु, जानति हौं तुव मोम समानो ॥
'कृष्णदास' प्रभु रसिक-मुकुट-मनि, सुबस कियो गोवर्द्धन-रानो[१] ॥६॥

गौरी

मो मन गिरिधर-छवि पै अटक्यौ ।
ललित त्रिभंग चाल पै चलिकैं, चिबुक चारु गड़ि ठटक्यौ[२] ॥
सजल स्यामघन-बरन लीन ह्वै, फिरि चित अनत न भटक्यौ ।
'कृष्णदास' किये प्रान निछावर, यह तन जग सिर पटक्यौ[३] ॥७॥*
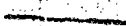
१राजा । २ठिठक गया, ठहर गया । ३इस क्षणभंगुर शरीर को संसार के हवाले कर दिया ।

*कहते हैं, इसी पद को गाते-गाते कृष्णदासजी ने अपना शरीर छोड़ दिया था ।

परमानंददास

छप्पय

ब्रज-लीलामृत-रसिक, रुचिर पद-रचना-नेमी ।
गिरिधारन श्रीनाथ-सखा, वल्लभ-पद-प्रेमी ॥
ब्रज-रस-मधुकर मत्त, भक्त, भावुकता भूषन ।
कविता रस-संवलित, नाहिं जामें कहुँ दूषन ॥
नित रहत प्रेम में रँगमगो, ब्रजवल्लभ के पास ।
सुचि अष्टछाप को भक्तकवि, श्री परमानँददास ॥

—वियोगी हरि

'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में श्री परमानंददासजी की कथा आई है । 'अष्टछाप' में इनकी भी गणना की गई है । आचार्य महाप्रभुजी के यह शिष्य थे और सूरदासजी के गुरु-भाई । यह कन्नौजनिवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे । श्रीवल्लभाचार्यजी के यह बड़े कृपापात्र थे । इनकी कविता सुनकर आचार्यदेव प्रेमोन्मत्त हो जाते थे । वात्सल्य और प्रेम का तो परमानंददासजी ने बड़ा ही सुन्दर और सजीव चित्रण किया है । सुनते हैं, इनका रचा हुआ एक ग्रंथ 'परमानंद-सागर' है । साहित्यान्वेषकों को इस ग्रंथ-रत्न को अवश्य प्रकाश में लाना चाहिए । 'मिश्रबन्धुविनोद' के अनुसार इनका रचना-काल संवत् १६०६ के लगभग माना जाता है । 'परमानंददासजी का पद', 'दान-लीला' और 'ध्रुव-चरित' नाम के इनके ग्रंथ खोज में मिले हैं । नीचे परमानंददासजी के कुछ पद उद्धृत किये जाते हैं :—

कहा करौं बैकुंठहिं जाय ।
जहँ नहिं नंद जहाँ न जसोदा, जहँ नहिं गोपी ग्वाल न गाय ॥

जहँ नहिं जल जमुना कौ निरमल, और नहीं कदमन[1] की छाय[2]।
'परमानँद' प्रभु चतुर ग्वालिनी, व्रजरज तजि मेरी जाय बलाय ॥१॥

ब्रज के बिरही लोग बिचारे।
बिनु गोपाल ठगे-से ठाढ़े, अति दुर्बल तन-हारे[3] ॥
मात जसोदा पंथ निहारत, निरखत साँभ-सकारे।
जो कोई कान्ह-कान्ह कहि बोलत, अँखियन बहत पनारे ॥
यह मथुरा काजर की रेखा, जे निकसे ते कारे[4]।
'परमानँद' स्वामी बिनु ऐसे, ज्यों चंदा बिनु तारे ॥२॥

कौन रसिक[5] है इन बातन कौ।
नंद-नँदन बिनु कासों कहिए, सुनि री सखी, मेरे दुखिया मन कौ ॥
कहाँ वे जमुना-पुलिन मनोहर कहाँ वह चंद सरद रातन कौ।
कहाँ वे मंद-सुगंध अमल रस कहाँ वो षट्पद जल-जातन[6] कौ ॥
कहाँ वो सेज पौढ़िबो बन कौ, फूल बिछौना मृदु पातन[7] कौ ॥
कहाँ वे दरस-परस 'परमानँद', कोमल तन कोमल गातन कौ ॥३॥

माई, को मिलिवै नन्दकिसोरै।
एकबार को नैन दिखावैं, मेरे मन कौ चोरै ॥
जगत जाय गनत नहि खूटत[8], क्यों पाऊँगी भोरै[9]।
सुनि री सखी, अब कैसे जीजै, सुनि तमचुर खग रोरै[10] ॥
जो यह प्रीति सत्य अंतरगत, जिन काहू बन हौरै।
'परमानन्द' प्रभु आनि मिलैंगे, सखी सीस जिनि ढोरै[11] ॥४॥

मोहन नन्दराय-कुमार।
प्रगट[12] ब्रह्म निकुञ्ज-नायक, भक्तहित अवतार ॥
प्रथम चरन-सरोज बंदौं, स्यामघन गोपाल।

१कदंब वृक्षों का। २छाया। ३निराश। ४काले, कपटी। ५ग्राहक। ६कमलों पर मँडराता हुआ। ७पत्तों का। ८बीतता है। ९सवेरे का। १०शब्द को। ११मत धुन, दुःख न कर। १२ प्रत्यक्ष।

मकर कुंडल गंड[१]-मंडित, चारु नैन विसाल ॥
सहित श्री बलराम लीला, ललित सों करि हेत[२] ।
दास 'परमानंद' प्रभु हरि, निगम बोलत नेत[३] ॥५॥

माई[४] री, कमलनैन स्यामसुन्दर, झूलत हैं पलना ।
बाल-लीला-गावति सब, गोकुल की ललना ॥
अरुन तरुन कमल, नख-मनि जस जोती ।
कुञ्चित[५] कच मकराकृत लटकत गज-मोती ॥
अँगुठा गहि कमलपानि मेलत मुख माहीं ।
अपनो प्रतिबिम्ब देखि पुनि-पुनि मुसुकाहीं ॥
जसुमति के पुन्य-पुञ्ज बार-बार लाले[६] ।
'परमानँद'-प्रभु गोपाल सुत-सनेह पाले ॥६॥

जसोदा, तेरे भाग्य की कही न जाय ।
जो मूरति ब्रह्मादिक-दुर्लभ, सो प्रगटे हैं आय ॥
सिव नारद सुक-सनकादिक मुनि मिलिबे कों करत उपाय ।
ते नँदलाल धूरि-धूसरि बपु रहत गोद लपटाय ॥
रतन-जटित पौढाय पालने, वदन देखि मुसुकाय ।
झूलौ लाल, जाऊँ बलिहारी, 'परमानन्द' जसु गाय ॥७॥

हरि, तेरी लीला की सुधि आवै ।
कमल नैन मन-मोहनि मूरति, मन मन[७] चित्र बनावै ॥
बारक[८] मिलत जात माया करि, सो कैसें बिसरावै ।
मुख मुसिकान, बंक अवलोकनि, चाल मनोहर भावै ॥
कबहुँक निबिड़ तिमिर आलिंगन, कबहुँक पिक सुर गावै ।
कबहुँक संभ्रम 'क्वासि-क्वासि'[९] कहि-कहि सँगहीं उठि धावै ॥

१कपोल का ऊपरी भाग। २प्रेम। ३वेद, जिसके संबंध में 'नेति-नेति' कहते हैं। ४सखी। ५घूँघर वाले बाल। ६प्यार किये। ७मन में। ८एक बार। ९कहाँ हो? कहाँ हो?

'कबहुँक नैन मूँदि अंतरगत[1], मनि-माला पहिरावै।
'परमानँद' प्रभु स्याम ध्यान करि, ऐसें बिरद जगावै ॥८॥

माई री, हौं आनँद गुन गाऊँ।
गोकुल की चिंतामनि[2] माधौ, जो माँगौं सो पाऊँ ॥
जब तें कमलनैन ब्रज आये, सकल संपदा बाढ़ी।
नन्दराय के द्वारैं देखौ अए महासिधि ठाढ़ी ॥
फूलै-फलै सदा वृन्दावन, कामधेनु दुहि दीजै।
मारग मेघ इन्द्र बरषा में, कृष्ण-कृपा-सुख लीजै ॥
कहति जसोदा सखियनि आगे, हरि-उत्कर्ष[3] जनावै।
'परमानन्ददास, कौ ठाकुर मुरलि मनोहर भावै ॥९॥

गावति गोपी मधु[4] ब्रज-बानी।
जाके भुवन बसत त्रिभुवन-पति, राजा नन्द जसोदा रानी ॥
गावत वेद, भारती गावति, गावत नारदादि मुनि ज्ञानी।
गावत गुन गंधर्बकाल सिव गोकुलनाथ-महातम जानी ॥
गावत चतुरानन, सुर-नायक, गावत सेषसहस-मुखरास।
मन क्रम वचन प्रीति पद-अम्बुज, गावत 'परमानन्ददास' ॥१०॥

भली यह खेलिबे की बानि।
मदनगुपाल लाल काहू की नाहिंन राखत कानि[5] ॥
अपने हाथ लै देतहैं चनवर दूध दही घृत सानि।
जो बरजौ तौ आँख दिखावै, परधन कौं दिनदानि[6] ॥
सुनि री जसोदा, सुत के करतब पहले माँट[7] मथानि।
फोर डारि दधि डार अजर[8] मे, कौन सहै नित हानि ॥
ठाढ़ी देखत नन्दजू की रानी, मूँदि कमल मुख पानि।

[1]हृदय में, ध्यान में। [2]स्वर्ग की मणि, जो सब कामनाओं को पूर्ण कर देती है। [3]महत्व। [4]मधुर। [5]शील। [6]नित्य दान देने वाला, महादानी। [7]दही बिलोने का मिट्टी का बड़ा बरतन। [8]आंगन।

'परमानंददास' जानत हैं, बोलि बूझि धौं आनि ॥११॥

आये मेरे नँदनन्दन के प्यारे[1]।
माला तिलक मनोहर बानौ[2], त्रिभुवन के उजियारे[3]।
प्रेम समेत बसत मन-मोहन, नैकहुँ टरत न टारे॥
हृदय-कमल के मध्य विराजत, श्रीव्रजराज-दुलारे।
कहा जानौं कौन पुन्य प्रगट भयौ, मेरे घर जो पधारे॥
'परमानँद' प्रभु करी निछावरि, बार-बार हौं वारे ॥१२॥

१श्रीकृष्ण के भक्त संतजन। २चिन्ह। ३तीन लोक में ज्ञान और भक्ति से प्रकाशित करने वाले।

कुंभनदास

छप्पय

श्री गोवर्द्धन-धरन-सुहृद, प्रेमामृत-सागर।
श्री वल्लभ-पद-मधुप मधुर पद-रचना आगर॥
लोक और परलोक-रीति तिनका-ज्यौं तोरी।
सम्राटहुँ दै पीठि, दीठि गोविंद सों जोरी॥
श्रीगिरिधर 'अष्ट सखान' में, थप्यौ नाम है जास।
मनु मूर्तिवंत रस-कुंभ सो पूरन कुंभनदास॥

—वियोगी हरि

श्रीकुंभनदासजी की भी कथा 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में आई है। 'अष्टछाप' में इनकी भी गणना है। यह महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य थे। बड़े ही त्यागी और भजनानंदी संत थे। भक्त-कवि तो थे ही, गायक भी यह ऊँचे दरजे के थे। इनका कविता-काल संवत् १६०६ के लगभग माना जाता है।

वार्ता में कुंभनदासजी का निवास-स्थान गोवर्द्धन के समीप जमुनावती गाँव लिखा है। पारासोली चंद्रसरोवर के समीप यह खेती किया करते थे। इन्हें 'गोरवा' जाति का लिखा है। यह ग्वाल का काम करते थे। श्रीनाथजी के अनन्य सखाओं में कुंभनदासजी की गणना की गई है। इनकी कविता बड़ी भावमयी और रसभरी है, यद्यपि 'मिश्र-बन्धुविनोद' में इन्हें 'साधारण कोटि' का ही कवि माना गया है। नीचे इनके थोड़े से पद दिये जाते हैं।

कबहुँ देखिहौं इन नैननि ।
सुंदर स्याम मनोहर मूरति, अंग-अंग सुख-दैननि[1] ॥
बृन्दावन-विहार दिन-दिनप्रति गोप-वृन्द सँग लैननि ।
हँसि-हँसि हरषि पतौवनि[2] पावन बाँटि-बाँटि पय-फैननि[3] ॥
'कुंभनदास', किते दिन बीते किये रेनु सुख-सैननि ।
अब गिरधर बिनु निसि अरु बासर,मन न रहतु क्यों[4] चैननि ॥१॥

हिलगनि[5] कठिन है या मन की ।
जाके लियैं देखि मेरी सजनी, लाज गई सब तन की ॥
धरम जाव अरु लोग हँसौ सब, गावौ मिलि कुलगारी[6] ।
सो क्यों रहै ताहिं बिन देखैं, जो जाकौ हितकारी ॥
निमिष न छाँड़त रस-लुब्धक ज्यों, वह अधीन मृग-गानों[7] ।
'कुंभनदास' सनेह परम[8] श्रीगोवर्द्धनधर जानों ॥२॥

आवत मोहन मन जु हर्‌यौ है ।
हौं गृह अपने सचु[9] सों बैठी, निरखि बदन सर्बसु बिसर्‌यौ है ॥
रूप-निधान, रसिक नँदनंदन, उमँग्यौ हिय धीरजन धर्‌यौ है ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धनधर, अँग-अँग प्रेम-पीयूष भर्‌यौ है ॥३॥

केते दिन जु गये बिनु देखैं ।
तरुन किसोर रसिक नँद-नंदन, कछुक उठति मुख रेखैं ।
वह सोभा, वह कांति बदन की, कोटिक चंद बिसेखैं ।
वह चितवन, वह हास मनोहर, वह नटवर वपु भेखैं ॥
स्यामसुंदर-सँग मिलि खेलन की आवति हिये अपेखैं[10] ।
'कुंभनदास' लाल गिरधर बिनु जीवन जनम अलेखैं[11] ॥४॥

१सुख देनेवाली को। २पत्तों पर। ३फेन उठता हुआ धारोष्ण दूध। ४किसी की तरह। ५प्रीति लगन। ६कुल-कलंक। ७नाद। ८परम-प्रेम-स्वरूप। ९सुख-शांति। १०स्मृतियाँ। ११व्यर्थ ही।

संतन[1] कौ कहा सीकरी सों काम।
आवत[2]-जात पन्हैयाँ टूटीं, बिसरि गयौ हरि-नाम॥
जाकौ मुख देखैं दुख लागै, ताकौं करिबे परी सलाम।
'कुंभनदास' लाल गिरधर बिन और सबै बेकाम॥५॥

१संतन...काम = 'वैष्णवन की वार्ता' में लिखा है, कि एक बार श्रीकुंभनदासजी को अकबर बादशाह ने फतेहपुर सीकरी बुलवाया। यह गये तो, पर वहाँ जाना इन्होंने समय का नष्ट करना ही समझा। इसी प्रसंग का यह पद है। २आवत...टूटीं—आना-जाना व्यर्थ हुआ।

रसखानि

छप्पय

दिल्लीनगर-निवास, वादसा-बंस- विभाकर ।
चित्र देखि मन हरो, भरो पन-प्रेम-सुधाकर ॥
श्रीगोवर्द्धन आय जबै दरसन नहिं पाये ।
टेढ़े-मेढ़े वचन-रचन निर्भय ह्वै गाये ॥
तब आप आय सुमनाय करि सुश्रूषा महमान की ।
कवि कौन मिताई कहि सकै, श्रीनाथ-साथ रसखान की ॥

—गोस्वामी राधाचरण

वैष्णव-प्रवर रसखानिजी दिल्ली के पठान थे । इन्होंने अपने को वादशाही खानदान का बतलाया है, जैसा कि नीचे के दोहे से प्रकट होता है :—

देखि गदर, हित साहिबी, दिल्ली नगर मसान ।
छिनहिं वादसा-बंस की ठसक छाँड़ि रसखान ॥

—प्रेम-वाटिका

कुछ लोग इन्हें सैय्यद इबराहीम पिहानीवाले समझते हैं, पर '२५२ वैष्णवन की वार्ता' में इसकी चर्चा नहीं है । यदि ऐसा होता, तो स्वयं रसखानिजी दिल्ली और पठान के स्थान पर पिहानी और सैय्यद लिख देते । पिहानीवाले सैय्यद इबराहीम उपनाम 'रसखानि' एक दूसरे ही कवि थे ।

यह गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के कृपापात्र शिष्य थे । इनका जन्म संवत् १६१२ के लगभग माना जाता है । इन्होंने संवत् १६७१ में 'प्रेम-वाटिका' लिखी थी, जैसे कि उसके एक दोहे से प्रकट होता है :—

विधु सागर, रस इन्दु सुभ, बरस सरस 'रसखानि'।
'प्रेम-वाटिका' रचि रुचिर, चिर हिय हरषि बखानि॥

इनकी युवावस्था-संबन्धी कई आख्यायिकाएँ प्रचलित हैं। '२५२ वैष्णवन की वार्ता' में लिखा है कि, यह एक बनिये के लड़के पर आशिक हो गये थे। उसकी जूठन तक खाया करते थे। एक दिन चार वैष्णवों ने आपस में बात करते हुए कहा कि भगवान् में ऐसा प्रेम लगाना चाहिए जैसा कि रसखानि का उस बनिये के लड़के पर है। यह बात राह जाते रसखानि ने सुनली। उनके पूछने पर, कि भगवान् का रूप कैसा है, वैष्णवों ने उन्हें श्रीनाथजी का एक चित्र दिखाया। चित्रपट की छवि देखते ही इनका मन उस लड़के की ओर से हट गया। श्रीनाथजी को खोजते-खोजते आप विह्वल दशा में गोकुल चले आये। इनका उत्कट वैराग्य और सच्ची लगन देखकर गोसाईं विट्ठलनाथजी ने, विधर्मी और विजातीय का विचार छोड़कर, इन्हें अपना लिया। कहते हैं, रसखानिजी श्रीनाथजी के प्रेम में ऐसे रंग गये थे, कि भावावेश में आप नित्य गोपाल-लाल के साथ गौएँ चराने जाया करते थे।

एक आख्यायिका यह भी प्रचलित है, कि यह जिस स्त्री पर आसक्त थे, वह बड़ी अभिमानिनी और रूपगर्विता थी। वह सदा इनके प्रेम का अनादर करती थी। एक दिन यह श्रीमद्भागवत का फ़ारसी उल्था पढ़ रहे थे। उसमें गोपियों के विरह का प्रसंग आया। उसे पढ़कर इनके मन में आया, कि जिस नंद के फरजंद पर हजारों हसीन गोपियाँ जान दे रही हैं, उसी लाल से इश्क क्यों न जोड़ा जाये? बस, इसी भक्ति-भावना में मस्त होकर उस स्त्री को छोड़ दिया और वृन्दावन चले आये। इस प्रसंग पर आप लिखते हैं:—

तोरि मानिनी तें हियो, फोरि मोहिनी-मान।
प्रेमदेव की छबिहिं लखि, भये मियाँ रसखानि॥

—प्रेमवाटिका

जो हो, इसमें संदेह नहीं, कि यह प्रेम का पूरा-पूरा लुत्फ़ उठा चुके-

थे। इश्कमजाजी इश्क हकीकी की तरफ़ मोड़ दिया; संसारी प्रेम को दिव्य-प्रेम में परिणत कर दिया और यह सच्चे 'रसखानि' हो गये।

इन्होंने मुसलमान होकर भी, ब्रजभाषा में बड़ी ही उत्तम कविता रची। इनकी कविता में शब्दाडंबर शायद ही कहीं हो। उसमें प्रसाद और भाव-गांभीर्य कूट-कूटकर भरा हुआ है। 'सवैया' इनका इतना टकशाली और रसपूर्ण है कि उसका दूसरा नाम 'रसखानि' हो गया है। इनकी दो पुस्तकें स्वर्गीय पंडित किशोरीलालजी गोस्वामी ने प्रकाशित की थीं, एक 'सुजान-रसखान' और दूसरी 'प्रेम-वाटिका'। सुजान-रसखान में १२६ पद्य हैं, जिनमें, कुछ दोहे सोरठे छोड़कर, शेष सवैया और घनाक्षरी हैं। श्री लाला भक्तराम द्वारा संग्रहीत 'राग-रत्नाकर' में भी इनके लगभग १३० सवैया और कवित्त हैं। हमें 'सुजान-रसखान' और 'राग-रत्नाकर' का ही पाठ अधिक शुद्ध जान पड़ता है। 'प्रेम-वाटिका' में प्रेम-परिपूरित ५२ दोहे हैं। प्रेम और भक्ति का जैसा सजीव और सुंदर चित्र रसखानि ने खींचा है, कदाचित् ही वैसा किसी अन्य कवि ने खींचा हो। इनके कुछ पद्य नीचे दिये जाते हैं:

सुजान-रसखान

सवैया

मानुष हौं, तौ वही रसखानि, बसौं ब्रज-गोकुल-गाँव के ग्वारन[1]।
जो पसु हौं तो कहा बसु मेरो, चरौं नित नन्द की धेनु मँझारन[2] ॥
पाहन हौं, तौ वही गिरि कौ, जो धर्यौ कर छत्र पुरंदर[3]-धारन।
जो खग हौं, तौ बसेरो करौं, मिलि कालिंदी कूल-कदंब की डारन ॥१॥

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
आठहुँ सिद्धि नवों निधि को सुख, नंद की गाइ चराइ बिसारौं ॥
आँखिन सौं 'रसखानि' कबौं ब्रज के बन-बाग-तड़ाग निहारौं।
कोटिक हौं कलधौत के धाम, करील[4] की कुंजन ऊपर वारौं ॥२॥

१ग्वालों के बीच। २बीच में। ३इन्द्र। ४काँटेदार एक वृक्ष; ब्रज-प्रान्त में यह बहुत अधिकता से होता है।

मोर-पखा सिर ऊपर राखिहौं, गुंज की माल गरें पहिरौंगी।
ओढ़ि पितंबर, लै लकुटी बन, गोधन ग्वारनि संग फिरौंगी॥
भावतो वाहि मेरो रसखानि, सो तेरे कहे सब स्वाँग भरौंगी।
या मुरली मुरलीधर की, अधरान-धरी अधरा न धरौंगी*॥३॥

गावैं गुनी गनिका गंधर्व, औ सारद सेस सबै गुन गावैं।
नाम अनन्त गनन्त गनेस ज्यों, ब्रह्मा त्रिलोचन पार न पावैं॥
जोगी जती तपसी अरु सिद्ध, निरंतर जाहिँ समाधि लगावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ, छछिया[1] भरि छाछ[2] पै नाच नचावैं॥४॥

सेस महेस गनेस दिनेस, सुरेसहुँ जाहि निरंतर गावैं।
जाहि अनादि अनन्त अखंड, अछेद[3] अभेद सुबेद बतावैं॥
नारद-से सुक व्यास रटैं, पचि हारे तऊ[4] पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ, छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं॥५॥

धूरि-भरे अति सोभित स्यामजू, तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।
खेलत-खात फिरैं अँगना, पग पैजनी बाजतीं, पीरी कछौटी[5]॥
वा छवि को 'रसखानि' बिलोकत, वारत काम-कलानिधि[6] कोटी[7]।
काग के भाग कहा कहिए, हरि-हाथ सों लै गयौ माखन रोटी॥६॥

आयो हुतो नियरे[8] 'रसखानि' कहा कहूँ तूँ न गई वह ठैंया[9]।
या ब्रज में सिगरी बनिता, सब वारति प्राननि, लेति बलैया॥
कोऊ न काहू की कानि करै, कछु चेटक[10] सों जू करयौ जदुरैया।
गाइगो तान, जमाइगो[11] नेह, रिझाइगो प्रान चराइगो गैया॥७॥

[1]छोटा-सा बरतन। [2]मट्ठा। [3]जिसका छेदन न हो सके। [4]तो भी। [5]काछनी। [6]चौसठ कलाओं में प्रवीण; चंद्रमा। [7]करोड़। [8]पास। [9]स्थान। [10]जादू-टोना। [11]बीज बो गया।

*तात्पर्य यह कि मैं श्रीकृष्ण का रूप तो धारण कर लूँगी, पर उनकी जूठी मुरली अपने ओठों को न छुवाऊँगी। यह क्यों? क्योंकि वह मेरी सौत है। वह कृष्ण का अधरामृत पहले ही ले चुकी है; भला, उससे मेरी कैसे बनेगी।

सोहत हैं चँदवा[1] सिर मोर के, जैसियै सुंदर पाग कसी है।
तेसियै गोरज भाल विराजति, जैसी हियें वनमाल लसी है॥
'रसखानि' विलोकति बौरी[2] भई, दृग मूँदि कै ग्वारि[3] पुकारि हँसी है।
खोलि री घूँघट, खोलौं कहा, वह मूरति नैननि माँझ बसी है॥८॥
ब्रह्म मैं ढूँढ़्यौ पुराननि गाननि, वेद-रिचा[4] सुनि चौगुनी चायन[5]।
देख्यौ सुन्यौ कबहूँ न कितू[6], वह कैसे सुरूप औ कैसे सुभायन॥
टेरत-हेरत हारि पर्‌यो 'रसखानि', बतायो न लोग-लुगायन।
देख्यौ, दुर्‌यौ वह कुञ्ज-कुटीर मैं, बैठ्यौ पलोटतु[7] राधिका-पायन॥९॥
कानन दै अँगुरी रहिवो, जबहीं मुरली-धुनि मंद बजैहै।
मोहिनीताननि सों 'रसखानि', अटा चढ़ि गोधन[8] गैहै तो गैहै[9]॥
टेरि कहौं सिगरे ब्रजलोगनि, काल्हि कोऊ कितनो समुझैहै।
माई री, वा मुख की मुसुकानि[10], सँभारी न जैहै न जैहै न जैहै॥१०॥
द्रौपदि औ गनिका गज गीध, अजामिल सों कियो सो न निहारो।
गौतम-गेहिनी[11] कैसे तरी, प्रहलाद को कैसे हर्‌यौ दुख भारो॥
काहे को सोच करै 'रसखानि' कहा करिहैं रविनंद[12] विचारो।
कौन की संक[13] परी है जु माखन चाखन हारो है राखनहारो॥११॥
यह देखि धतूरे के पात चबात, औ गात सों धूरि लगावतु हैं।
चहुँ ओर जटा अटकैं, लटकैं सुभ सीस फनी फहरावतु हैं॥
'रसखानि' जोई[14] चितवैं चित दै, तिनके दुख-दुंद भजावतु हैं।

१मोर के चन्द्राकार पंख। २पगली, गूँगी। ३ग्वालिन। ४ऋचा, मंत्र। ५चाव से। ६कहीं भी। ७सहराता है। ८गाएँ ही जिसका धन है, श्रीकृष्ण। ९गावेगा। १०मुसकानि...जैहै—मुसक्यान देखकर मन हाथ न रहेगा। ११अहिल्या। १०सूर्य-पुत्र यम। १२शंका, भय। इसी आशय का रहीम का भी एक दोहा है:

"कहु 'रहीम' का करि सकै, वारी चोर लबार।
जो पति-राखनहार है, माखन-चाखनहार।"

१४जिसको भी।

गजखाल, कपाल[1] की माल विसाल, सो गाल बजावतु[2] आवतु है॥१२॥
वैद की औषधि खाइ कछू, न करै कछु संजम[3] री, सुनि मोसें।
तौ जलपानि कियो 'रसखानि', सजीवनि जानि लियौ सुख तोसें॥
एरी सुधामयी भागीरथी! सब[4] पथ्य-कुपथ्य बनैं तोहि पोसें।
आक धतूर चबात फिरै, विष खात फिरै सिव तोरे भरोसें॥१३॥
बैन वही, उनकौं[5] गुन गाइ, औ कान वही, उन बैन सों सानी।
हाथ वही, उन गात सरै[6], अरु पाइ वही जु वही अनुजानी[7]॥
जान वही, उन प्रान के संग, औ मान वही, जु करै मन-मानी।
त्यों रसखानि,[8] वही रसखानि, जु है रसखानि सों है रसखानी[9]॥१४॥

कवित्त

दूध दुह्यौ, सीरो[10] पर्यौ तातो न जमायौ बीर,
जामन दयौ सो, धर्यौ धर्योई खटायगो।
आन हाथ आन पाइ[11] सबही के तबही तें,
जबही तें 'रसखानि', ताननि सुनायगो॥
ज्यौंही नर त्यौंही नारी तैसीयै तरुनि बारी[12],
कहिये कहा री, सब ब्रज बिललाइगो[13]।
जानिए न आली, यह छोहरा जसोमति कौ,
बाँसुरी बजायगो, कि विष बगरायगो[14]॥१५॥
ग्वालन के संग जैबो, ऐबो औ चरैबो गाय,
हेरि तान गैबो[15] सोचि नैन फरकत हैं।

१नर-मुंड। २शिवजी के आगे गाल बजाना उन्हें प्रसन्न करने का सूचक है। ३संयम, पथ्य। ४सब पथ्य...पोसें—तेरा सेवन करने से कुपथ्य भी पथ्य हो जाता है। ५श्रीकृष्ण का। ६काम में आये। ७उनके पीछे-पीछे जाये। ८कवि का नाम। ९आनंद-राशि। १०ठंडा। ११अपने हाथ-पाव अपने वश के नहीं रहे। १२बच्ची १३बावला-सा हो गया। १४फैला गया। १५गाना।

ह्याँ१ की गज-मोती-माल वारौं गुंज-मालन पै,
कुंज सुधि आये हाय प्रान धरकत हैं ॥
गोवर कौ गारौ२ सुतौ३ मोहि लगै प्यारो, नहिं—
भावैं ये महल जे जटित मरकत४ हैं ।
मंदर५ ते ऊँचे कहा मन्दिर६ हैं द्वारिका के,
ब्रज के खरक७ मेरे हिये खरकत८ हैं ॥१६॥

कहा 'रसखानि' सुख-संपति सुमार९ महँ,
कहा महाजोगी ह्वै लगाये अंग छार१० को ।
कहा साधैं पंचानल,११ कहा सोये बीच जल,
कहा जीति लाये राजसिंधु वारपार को ॥
जप वारवार तप संजम बयार-व्रत१२,
तीरथ हजार अरे बूझत लवार को ।
सोई है गँवार जिहि कीन्हों नहिं प्यार, नहीं,
सेयो दरवार यार नंद के कुमार को ॥१७॥

कंचन के मंदिरन दीठि ठहराति नाहिं,
सदा दीपमाल लाल-मानिक-उजारे१३ सों ।
और प्रभुताई अब कहाँलौं बखानौं,
प्रतिहारिन१४ की भीर भूप टरत न द्वारे सों ॥
गंगा में नहाइ मुक्ताहल हूँ लुटाइ, वेद,
वीस वार गाइ, ध्यान कीजत सकारे सों ।
ऐसे ही भये तौ कहा कीन 'रसखानि' जोपै,
चित्तदै न कीनी प्रीति पीतपटवारे सों ॥१८॥

१यहाँ अर्थात् द्वारका । २घर । ३यह तो । ४नीलम मणि, यहाँ सभी रत्नों से आशय है । ५पर्वत । ६महल । ७बाड़ा, जहाँ गौएँ रहती हैं । ८खटकते हैं; याद दिलाकर जी दुखाते हैं । ९शुमार, गिनती । १०भस्म । ११पंचाग्नि के बीच में बैठकर तप करने से । १२पवन-अहार, प्राणायाम । १३उजेले से । १४द्वारपाल ।

गोरज बिराजै भाल लहलही[1] बनमाल,
आगे गैयाँ पाछें ग्वाल गावैं मृदु तान, री।
तैसी धुनि बाँसुरी की मधुर-मधुर तैसी,
बंक चितवनि मंद-मंद मुसुकान, री॥
कदम बिटप के निकट, तटिनी[2] के तट,
अटा चढ़ि देखु पीतपट-फहरान, री।
रस बरसावै, तन-तपन बुझावै, नैन
प्राननि रिझावै वह आवै रसखान[3], री॥१६॥

आपनो-सो ढोटा हम सबहीं को जानति हैं,
दोऊ प्रानी[4] सबही के काज नित धावहीं।
ते तौ 'रसखानि' सब दूर तैं तमासो देखैं,
तरनि-तनूजा के निकट नहिं आवहीं॥
आन दिन बात अनहितुन सों कहौं कहा,
हितू जे-जे आये तेऊ लोचन-दुरावहीं[5]।
कहा कहौं आली, खाली देत सब ठाली[6] हाय!
मेरे बनमाली कों न काली[7] तें छुड़ावहीं॥२०॥*

प्रेम-वाटिका

दोहा

या छवि पै 'रसखानि' अब, वारौं कोटि मनोज।
जाकी उपमा कविनु नहिं पाई, रहे सु खोज॥१॥
प्रेम-अयनि श्रीराधिका, प्रेमबरन नँद-नन्द।
प्रेम-वाटिका के दोऊ, माली-मालिन द्वंद॥२॥

१हरी-भरी, नवीन २(यमुना) नदी। ३आनंदराशि श्रीकृष्ण। ४नंद और यशोदा। ५आँख छिपाते हैं; जी चुराते हैं। ६धीरज। ७कालिया नाग, जो यमुना में रहता था और जिसे श्रीकृष्ण ने नाथ लिया था।

*वात्सल्यरस का क्या ही उत्तम उदाहरण है।

'प्रेम प्रेम' सब कोउ कहत, प्रेम न जानत कोय।
जो जन जानै प्रेम तो, मरै जगत क्यों रोय ॥३॥
प्रेम अगम, अनुपम, अमित, सागर-सरिस बखान।
जो[1] आवत इहि ढिँग बहुरि, जात नहीं 'रसखान' ॥४॥
प्रेम-वारुनी छानिकै, वरुन भये जलधीस।
प्रेमहि तें विष पान करि, पूजे जात गिरीस ॥५॥
प्रेमरूप-दरपन, अहो ! रचै अजूबो खेल।
यामें अपनो रूप कछु, लखि परिहै अनमोल[2] ॥६॥
कमल तंतु-सो छीन, अरु कठिन खड़्ग की धार।
अति सूधो, टेढ़ो बहुरि, प्रेम-पंथ अनिवार ॥७॥
लोक वेद-मरजाद सब, लाज, काज, संदेह।
देत बहाये प्रेम करि, विधि-निषेध को नेह ॥८॥
सास्त्रन पढ़ि पंडित भये, कै मोलवी कुरान।
जु पै प्रेम जान्यौ नहीं, कहा कियौ रसखान ॥९॥
काम, क्रोध मद, मोह भय, लोभ द्रोह, मात्सर्य।
इन सबही तें प्रेम है परे कहत मुनिवर्य ॥१०॥
बिनु गुन, जोवन, रूप, धन, बिनु स्वारथ हित[3] जानि।
सुद्ध, कामना तें रहित, प्रेम सकल[4] 'रसखानि' ॥११॥
अति सूछम, कोमल अतिहि, अति पतरो, अति दूर।
प्रेम कठिन सब तें सदा, नित इकरस[5] भरपूर ॥१२॥
जग में सब जान्यो परै, अरु सब कहै कहाय।

[1]जो...रसखान—प्रेम-सिंधु के पास जाकर फिर कोई संसार-सागर की ओर नहीं लौटता। गीता में कहा है: 'यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।' [2]प्रेम-राज्य में आते ही अविद्या-जन्य रूप का नाश हो जायगा और अपना दिव्य-स्वरूप दिखने लगेगा। [3]प्रेम। [4]सब प्रकार के सुखों का स्थान। [5]निरंतर एक अवस्था में; त्रिकालाबाधित।

पै जगदीसऽरु प्रेम यह, दोऊ अकथ लखाय ॥१३॥
जेहि विनु जाने कछुहि नहिं, जान्यौ जात विसेस।
सोइ प्रेम जेहि जानिकैं, रहि[1] न जात कछु सेस ॥१४॥
दंपति-सुख अरु विषय-रस, पूजा, निष्ठा, ध्यान।
इन तें परे वखानिए, सुद्ध-प्रेम 'रसखान' ॥१५॥
मित्र, कलत्र[2], सुबंधु, सुत, इनमें सहज सनेह।
सुद्ध प्रेम इनमें नहीं, अकथ कथा सविसेह[3] ॥१६॥
इकअंगी[4], विनु कारनहिं, इकरस, सदा सामान।
गनै प्रियहिं सर्वस्व जो, सोई प्रेम प्रमान ॥१७॥
डरै[5] सदा, चाहै न कछु, सहै सबै जो होय।
रहै एकरस चाहि कैं, प्रेम बखानौ सोय ॥१८॥
'प्रेम-प्रेम' सब कोउ कहै, कठिन प्रेम की फाँस।
प्रान तरफि निकरै नहीं, केवल चलत उसाँस ॥१९॥
प्रेम हरी कौ रूप है, त्यों हरि प्रेम-स्वरूप।
एक होइ द्वै में लसै, ज्यों सूरज अरु धूप ॥२०॥
प्रेम-फाँस में फँसि मरै, सोई जियै सदाहिं।
प्रेम-मरम जाने विना, मरि कोउ जीवत नाहिं ॥२१॥*
जग में सब तें अधिक अति, ममता तनहिं लखाय।
पै या तन हूँ तें अधिक, प्यारो प्रेम कहाय ॥२२॥

१रहि...सेस—सवज्ञता प्राप्त हो जाती है। २स्त्री। ३विशेष, सर्वोच्च। ४जहाँ एक ओर से ही प्रेम हो। दोनों ओर का एक-सा सकाम प्रेम, प्रेम नहीं व्यापार है। ५सदा इस बात से डरता रहे, कि कहीं मेरी सेवा में कोई त्रुटि न आ जाय, जिससे मेरा प्रियतम रुष्ट हो जाय।

*इस दोहे में जन्म और मरण दोनों एक ही वस्तु के दो नाम बतलाये गये हैं। कबीरदासजी के शब्दों में 'मरजीवा।' की यही स्थिति है।

जेहि पाये बैकुण्ठ अरु, हरिहूँ की नहिं चाहि।
सोइ अलौकिक सुद्ध सुभ, सरस सुप्रेम कहाहि ॥२३॥
कोउ याहि फाँसी कहत, कोउ कहत तरवार।
नेजा, भाला, तीर कोउ, कहत अनोखी ढार[1] ॥२४॥
पै ऐतोहूँ हम सुन्यौ, प्रेम अजूबो खेल।
जाँबाजी[2] बाजी जहाँ, दिल कौ दिल सों मेल ॥२५॥
सिर काटौ, छेदौ हियो, टूक-टूक करि देहु।
पै याके बदले विहँसि, वाह-वाह ही लेहु ॥२६॥
याही तें सब मुक्ति तें, लही बड़ाई प्रेम।
प्रेम भये नसि जाहिं सब, बँधे जगत के नेम ॥२७॥*
हरि के सब आधीन पै, हरी प्रेम-आधीन।
याही तें हरि आपुहीं, याहिं बड़प्पन दीन ॥२८॥
वेदमूल सब धर्म यह, कहैं सबै स्रुति-सार।
परम धर्म है ताहु तें, प्रेम एक अनिवार[3] ॥२९॥
जदपि जसोदा-नंद अरु, ग्वालबाल सब धन्य।
पै या जग में प्रेम की, गोपी भईं अनन्य ॥३०॥
वा रस की कछु माधुरी, ऊधौ लही सराहि।
पावै बहुरि मिठास अस, अब दूजो को आहि ॥३१॥
स्रवन, कीरतन, दरसनहिं, जो[4] उपजत सोइ प्रेम।
सुद्धासुद्ध-विभेद तें, द्वै विध ताके नेम ॥३२॥

१ढाल। २प्राणों की बाजी, आत्म-समर्पण। ३अनिवार्य; परमावश्यक। ४आनन्द से तात्पर्य है।

*इस दोहे में मुक्ति से प्रेम का दर्जा ऊँचा बतलाया गया है। गोसाईं तुलसीदास भी कहते हैं; 'सगुन-उपासक मोच्छ न लेहीं।'

स्वारथमूल[1] असुद्ध त्यौं, सुद्ध स्वभावऽनुकूल[2] ।
नारदादि प्रस्तार[3], करि, कियो जाहि कौ तूल ॥३३॥
रसमय[4], स्वाभाविक, विना स्वारथ, अचल, महान ।
सदा एकरस, सुद्ध सोइ, प्रेम अहै रसखान ॥३४॥
जातें उपजतु प्रेम सोई, वीज कहावतु प्रेम ।
जामें उपजतु प्रेम सोइ, क्षेत्र कहावतु प्रेम ॥३५॥
जातें पनपत[5], वढ़त अरु, फूलत फलत महान ।
सो सब प्रेमहिं प्रेम यह, कहत रसिक रसखान ॥३६॥
जो, जातें, जामें, वहुरि, जा हित कहियत बेस ।
सो सब प्रेमहिं प्रेम है, जग 'रसखानि' असेस[6] ॥३७॥
देखि गदर हित साहिवी, दिल्ली नगर मसान ।
छिनहिं वादसा-बंस की, ठसक छोड़ि 'रसखान' ॥३८॥
प्रेम-निकेतन श्रीवनहिं, आइ गोवर्धन-धाम ।
लह्यौ सरन चित चाहिकैं, जुगुलसरूप ललाम ॥३९॥*
अरपी श्री हरि-चरन-जुग, पदुम-पराग निहार ।
विचरहिं यामें रसिकवर, मधुकर-निकर अपार ॥४०॥

१सकाम । २निःस्वार्थ; निष्काम । ३विस्तार । ४आनन्दमय । ५हरा-भरा होता है । ६अशेष, संपूर्ण ।

*इन दोनों दोहों में कवि ने अपना सूक्ष्म परिचय दिया है । इन्होंने सारी प्रभुता को विषवत् तथा राजधानी दिल्ली को स्मशान-समान छोड़ कर बादशाही खानदान का अभिमान क्षण में दूर कर दिया । वहाँ से यह शीघ्र वृन्दावन चले आये । वहाँ गोवर्द्धन धाम में श्रीराधाकृष्ण के शरणापन्न हो गये । यह ऐसे ऊँचे और भक्त-वैष्णव हुए, कि इनकी गणना गोसाईं गोकुलनाथजी को अपनी '२५२ वैष्णवन की वार्ता' में करनी पड़ी । ऐसे महाभाग मुसलमानों के सम्बन्ध में भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने क्या ही अच्छा कहा है :

"इन मुसलमान हरि-जनन पै कोटिन हिन्दू वारिए ।"

ध्रुवदास

छप्पय

राधाकृष्ण-निकुंज- केलि - सुखपुंज - बिलासी ।
प्रेम - रसासव-मत्त मधुप सहृदय गुन रासी ॥
रचि अनेक पद छंद भजन—पद्धति बिस्तारी ।
लीला - अनुभव भक्तनाममाला उरधारी ॥
हित-मंत्र स्वप्न में मानिकैं, व्रत अनन्य कीन्हों अटल ।
श्रीहितहरिबंस-प्रताप की हित ध्रुवदास धुजा धवल ॥

—वियोगी हरि

भक्तवर ध्रुवदासजी के संबंध में, ऐतिहासिक दृष्टि से, विशेष वृत्तांत नहीं मिलता। यह गोस्वामी हितहरिवंशजी के स्वप्न द्वारा शिष्य हुए थे। इनकी गुरु-भक्ति अनुकरणीय है। 'भक्तनामावली' में श्रीहितजी महाराज के विषय में इन्होंने किस श्रद्धा भक्ति से लिखा है :

हितहरिबंसहि कहत 'ध्रुव', बाढ़ै आनन्द-बेलि ।
प्रेम-रंगी उर जगमगै जुगुल नवलवर-केलि ॥
निगम ब्रह्म परसत नहीं, सो रस सब तें दूरि ।
कियौ प्रगट हरिवंसजू, रसिकनि-जीवनमूरि ॥

इन्होंने 'वृन्दावन-सत' को संवत् १६८६ में लिखा था, जैसा कि अंतिम दोहे से प्रकट होता है :

'ध्रुव' सोरहसौ छ्यासिया, पूनौं अगहन मास ।
यह प्रबन्ध पूरन भयौ, सुनत होय अघ-नास ॥

'सभा-मंडली' संवत् १६८१ तथा 'रहस्य-मंजरी' संवत् १६९८ में लिखी। रचना-काल से अनुमान किया जा सकता है कि इनका

जन्म १६५० के लगभग हुआ होगा। इन्होंने अपनी 'भक्तनामावली' में १७२५ तक के भक्तों का वर्णन किया है। इससे इनका गोलोक-वास संवत् १७४० के लगभग माना जा सकता है।

ध्रुवदासजी वृन्दावन में ही अधिक कालतक रहे और वहीं आपने उपर्युक्त ग्रंथ रचे। वृन्दावन पर इनका बड़ा प्रेम था। इन्होंने माधुर्य रस का बड़ा ही सरस और सुन्दर वर्णन किया है। इनकी लिखी 'भक्त-नामावली' स्वर्गीय बाबू राधाकृष्णदासजी ने काशी-नागरी-प्रचारणी-ग्रन्थमाला से प्रकाशित कराई थी। बाद को भारत-जीवन प्रेस के संचालक बाबू रामकृष्ण वर्मा ने इनके कई छोटे-छोटे ग्रंथ 'ध्रुव-सर्वस्व' नाम से प्रकाशित किये। सब मिलाकर अबतक इनके निम्नलिखित ग्रंथ उपलब्ध हुए हैं :

१.वृन्दावन-सत; २. सिंगार-सत; ३. रस-रत्नावली; ४. नेह मंजरी; ५. रहस्य-मंजरी; ६. सुख-मंजरी; ७. रति-मंजरी; ८. बन-विहार; ९.रंग-विहार; १०. रस विहार; ११. आनन्द-दसा-विनोद; १२. रङ्ग-विनोद; १३.नृत्य-विलास; १४.रङ्ग-हुलास; १५.मानरस-लीला; १६.रहसि-लता-१७. प्रेम-लता; १८.प्रेमावली;१९. भजन कुंडलिया; २०. भक्तनामावली; २१. मन-सिंगार; २२. भजन-सत; २३. मन-शिक्षा; २४. प्रीति-चौवनी; २५. रस मुक्तावली; २६. बावन वृहद्पुराण की भाषा; २७. सभा-मंडली; २८ रसानंद-लीला; २९. ख्याल-हुलास-लीला; ३०. सिद्धांत-विचार; ३१. रस-हीरावली; ३२. हित-सिंगार लीला; ३३. ब्रज-लीला; ३४. आनंदलता, ३५. अनुरागलता; ३६. जीव-दशा; ३७. वैद्य-लीला; ३८. दान-लीला; ३९. ब्याहलो; ४०. ब्यालिस बानी।

इनमें २३, २६ और ४० संख्यावाले ग्रन्थ इन ध्रुवदासजी कृत-प्रतीत नहीं होवे।

कई रचनाएँ तो इनकी बड़ी ही उत्तम हैं। प्रेम-तत्व का इन्होंने कहीं-कहीं आदर्श वर्णन किया है। इनकी सरस रचनाओं में से कतिपय पद्य नीचे दिये जाते हैं :—

शृङ्गार-शत

दोहा

हरिवंस-चरन 'ध्रुव' चिंतवन, होत जु हिय हुल्लास।
जो रस दुरलभ सवनि कों, सों पैयतु अनयास ॥१॥

कवित्त

हँसनि में फूलनि की, चाहनि में अमृत की,
नखसिख रूप ही की बरषा-सी होति है।
केसनि की चंद्रिका, सुहाग-अनुराग-घटा,
दामिनी की लसनि, दसन ही की द्योति है॥
'हित ध्रुव', पानिप[1] तरंग रस छलकत,
ताकौ मनों सहज सिंगार-सींव[2] पोति[3] है।
अति अलबेली प्रिया भूपिताभरन विन,
छिन-छिन[4] औरै-और बदन की जोति है ॥२॥

छवि ठाढ़ी कर जोरैं, गुन-कला चौंरैं ढोरैं,
दुति सेवै तन गोरे, रति-बलि जाति है।
उजराई कुञ्ज ऐन, सुथराई[5] रची मैन,
चतुराई चितै नैन अति ही लजाति है॥
राग सुनि रागिनी हूँ, होति अनुराग-बस,
मृदुताई[6] अंगनि छुवति सकुचाति है।
'हित ध्रुव', सुकुमारी, पुतरीन हूँ तें प्यारी,
जीवति देखे निहारी सुख सरसाति है ॥३॥

१समुद्र। २सीमा। ३नौका। ४छिन...जोति है—देखते-देखते ही मुख की आभा बढ़ती जाती है। इसी भाव पर कविवर बिहारी का भी एक दोहा है "लिखनि बैठि जाकी सबी, गहि-गहि गरब गरूर। भये न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर।" ५सुघरता। ६मृदुताई...सकुचाति है—स्वयं कोमलता कोमल शरीर को छूकर लज्जित हो जाती है।

कवित्त

आजु की छबीली छबि-छटा चित बेधि रही,
कही नहिं जाति कछू कौन गति भई है।
नवल जुगुल हँसि चितवति ठाढ़ी पासि,
मानों तिहि उर नई नेह-बेलि बई[1] है॥
'हित ध्रुव', नीरज-से नीर-भरे ढरे[2] नैन,
बोलति न कछु बैन चित्र-सी ह्वै गई है।
नैन छाइ लीने रूप परी तब प्रेम-कूप,
वाकी गति जानै सोई जिहि अनभई[3] है॥४॥

कवित्त

सहज सुभाउ पर्यौ नवल किसोरीजू कौ,
मृदुता[4], दयालुता, कृपालुता की रासि है।
नेकहूँ न रिस कै हूँ भूलेहूँ न होत सखी,
रहत प्रसन्न सदा हियें मुख हासि[5] है॥
ऐसी सुकुमारी, प्यारे लालजू की प्रानप्यारी,
धन्य-धन्य धनि तेई, जिनके उपासि[6] है।
'हित ध्रुव' और सब जहँलगि देखियतु,
सुनियतु तहँलगि सबै दुख-पासि[7] है॥५॥

सवैया

ऐसी करी नवलाल रँगीले जू चित्त न और कहूँ ललचाई।
जे सुख-दुःख रहैं लगि देह[8] सों ते मिटि जाहिं[9] लोक-बड़ाई॥
संगति साधु, वृन्दावन कानन तो गुन-गानिनि माँझ बिहाई।
कंज-पगों में तिहारे बसौं बस देहु यहै 'ध्रुव', कों ध्रुवताई[10]॥६॥

१बोई है। २नम्र। ३अनुभव किया है। ४आर्द्रता; करुणाभाव। ५मुसक्यान। ६उपास्य; इष्ट। ७बंधन। ८शरीर से संबंध रखनेवाले आधिभौतिक दुःख। ९और १०दृढ़ता

नेह-मंजरी

चौपाई

महाप्रेम गति सब तें न्यारी । पिय जानै, कै प्रान-पियारी ॥
उरझे मन सुरझत नहिं केहू[1] । जिहि अँग ढरत होत सुख तेहू ॥
एकै रुचि दुहुँ में सखि बाढ़ी । पर गई प्रेम-ग्रंथि अति गाढ़ी ॥
देखत-देखत कल नहिं माई । तिनकौ प्रेम कह्यो नहिं जाई ॥
सहज सुभाइ अनमनी देखैं । निमिषनि कोटि कलप-सम लेखैं ॥
हँसि चितवति जब प्रीतम माहीं । सोई कलप निमिष ह्वै जाहीं ॥
खेलनि-हँसनि लाल कों भावै । नेह की देवी नितहिं मनावै ॥
कौतुक प्रेम छिनहिं-छिन होई । यह रस विरलो समुझै कोई ॥
ज्यों-ज्यों रूपहिं देखत माई । प्रेम-तृषा की ताप[2] न जाई ॥१॥

दोहा

प्रेम-तृषा की ताप 'ध्रुव', कैसेहुँ कही न जात ।
रूप-नीर छिरकत रहैं, तऊ न नैन अघात ॥२॥

चौपाई

कौन प्रेम तिहि ठाँकौ कहिए । दुहूँ कोद[3] चितवत सखि रहिए ।
नित्य सुप्रेम एकरस-धारा[4] । अति अगाध तिहि नाहिंन पारा ॥
महा मधुर रस प्रेम कौ प्रेमा । पीवत ताहिं भूलि गये नेमा ॥
तैसी सखी रहैं दिन-राती । 'हित ध्रुव' जुगुल-नेह-मदमाती ॥३॥

दोहा

रसनिधि रसिककिसोर विवि, सहचरि परम प्रवीन ।
महाप्रेम-रस-मोद में, रहति निरंतर लीन ॥४॥

चौपाई

प्रेम-कथा कछु कही न जाई । उलटी चाल तहाँ सब माई ।
प्रेम बात सुनि बौरा होई । तहाँ सयान रहै नहिं कोई ॥

---

१ किसी तरह । २ अग्नि । ३ तरफ । ४ निरंतर बहना ।

तन मन प्रान तिहीं छिन हारै। भली-बुरी कछुवै न विचारै॥
ऐसो प्रेम उपजिहै जवहीं। 'हित ध्रुव' वात वनैगी तवहीं॥
ताकौ जतन न दीखै कोई। कुँवरि[1] कृपा तें कहा न होई॥
वृन्दावन-रस सव तें न्यारो। प्रीतम जहाँ अपनपौ हारो।
श्री हरिवंस-चरन उर धरई। तव या रस में मन अनुसरई॥
सो मति कौन कहै या वानी। तिन चरननि-वल कछुक वखानी॥
जुगुल-प्रेम मनहीं में राखौ। अनमिल[2] सों कवहूँ जिन भाखौ॥५॥

दोहा

कहि न सकत रसना कछुक, प्रेम-स्वाद-आनन्द।
को जानै 'ध्रुव' प्रेम-रस, विन वृन्दावन-चंद॥६॥
नारदादि सनकादि ध्रुव, उद्धव अरु ब्रह्मादि।
गोपिन कौ सुख देखि किय[3] भजन आपुनो वादि॥७॥

चौपाई

तिन गोपिन के दुरलभ माई। नित्य विहार सहज सुखदाई॥
सिव श्रीपति जद्यपि ललचाहीं। मन-प्रवेस तिनहूँ कौ नाहीं॥
ऐसे रसिक किसोर विहारी। उज्वल[4] प्रेम विहार-अहारी[5]॥८॥

रहस्य-मञ्जरी

दोहा

अटपट रँग कौ विरह सुनि, भूलि रहे सव कोई।
जल[6] पीवत हैं प्यास को, प्यास भयौ जल सोइ॥१॥

१श्रीराधा। २जिसका मन अपने से न मिले; अनधिकारी। ३किय...बादि अपने-अपने सिद्धांत रद कर दिये। ४निर्विकार, दिव्य। ५भोक्ता। ६जल... सोइ—जिस जल से प्यास बुझाई जाती है, वह जल ही प्यास रूप हो गया है। कविवर बिहारी ने लिखा है: "वहई रोग-निदान, वही वैद, औषध वहै।"

'हित ध्रुव' दुरलभ सबनि[1] तें, नित्यविहार-सरूप।
ललितादिक निज सहचरी, सो सुख लहति अनूप ॥२॥

रति-मञ्जरी

दोहा

प्रेम-रसासव छकि दोऊ, करत विलास-विनोद।
चढ़त रहत, उतरत नहीं, गौर-स्याम-छवि-मोद ॥१॥

चौपाई

मेंड़[3] तोरि रस चल्यौ अपारा। रही न तन-मन कछु संभारा[4]।
सो रस कहौ कहाँ ठहरानो। सखियन के उर-नैन समानो ॥
तिहि अवलंबि[5] सकल सहचरी। मत्त रहति ठाढ़ी रँग-भरी।
या रस की जाकों रुचि रहै। भाग पाइ सो कछुइक लहै ॥
सखियन सरन भाव धरि आवै। सो या रस के स्वादहिं पावै ॥
छाँड़ि कपट भ्रम, दिन दुलरावै[6]। ताकौ भाग कहत नहिं आवै ॥
रतिमंजरि रँग लागै जाके। प्रेम-कमल फूलै हिय ताके ॥
यह रस जाके उर न सुहाई। ताकौ संग बेगि तजि भाई ॥२॥

दोहा

या रस सौं लाग्यो रहै, निसिदिन जाकौ चित्त।
ताकी पद-रज सीस धरि, बंदत रहु 'ध्रुव' चित्त ॥३॥

प्रेम-लता

दोहा

जिन नहिं समुझ्यौ प्रेम यह, तिनसों कौन अलाप[7]।
दादुर हूँ जल में रहैं, जानै मीन-मिलाप[8] ॥१॥

१ज्ञान, कर्म योगादि सब साधनों से । २आनन्दरूपी मद । ३मर्यादा । ४संभाल; सुध-बुध । ५श्रद्धा से पकड़कर । ६भक्ति से प्यार करे । ७बातें । ८जल का प्रेम ।

चौपाई

खान-पान सुख चाहत अपने । तिनकों प्रेम छुवत नहिं सपने ॥
जो या प्रेम-हिंडोरे झूलै । तिनकों और सबै सुख भूलै ॥
प्रेम-रसासव चाख्यौ जबहीं । और रंग चढ़ै 'ध्रुव' तबहीं ॥
या रस में जब मन परै आई । मीन-नीर की गति ह्वै जाई ॥
निसि दिन ताहि न कछू सुहाई । प्रीतम के रस रहै समाई[1] ॥
जाकौ जासों है मन मान्यौ । सो है ताके हाथ बिकान्यौ ॥
अरु ताके अँग-सँग की बातें । प्यारी सब लागति तिहि नातें ॥
रुचै सोइ जो ताकों भावै । ऐसी नेह की रीति कहावै ॥२॥

दोहा

ब्रजदेवी के प्रेम की, बँधी धुजा अति दूरि ।
ब्रह्मादिक वांछत[2] रहैं, तिनके पद की धूरि ॥३॥

चौपाई

वृन्दावनघन राजत कुंजैं । विहरत तहाँ रसिक सुखपुंजैं ॥
एक प्रान, बिवि[3] देह हैं दोऊ । तिन समान प्रेमी नहिं कोऊ ॥
सब पर अधिक जानि यह प्रेमा । ताके बस भे तजि सब नेमा[4] ।४।

दोहा

लाल-लाड़िली[5]-प्रेम तें, सरस सखिन कौ प्रेम ।
अटकी हैं निज प्रीति, रस. परसत तिनहिं न नेम ॥५॥

१मग्न हो जाता है । २चाहते रहते हैं । ३दो । ४नियम इत्यादि । ५श्री-कृष्ण और राधिका ।

*इन चौपाइयों में ध्रुवदास जी ने प्रेम तत्त्व का बड़ा ही सजीव वर्णन किया है ।

भजन-सत

सोरठा

रसिकन के रहु संग, रे मन, आन विचार तजि।
नैननि कौ लै रंग, मिथुन[1]-रूप-रस-रंग करि ॥१॥

दोहा

रे मन, रसिकन संग विनु, रंच[2] न उपजै प्रेम।
या रस कौ साधन यहै, और करहु जिन नेम ॥२॥
दंपति-छवि सों मत्त जे, रहत दिनहिं इक रंग[3]।
हित सों चित चाहत रहौं, निसि-दिन तिनकौ संग ॥३॥
झूलत-झूमत दिन फिरै, घूमत दंपति-रंग[3]।
भाग पाय छिन एक जो, पैहै तिनकौ संग ॥४॥
सेवा अरु तीरथ-भ्रमन; फल[4] तेहि कालहि पाइ।
भक्तन-संग छिन एक में, परमभक्ति उपजाइ ॥५॥
जिनके हिय में बसत हैं, राधावल्लभ लाल।
तिनकी पद-रज लेइ 'ध्रुव', पिवत रहौ सब काल ॥६॥
महा मधुर सुकुँवार दोउ, जिनके उर बस आनि।
तिनहूँ तें तिनकों अधिक, निह्चै कै 'ध्रुव' जानि ॥७॥
जिनके जाने जानिए, जुगुल चंद सुकुमार।
तिनकी पद-रज सीस धरि, 'ध्रुव' के यहै अधार ॥८॥

सोरठा

तृन-सम जब ह्वै जाहिं, प्रभुता सुख त्रैलोक के।
यह आवै मन माहिं, उपजै रंचक[5] प्रेम तब ॥९॥

[1]युगल, श्रीराधा-कृष्ण। [2]जरा-सी भी। [3]एकरस। [4]फल...पाइ—इन सब का फल कुछ काल के पश्चात् मिलता है। यह दोहा श्रीमद्भागवत के इस श्लोक का उल्था जान पड़ता है; 'ते पुनन्त्युरुकालेन, दर्शनादेव साधवः'। [5]थोड़ा-सा।

भक्तन सों अभिमान, प्रभुता भये न कीजिए।
मन बच निहचै[1] जान, इहि सम नहिं अपराध कछु ॥१०॥

दोहा

सकल बयस सतकर्म में, जो पै बितई होइ।
भक्तन को अपराध इक, टारत सब को सोइ ॥११॥
और सकल अघ-मुचन[2] को, नाम उपायहि नीक।
भक्त-द्रोह को जतन नहिं, होत बज्र की लीक[3] ॥१२॥
निंदा भक्तनि की करै, सुनत जौन अपराधि।
वे तो एकै संग दोउ, बँधत भानु-सुत[4] पासि[5] ॥१३॥
भूलिहुँ मन दीजे नहीं, भक्तन निंदा ओर।
होत अधिक अपराध तिहिं, मति जानहु टर थोर ॥१४॥
सेवा[6] करत में भक्तजन, होइ प्राप्त जो आइ।
सो सेवा तजि बेगिहीं, अरचहु तिनको जाइ ॥१५॥
भक्तन देखे अधिक हूँ, आदर कीजे प्रीति।
यह गति जो मन की करै, जाइ सकल जग जीति ॥१६॥
मन अभिमान न कीजिए, भक्तन सों होइ भूलि।
स्वपच आदि हूँ होइँ जो, मिलिए तिन सों फूलि[7] ॥१७॥

कुंडलिया

बहु बीती, थोरी[8] रही, सोई बीती जाइ।
'हित ध्रुव' बेगि बिचारिकैं, बसि वृन्दावन आइ ॥
बसि वृन्दावन आइ, लाज तजिकैं अभिमानहिं।
प्रेमलीन ह्वै दीन, आपको तृन-सम जानहिं ॥
सकल सार को सार, भजन तू करि रस-रीती।
रे मन, सोच बिचार, रही थोरी, बहु बीती ॥१८॥

[1] निश्चय। [2] पापों से छूट जाना। [3] अमिट रेखा। [4] यमराज। [5] फाँसी। [6] भगवत्-सेवा [7] प्रसन्न होकर। [8] थोड़ी ही आयु और बची है।

सोरठा

वृन्दावन रसरीति, रहैं विचारत चित्त 'ध्रुव'।
पुनि जैहै वय वीति, भजिये नवलकिसोर दोउ ॥१६॥

दोहा

दुरलभ मानुष-जनम है, पैयतु केहूँ[1] भाँति।
सोई देखौ कौन विधि, वादि भजन विनु जाति ॥२०॥
विषई जल में मीन-ज्यों, करत कलोल अजान।
नहिं जानत ढिंग काल-वस, रह्यौ ताकि धरि ध्यान ॥२१॥
ज्यों मृग मृगियन-जूथ सँग, फिरत मत्त मन बाँधि[2]।
जानत नाहिन पारधी[3], रह्यौ काल सर साधि ॥२२॥
निसि-वासर मग करतली[4], लिये काल कर वाहि।
कागद सम भइ आयु तव, छिन-छिन कतरत ताहि ॥२३॥
जिहि तन कौं सुर आदि सब, बाँछत हैं दिन आहि।
सो पाये मतिहीन है, वृथा गँवावत ताहि ॥२४॥
रे मन, प्रभुता काल की, करहु जतन है ज्यों न?
तूँ फिरि भजन-कुठार सों, काटत ताही क्यों न ॥२५॥
पुरुष सोइ जो पुरिष[5] सम, छाँड़ि भजे संसार।
वियन[6] भजन दृढ़ गहि रहै, तजि[7] कुटुम्ब परिवार ॥२६॥
सुख में सुमिरे नाहिं जो, राधावल्लभ लाल।
तव कैसें सुख कहि सकत, चलत प्रान तिहिं काल ॥२७॥
हौं तो करि बिनती दियौ, कंचन काँच बताइ।
इनमें जाकौ मन रुचै, सोई लेहु उठाइ ॥२८॥

सोरठा

तव पावै रस-सार, सज्जन यह आवै हिये।

१किसी प्रकार। २मन लगाकर, प्रेम में पड़कर। ३बहेलिया। ४कैंची।
५पुरीष, विष्ठा। ६स्त्री। ७कुटुम्बियों में आसक्ति और ममत्व न लाकर।

बात कहौं विस्तार, भजन-सनेही प्रेम कौ ॥२६॥

दोहा

यह रस तौ अति अमल है, रहै विचारत नित्त ।
कहत-सुनत 'ध्रुव' 'भजन-सत', दृढ़ता ह्वै है चित्त ॥३०॥

भजन कुंडलिया

हंस-सुता[1]-तट विहारवौ, करि वृन्दावन-वास ।
कुञ्ज-केलि मृदु मधुर रस, प्रेम-विलास-उपास[2] ॥
प्रेम-विलास-उपास, रहै इकरस मन माहीं ।
तिहि सुख कों कह कहौं मोरि मति है अस नाहीं ॥
'हित ध्रुव', यह रस अति सरस,रसिकनि कियौ प्रसंस ।
मुक्तनि छाँड़े चुगत नहिं, मानसरोवर हंस ॥१॥
वृन्दाविपिन[3] निमित्त है, तिथि[4] विधि मानै आनि ।
भजन तहाँ कैसे रहै, खोयौ अपनो पानि[5] ॥
खोयौ अपनो पानि, मूढ़ कछु समुझत नाहीं ।
चंद्रमनिहिं लै गुहै काँच के मनियनि माहीं ॥
जमुना-पुलिन-निकुञ्ज घन, अद्भुत है रस कौ सदन ।
खेलत[6] लाड़िली लाल जहँ, ऐसो है वृन्दाविपिन ॥२॥
वारवार तो वनत नहिं, यह संजोग अपूर ।
मानुष-तन वृन्दाविपिन, रसिकनि सँग विविरूप ॥
रसिकनि सँग विविरूप भजन सर्वोपरि आही ।
मनु[7] दै 'ध्रुव' यह रंग[8] लेहु पल-पल अवगाही[9] ॥
जो छिन जात सो फिरत नहिं, करहु उपाय अपार ।
सकल सयानप[10] छाँड़ि भजु, दुर्लभ है यह वार ॥३॥

१सूर्य-कन्या यमुना । २उपास्य, इष्ट । ३वृन्दावन-वास करना गौण है । ४तिथि...आनि—एकादशी आदि तिथियों को जो प्रधान मानता है । ५हाथ । ६खेलते हैं । ७मन लगाकर । ८आनन्द । ९डूबकर । १०चतुराई ।

जीव-दशा

चौपाई

जीव-दसा कछुइक सुनु भाई। हरि-जस-अमरत तजि, विष खाई ॥
छिनभंगुर यह देह न जानी। उलटी[1] समुझि अमर ही मानी ॥
घर-घरनी[2] के रँग यों राच्यौ। छिन-छिन में नट[3] कपि ज्यौं नाच्यौ ॥
वय गै बीति, जाति नहिं जानी। जिमि सावन-सरिता[4] को पानी ॥
माया-सुख में यौं लपटान्यौ। विषय स्वादु ही सरवसु जान्यौ ॥
काल समय जब आनि तुलानो[5]। तन-मन की सुधि तबै भुलानो ॥ १ ॥

भक्त-नामावली

दोहा

श्रीहित—हरिबंस नाम 'ध्रुव' कहत ही, बाढ़ै आनँद बेलि।
प्रेम रँगी उर जगमगै, नवल जुगुल-वर -केलि ॥ १ ॥
निगम ब्रह्म[6] परसत नहीं, सो रस सब तें दूरि।
कियौ प्रगट हरिबंसजू, रसिकनि जीवन-मूरि ॥ २ ॥
स्वामीहरिदास—रसिक अनन्य हरिदासजू, गायो नित्यविहार।
सेवा हू में दूर किय, विधि-निषेध-जंजार[7] ॥ ३ ॥
सघन निकुंजनि रहतदिन, बाढ़्यौ अधिक सनेह।
एक विहारी-हेत लगि, छाँड़ि दिये सुख देह ॥ ४ ॥
रंक छत्रपति[8] काहु की, धरी न मन परवाहि।
रहे भीजि रस प्रेम में, लीन्हें कर करवाहि[9] ॥ ५ ॥*

[1]अविद्यावश कुछ का कुछ मानकर; हेर-फेर में पड़कर। [2]स्त्री। [3]कलंदर का बंदर। [4]बरसाती नदी, जो जरा-सा पानी बरसने पर उमड़कर बह जाती है। [5]आ पहुँचा। [6]वेदों में वर्णन किया हुआ अव्यक्त ब्रह्म। [7]जंजाल। [8]बादशाह। [9]मिट्टी का करवा; टोंटीदार बर्तन।

*यह दोहा नाभाजी के इस पद्य का स्मरण दिलाता है: "निन नृपति द्वार ठाढ़े रहैं, दरसन-आसा जास की। "आसधीर-उद्योतकर, रसिक छाप हरिदास की।"

व्यास—वर किसोर दोऊ लाड़िले, नवल प्रिया नव पीय।
प्रगट देखियतु जगत में, रसिक व्यास के हीय ॥ ६ ॥
कहनी१ करनी करि गयो, एक व्यास इहि२ काल।
लोक-वेद तजिकैं भजे, राधा-वल्लभलाल ॥ ७ ॥
प्रेम-मगन नहिं गन्यौ कछु, बरनाबरन३ बिचार।
सबनि मध्य पायौ४ प्रगट, लै प्रसाद रस-सार ॥ ८ ॥

मीरा—लाज छाँड़ि गिरिधर भजी, करी न कछु कुल-कानि।
सोई मीरा जग विदित, प्रगट भक्ति की खानि ॥ ९॥*
ललिता हूँ५ लई वोलि कैं, तासों होइ६ अति हेत७।
आनँद सों निरखत फिरै, वृन्दावन-रस-खेत ॥ १० ॥
नृत्यति नूपुर बाधिकैं, गावति लै करतार।
विमल होय भक्तनि मिली, तृन सम गनि संसार ॥ ११ ॥
बन्धुनि विष ताकों दियो, करि विचार चित्त आनि।
सो विष फिरि अमरत भयौ,-तब लागे पछतानि ॥ १२ ॥
अजहूँ सोचि-विचारि कें, गहि भक्तनि-पद-ओठ।
हरि कृपालु सब पाछिली, छमिहैं तेरी खोट ॥ १३ ॥

१कहनी...गयो = जिसे पंडित और ज्ञानी केवल कहा करते हैं, वह सब व्यासजी प्रत्यक्ष करके दिखा गये। २कलिकाल। ३ऊँच-नीच। ४खाया। ५यहाँ ललिता से स्वामी हरिदास जी से तात्पर्य है। ६था। ७प्रेम। ८शरण।

*नाभाजी के इस पद्य का स्मरण दिलाता है: "लोक-लाज-कुल-संखला, तजि मीरा गिरिधर भजी।"

आनंदघन

छप्पय

दिल्लीस्वर नृप निमित एक धुरपद नहिं गायो ।
मैं निज प्यारी कहे सभा कों रीझि रिझायो ॥
कुपित होय नृप दिय निकासि वृन्दावन आये ।
परम सुजान 'सुजान' छाप पद कवित बनाये ॥
नादिरसाही ब्रज-रज मिले, किय न नैकु उच्चाट मन ।
हरि-भक्ति-बेलि, सेचन करी, घनआनंद आनंद-घन ॥

—गोस्वामी राधाचरण

रसिक-वर आनन्दघनजी जाति के कायस्थ थे । इनका जन्म संवत् १७४६ के लगभग हुआ था, और यह संवत् १७९६ में, नादिरशाही में, मारे गये । इनका वास्तविक नाम घनानन्द था, पर कविता में यह अपना नाम 'आनन्दघन' लिखते थे । दिल्लीश्वर बादशाह मुहम्मद शाह के यह मीरमुंशी थे । कहते हैं, सुजान नाम की एक वेश्या पर इनका बेहद प्रेम था । यह सदा उसकी आज्ञा पर चला करते थे । एक दिन दरबार में कुछ चुगलखोरों ने बादशाह से कह दिया, कि हुजूर, मीरमुंशी साहब गाते बहुत अच्छा हैं । बादशाह ने इन्हें गाने का हुक्म दिया । बहाना बनाकर इन्होंने हुक्म टाल दिया । लोगों ने बादशाह को और भी चढ़ाया । कहा : "यह हुजूर के कहने से न गायेंगे; अगर इनसे सुजान कहे, तो यह फौरन गाने लगेंगे ।" ऐसा ही किया गया । तब घनानन्दजी, बादशाह की तरफ पीठ और सुजान की तरफ मुँह करके गाने लगे । ऐसी समा बाँध दी, कि सारा दरबार मुग्ध होगया । बादशाह गाने पर तो बहुत खुश हुए, पर इनकी पीठ दिखाने की बेअदबी को बरदाश्त न कर सके । नाराज हो इन्हें शहर से बाहर निकाल दिया ।

चलते समय इन्होंने सुजान से अपने साथ चलने को कहा। उसने साफ इन्कार कर दिया। सुजान के विरह से पीड़ित मीरमुंशी साहब सीधे वृन्दावन चले गये। सुजान के प्रति वैराग्य और प्रभु के प्रति अनुराग उत्पन्न हो गया। किंतु 'सुजान' नाम इन्हें इतना प्यारा था, कि उसे ये आजीवन न भुला सके। वेश्या के बदले अब श्रीकृष्ण के लिए यह 'सुजान' शब्द का प्रयोग करने लगे। वृन्दावन में यह निंबार्क संप्रदाय में दीक्षित हो गये। वृन्दावन धाम की लगन इनकी इस रचना से कैसी सुदृढ़ जान पड़ती है :

गुरनि बतायो, राधा-मोहन हू गायो सदा,
सुखद सुहायो वृन्दावन गाढ़े गहि रे।
अद्भुत अभूत महि-मंडन परे तें परे,
जीवत को लाहु, हा हा, क्यों न ताहि लहि रे॥
आनंद को घन छायो रहत निरंतर हीं,
सरस सुदेह सों पपीहा-पन बहि रे।
जमुना के तीर केलि कोलाहल-भीर, ऐसी
पावन पुलिन पै पतित, परि रहि रे॥

संवत् १७९६ में नादिरशाही के समय मथुरा में कुछ बदमाशों ने नादिरशाह के सिपाहियों से कह दिया : "वृन्दावन में फकीर के भेष में बादशाह का मीरमुंशी रहता है, उसके पास बड़े-बड़े कीमती जवाहरात हैं; उसे जाकर आप लोग क्यों नहीं लूटते?" सिपाहियों ने फक्कड़ आनन्दघन को जाकर घेर लिया। उन्होंने इनसे कहा—"ज़र ज़र ज़र" अर्थात् धन, धन, धन!

आनन्दघनजी ने जर को पलट कर तीन मुट्ठी 'रज' उन पर फेंक दी उनके पास सिवा व्रज-रज के और था ही क्या? मजाक समझकर जालिम सिपाहियों ने उनका एक हाथ काट डाला। तंग करने पर भी जब कुछ हाथ न आया, तब वहाँ से चल दिये। आनन्दघनजी ने अपने तकिये पर, अपने खून से मरते समय जो कवित्त लिखा था, वह यह है :

बहुत दिनानि की अवधि आसपास परे,
खरे अरबरनि भरे हैं उठि जान कों।
कहि-कहि आवत छबीले मनभावन कों,
गहि-गहि राखति ही, दै-दै सनमान कों॥
झूठी बतियान की पत्यानि तें उदास ह्वै कैं,
अब ना घिरत 'घनआनंद' निदान कों।
अधर लगे हैं आनि करिकैं पयान प्रान,
चाहत चलन ये संदेसों लै सुजान कों॥

आनन्दघनजी ने 'कृपाकन्द-निबन्ध', 'रसकेलि-बल्ली', 'सुजान-सागर और 'बानी' नाम के ग्रन्थ रचे। बानी में श्रीराधाकृष्ण के विहार और अष्टयाम संबन्धी पदों का संग्रह है। बानी के पद्य इनकी अन्य रचनाओं से कुछ शिथिल हैं। यह सवैया छंद लिखने में जितने सफल हुए उतने और छंदों में नहीं। वियोग-शृङ्गार लिखने में तो इन्होंने कलम ही तोड़ दी है। विरह के लिखने में अपने ढङ्ग के यह एक ही कवि थे, इसमें तनिक भी अत्युक्ति नहीं। शुद्ध ब्रजभाषा लिखने में यह अद्वितीय थे। इतनी शुद्ध भाषा तो किसी भी कवि की देखने में नहीं आई। भारतेंदु हरिश्चंद्र इनकी कविता को बहुत पसंद करते थे। बाबू हरिश्चंद्र कभी-कभी इनका अनुकरण करके सवैया लिखा करते थे। 'शिवसिंहसरोज' में 'इनकी कविता सूर्य के समान भासमान है' लिखा है। इनकी कविता के परिचय में निम्न-लिखित सवैये प्रसिद्ध हैं :—

नेही महा, ब्रजभाषा-प्रवीन, और सुन्दरताइ के भेद कों जानै।
जोग वियोग की रीति में कोविद, भावना-भेद, स्वरूप कों ठानै॥
चाह के रंग में भींज्यौ हियो, बिछुरे मिले प्रीतम सांति न मानै।
भाषा-प्रवीन, सुछंद सदा रहै, सो घनजू के कवित्त बखानै॥१॥
प्रेम सदा अति ऊँचो लहै, सु कहै इहि भाँति की बात छकी।
सुनिकैं सबके मन लालच दौरै, पै बौरे लखैं सब बुद्धि चकी॥
जग की कविताई के धोखे रहैं, ह्याँ प्रवीननि की मति जाति जकी।

समुझै कविता घन आनँद की, हिय आँखिन नेह की पीर तकी ॥२॥

बाबू अमीरसिंहजी ने अपने हरिप्रकाश प्रेस, सं. स्वर्गीय जगन्नाथ-दासजी 'रत्नाकर' की सहायता से, 'सुजान-सागर' नाम का ४८२ छंदों का एक संग्रह प्रकाशित किया था। रत्नाकरजी आनन्दघनजी की कविता पर अत्यन्त मुग्ध थे। उनका विचार था, कि एक सर्वांग सुंदर संग्रह घनानन्द का प्रकाशित किया जाय। हर्ष की बात है कि इधर आनन्द-घन पर दो अच्छे ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं—एक तो शंभु प्रसाद बहुगुना संपादित "घन-आनन्द" और दूसरा पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का "घनानन्द-कवित्त" काशी नागरी प्रचारिणी से, संवत् १९६९ में श्री काशीप्रसादजी जायसवाल द्वारा संपादित इनकी 'विरह-लीला' प्रका-शित हुई थी। आनन्दघनजी की जीवनी के सम्बन्ध में से किसी भी पुस्तक में कोई संतोषजनक वृत्त नहीं लिखा गया। हमें इनका यह थोड़ा-सा वृत्तांत, जो ऊपर लिखा गया है, श्रद्धेय पण्डित राधाचरण गोस्वामी द्वारा प्राप्त हुआ था।

सवैया

सुजान-सागर

जा[१] हित मात कौ नाम जसोदा[२], सुबंसकौ चन्द्रकला-कुलधारी।
सोभा-समूहमयी 'घनआनँद', मूरति रंग अनंग जिवारी।
जान[३] महा, सहजै रिझवार, उदार-विलास, सु रासविहारी।
मेरो मनोरथ हूँ पुरवौ[४] तुम हीं मो मनोरथ—पूरनकारी ॥१॥
मेरोई जीव जो मारत मोहिंतौ, प्यारे, कहा तुमसों कहनो है।
आँखिनहूँ यहि बानि[५] तजी, कछु ऐसोई भोगनि कौ लहनौ[६] है ॥
आस तिहारियै ही 'घनआनँद', कैसैं उदास[७] भये रहनौ है।

१जा...जसोदा—जिन श्रीकृष्ण के कारण से नंद की रानी का नाम यशोदा अर्थात् कीर्ति फैलानेवाली हुआ। २श्रीकृष्ण की मानी हुई माता। 'जसोदा' का अर्थ है यश देने वाली। ३प्यारा ४पूरा करो। ५स्वभाव। ६पाना। ७निरपेक्ष।

जानिकैं होत इते पै अजान[१] जो, तौ बिन पावक ही दहनौ है ॥२॥
इन बाट परी सुधि रावरे भूलनि, कैसैं उराहनौ दीजिए जू ॥
इक आस तिहारी सों जीजै[२] सदा, घन-चातक की गति लीजिए जू ॥
अब तौ सब सीस चढ़ाय लई, जु कछू मन भाई सु कीजिए जू ।
'घनआनंद', जीवन-प्रान सुजान, तिहारियै बातनि जीजिए[३] जू ॥३॥
जिन[४] आँखिन रूप चिन्हारि भई, तिनकों नित ही दहि[५] जागनि[६] है ।
हित-पीर सों पूरित जो हियरो, फिर ताहि कहाँ, कहु, लागनि[७] है ?
'घनआनंद', प्यारे सुजान सुनौ, जियराहिं सदा दुख-दागनि है ।
सुख में मुखचंद बिना निरखे, नख तें सिख लौं बिख पागनि है ॥४॥
जीव की बात जनाइए क्योंकरि, जान कहाय अजाननि आगौ[८]
तीरनि मारिकैं पीर न पावत, एक-सो मानत रोइबौ-रागौ[९] ॥
ऐसी बनी 'घनआनंद' आनि जू, आनन सूझत सो किन त्यागौ ।
प्रान मरैंगे, भरैंगे बिथा, पै अमोही[१०] सों काहू को मोह न लागौ ॥५॥
जिनकों नित नीके[११] निहारति हीं, तिनकों अँखियाँ अब रोवति हैं ।
पल पाँवड़े पाइनि[१२] चाइनि[१३] सों, अँसुवानि की धारनि धोवति हैं ॥
'घनआनंद' जान सजीवनि कों, सपने बिन पायेइ[१४] खोवति हैं ।
न खुली-मुँदी जानि परैं, दुख ये, कछु होद जगें, पर सोवति हैं ॥६॥
मो बिन जो तुम्हैं और रुचौ तौ रुचै, न तुम्हैं बिन मोहि, जियौ[१५] जू ।
सूल भयौ गुन यौं जिहि अंग कौ, दीप सों बारि[१६] बियोग दियौ जू ॥
काह कहौं 'घनआनँद' प्यारे, इतौ हठ कौन पै आपु लियौ जू ।
हाय ! सुजान सनेही कहाइ क्यौं, मोह[१७] जनाइकैं द्रोह कियौ जू ॥७॥

पर काजहिं देह कौं धारें फिरौ, 'परजन्य'[1] जथारथ[2] ह्वै दरसौ।
निधि-नीर सुधा के समान करौ, सबही विधि सज्जनता सरसौ॥
'घनआनंद' जीवन-दायक हौ, कछू मेरियौ पीर हियें परसौ[3]।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन, मो अँसुवानि कौं लै बरसौ॥८॥

धुनि पूरि रहै नित काननि मैं, ब्रज कौं उपराजिबोई[4] सी करै॥
मनमोहन गोहन जोहन कै, अभिलाष समाजिबोई-सी करै॥
'घनआनँद' तीखियै[5] ताननि सौं सर[6]-से सुर साजिबोई-सी करै।
कित तें यह बैरिनि बाँसुरिया, बिन बाजेई बाजिबोई-सी करै॥९॥

पहिलें अपनाय सुजान सनेह सौं, क्यौं फिरि नेह कौं तोरिए जू।
निरधार अधार दै धार मँझार, दई गहि बाँह न बोरिए जू॥
'घनआनँद' आपके चातक कौं गुन बाँधिकै मोह न छोरिये जू।
रस प्याय कै ज्याय[7] बढ़ाय कै आस, बिसास मैं यौं विष घोरिए जू॥१०॥

कबित्त

एरे बीर पौन, तेरो सबै ओर गौन,[8] बारी,[9]
तोसों और कौन मनौं ढरकौंहीं बानि दै।
जगत के प्रान ओछे-बड़े तो समान,
'घनआनँद' निधान सुखदानि दुखियानि दै॥
जान[10] उजियारे गुनभारे अंत मोहि प्यारे,
अब ह्वै अमोही[11] बैठे पीठि पहिचानि दै।
बिरह-बिथा की मूरि आँखिन मैं राखौं पूरि,
धूरि तिन पायन की हा हा नेकु आनि दै॥११॥
राति-द्यौस कटक[12] सजेही रहै, दहै दुख,
कहा कहौं, गति या बियोग बजमारे की।

१मेघ; दूसरे के लिए। २यथा नाम तथा गुणः। ३जानो। ४उत्पन्न करना। ५तीक्ष्ण ही, ऊँचा स्वर। ६शर, बाण। ७जिलाकर। ८गति, प्रवेश। ९बलिहारी। १०प्यारे। ११निर्मोही, निर्दय। १२सेना।

लियौ घेरि औचक[1] अकेलौ कै बिचारौ जीव,
कछू न बसाति[2] यौ उपाव बलहारे[3] की ॥
जान प्यारे, लागौ न गुहार[4] तौ जुहारि करि,
जूझिकै निकरि टेक गहै पनधारे[5] की।
हेत-खेत[6] धूरि चूर-चूर ह्वै मिलैगी तब,
चलैगी कहानी 'घनआनँद' तिहारे की ॥१२॥

इंदीवर-दलनि मिलाइ सौनजुही[7] गुही,
सुही[8] माल हाल रूप गुन न परै गनै।
पीरी ये पिछौरी[9] छोर सीन पै उलटि राखै,
केसर बिचित्र अंग रंग भाव सौं सनै ॥
मुरली मैं गौरी[10] धुनि टेरी 'घनआनँद' हू,
तेरे द्वार टहकौन ऊधम घने ठनै।
हा हा, हे सुजान! आजु दीजै प्रान-दान नैकु,
आवत गुपाल देखि लीजै बन तैं बनै[11] ॥१३॥

रसिक रँगीले, भली भाँतिन छबीले,
'घनआनँद' रसीले भरे महासुखसार हैं।
कृपा-घन-धाम[12] स्यामसुंदर सुजान, मोद—
मूरति सनेही बिना बूझै रिझवार[13] हैं ॥
चाह-आलबाल[14] औ उमाह[15] के कलपतरु,
कीरति-मयंक, प्रेम-सागर अपार हैं।
नित हित[16] संगी, मनमोहन त्रिभंगी मेरे,
प्राननि-अधार नंदनंदन उदार[17] हैं ॥१४॥

आँखिन को जो सुख निहारें जमुना के तीर,
सो सुख बखाने न बनत बैनिनई है ।
गौर-स्याम-रूप-आदरस है दरस लागै,
गुपुत-प्रगट भावना लखैनिनई है ॥
दृग कूल सरस सलाका[1] दीठि परत ही,
अंजन सिंगारकन अबरोगिबेई है ।
आनँद के घन माधुरी[2] की झर[3] लागि रहै,
तरल[4] तरंगिनि की गति लेखिबेई[5] है ॥१५॥

सवैया

आपुहि तें मन हेरि हँसे, तिरछे करि नैननि नेह के चाव में ।
हाय दई ! सु बिसारि दई सुधि, कैसी करौं, सो कहौ, कित[6] जाव में ॥
मीत सुजान अनीति कहा, यह ऐसी न चाहिए प्रीति के भाव में ।
मोहनि मूरति देखिबे कौं, तरसावत हौ बसि एक ही गाँव में ॥१६॥
दृग फेरिए ना अनबोलिए सौं, सर-से[7] हूँ लगे कन जीजिए जू ।
रसनायक,[8] दायक हौ रस के, सुखदाई ह्वै दुःख न दीजिए जू ॥
'घनआनँद' प्यारे सुजान ! सुनौ, बिनती मन मानिकै लीजिए जू ।
बसिकै इक गाँव में एहो दई ! चित ऐसो कठोर न कीजिए जू ॥१७॥

दंडक

सदा कृपानिधान हौ, कहा कहौं सुजान हौ,
अमानि मान-दानि हौ, समान[9] काहि दीजिए ।
रसालसिंधु प्रीति के, खरे-खरे[10] प्रतीति के,
निकेत नीति-रीति के सुहाइ देखि जीजिए ॥
ठगी[11] लगी तिहारियै, सुआप त्यौं निहारिए,

१सींक, लकीर । २शोभा । ३झड़ी, वर्षा । ४चंचल । ५देखने ही योग्य है । ६मैं कहाँ जाऊँ । ७शर अर्थात् बाण के समान । ८आनंद-स्वरूप, रसमूर्ति ९समता, उपमा । १०शुद्ध । ११मोहिनी ।

समीप ह्वै विहारिए[1], उमंग रंग भीजिए।
पयोद-मोद[2] छाइए, विनोद कों बढ़ाइए,
विलंब छाँड़ि आइए, किधौं बुलाइ लीजिए[3] ॥१८॥

दोहा

सुख सुदेस को राज लहि, भये अमर अवनीस।
कृपा कृपानिधि की सदा, छत्र[4] हमारे सीस ॥१९॥
मो-से अनपहिचानि कों, पहिचानै हरि कौन ?
कृपा कान मधि नैन ज्यों, त्यों पुकारि मधि मौन॥॥२०॥
हरि तुम सों पहिचानि को, मोहि लगाव[5] न लेस।
इहि उमग फूल्यो[6] रहौं, बसौं कृपा के देस ॥२१॥

विरह लीला*

सलोने स्याम प्यारे क्यों न आवो ? दरस प्यासी मरैं तिनकों जिवावो ?
कहाँ हौ जू, कहाँ हौ जू, कहाँ हौ ? लगे ये प्रान तुमसों हैं, जहाँ हौ ॥
रहौ किन प्रानप्यारे, नैन आगे। तिहारे कारने दिन-रात जागे।
सजन[7] हित मानिकैं ऐसी न कीजै। भई हैं बावरी सुधि आय लीजै ॥
कहौं तव प्यार सों सुखदैन बातैं। करौ अब दूर ये दुखदैन घातैं।
दुरे हौ जू, दुरे हौ जू, दुरे[8] हौ। अकेली के हमैं ऐसे दुरे[9] हौ ॥२२॥
लिखें कैसे पियारे, प्रेम-पाती ? लगै अँसुवन भरी वैहूक[10] छाती ॥
पर्यौ है आनिकैं ऐसो अँदेसो। जरावै जीव अरु कानन सँदेसो ॥

दसा है अटपटी पिय, आय देखौ। न देखौ, तौ परेखौ[1] ही परेखौ ॥
अनोखी पीर प्यारे कौन पावै ? पुकारैं मौन में कहिबे न आवै ॥२३॥
तिहारे मिलन की आसा न छूटै। लग्यौ मन बावरौ[2] तोरे न टूटै ॥
अजौं धुन बाँसुरी की कान गोलै। छबीलौ छैल ढोलन संग डोलै ॥
सलौनी स्याम मूरति फिरै आगे। कटाछैं बान-सी उर आन लागे ॥
मुकुट की लटक हिय में आय हालै[3]। चितौनी बंक जिय में आय सालै[4]
हँसन में दसन दुति की होत कौंधैं[5]। वियोगी नैन चेटक[6] आय चौंधैं ॥
बहै तब नैन तें अँसुवान-धारा। चलावै सीसपै बिरहा जु आरा ॥
इते पै जो न पाऊँ पीर, प्यारे! रहैं क्यों प्रान ये बिरही बिचारे ॥
जरावै नीर, तो फिर को सिरावै ? अमी[7] मारे कहौ जू, को जिवावै ?
जु चंदा तें झरैं देया[8] अँगारे। चकोरन की कहौ गति कौन प्यारे॥२४॥
तिहारे नाम पर हम प्रान वारे[9]। जहाँ हौ जू, तहाँ रहिए, दुलारे ॥
तुम्हैं निसि-द्यौस मनभावन[10] असीसैं। सजीवन हौ, करो हमपै कसीसैं[11]
लगी जिन लाड़िले कों पौन[12] तातो[13]। सुहाई है हमें तुमसों सुहाती ॥
सुरत कीजे, बिसारें क्यों गनैंगी। बिरहिनी यों अवधि[14] कल लौं गिनैंगी ॥२५॥
कियें[15] की लाज है ब्रजनाथ प्यारे। बिराजौ सीस पै जस के उज्यारे[16]॥
सदा सुख हैं हमें तुम आप आछे। लगी तोसें छबीले, छोर पाछे ॥
तुम्हें देखें, तुम्हें भेटें भले हीं। जगें सोवैं, उठैं बैठें, चलें हीं ॥२६

१परखना। २प्रेमोन्मत्त। ३हिलता रहे, झूल रहे। ४चुभती रहे। ५चमक। ६जादू। ७अमृत। ८हे देव। ९न्योछावर कर दिये। १०मनमोहन, प्रान-प्यारे। ११निर्दयता। १२हवा। १३ गरम। १४मिलने की घड़ी। १५प्रेम करने की। १६प्रकाश-रूप।

नागरीदास

छप्पय

वल्लभ पथहिं दृढ़ाइ, कृष्णगढ़ राजहिं छोड़्यौ ॥
धन जन मान कुटुम्बहिं बाधक लखि मुख मोड़्यौ ॥
केवल अनुभव-सिद्ध, युगल रस-चरित बखाने।
हिय सँजोग-उच्छलित, और सपनेहुँ नहिं जाने ॥
करि कुटी रमनरेती बसत, संपति-भक्ति-कुबेर भे।
हरि-प्रेम-माल-रस-जाल के नागरिदास सुमेर भे ॥

—भारतेंदु हरिश्चंद्र

नागरीदास नाम के चार-पाँच भक्त-कवि ब्रज में हो गये हैं। सबसे पहले नागरीदास नाम के एक भक्त श्रीवल्लभाचार्य के शिष्य आगरे के निवासी थे। इनकी कथा 'चौरासी वैष्णवों' की वार्ता में आई है। दूसरे नागरीदास स्वामी हरिदास की शिष्य परम्परा में हुये हैं। यह बिहारीदासजी के कृपापात्र शिष्य थे। तीसरे नागरीदास गोस्वामी हितहरिवंश के संप्रदाय में, तथा चौथे श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु के संप्रदाय में हुए हैं। ध्रुवदासजी ने अपनी 'भक्तनामावली' में इनका उल्लेख किया है। भारतेंदुजी ने भी इनके संबन्ध में लिखा है :

श्रीवृन्दावन के सूर-ससि, उभय नागरीदास जन।

प्रस्तुत पाँचवें नागरीदास कृष्णगढ़ाधीश महाराज सावंतसिंहजी हैं जो वल्लभकुल के शिष्य थे। इनका जन्म पौष कृष्ण १२, संवत् १७५६ में हुआ था। 'शिवसिंहसरोज' में इनका जन्म संवत् १६४८ लिखा है। यह अशुद्ध है। आश्चर्य है कि, हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर ग्रियर्सन ने भी 'सरोज' पर विश्वास कर बिना इनका कविता-काल देखे ही, इनका जन्म संवत् १६४७ मान लिया। पंडित मोहनलाल विष्णुलाल

पंड्या ने अपने लेख 'एंटिक्वटी आफ् दि पोएट नागरीदास' में इनका जन्म-संवत बहुत युक्ति-पूर्ण लिखा है।

इनके पिता का नाम महराजा राजसिंह था महाराजा सावंतसिंह बचपन से ही शूरवीर थे। तेरह वर्ष की अवस्था में इन्होंने अकेले ही बूँदी के हाड़ा जैतसिंह को मारा था उस समय राजधानी रूपनगर थी। महाराज सावंतसिंह का विवाह संवत १७७७ में भावनगर के राजा यशवंतसिंह की कन्या से हुआ। इनके चार संतति हुई, दो पुत्र और दो कन्याएँ।

संवत १८०४ में यह दिल्ली के दरबार में गये थे। पिता के स्वर्ग-वास के बाद बादशाह अहमदशाह ने इन्हे कृष्णगढ़ का राजा बनाया। कृष्णगढ़ पहुँचने से पहले ही इनके भाई बहादुरसिंह राज्य पर अधिकार कर बैठे थे। इन्होंने बादशाह की सहायता से बहादुरसिंह को परास्त करना चाहा, किन्तु उधर जोधपुर-नरेश का हाथ था! जीत हो तो कैसे? बेचारे मन-मारे ब्रज की ओर चले गये। वहाँ मरहठों से संधि कर ली और उनकी सहायता द्वारा बहादुरसिंह को परास्त कर अपने राज्य पर अधिकार कर लिया। इस घरेलू लड़ाई-झगड़े से इनका चित्त ऐसा ऊब गया कि इन्हें राज्य एक भार-सा प्रतीत होने लगा। लिखते हैं :

जहाँ कलह तहँ सुख नहीं, कलह सुखन कौ सूल।
सबै कलह इक राज में, राज कलह कौ मूल॥
कहा भयौ नृपहूँ भये, ढोवत जग-बेगार।
लेत न सुख हरि-भक्ति कौ, सकल सुखन कौ सार॥
मैं अपने मन-मूढ़ तें, डरत रहत हौं हाय।
वृंदावन की ओर तें, मति कबहूँ फिरि जाय॥

ब्रज-वास के लिए आपकी कैसी उत्कट उत्कंठा थी :

ब्रज में ह्वै-ह्वै, कढ़त दिन, किते दिये लै खोय।
'अबकै-अबकै' कहत ही, वह 'अबकै' कब होय॥

वह 'अब' अब आ गया। तीर्थाटन करते हुए आपकी विरक्ति बहुत

बढ़ गयी। जहाँ तहाँ व्रज ही व्रज भासने लगा। राज-काज से जी एकदम ऊब गया। सब छोड़-छाड़कर वृन्दावन चले आये। भगवद्भक्ति का बीज तो पहले से ही था, उर्वरा भूमि पाते ही वह अंकुरित, प्रफुल्लित और परिफलित हो उठा। वृन्दावन में जाने का स्वयं नागरीदासजी ने निम्न-लिखित छंदों में क्या ही हृदय-स्पर्शी वर्णन किया है :

सुनि ब्यौहारिक नाम मो, ठाढ़े दूरि उदास।
दौरिमिले भरि नैन सुनि, नाम 'नागरीदास' ॥

अर्थात जब साधु-संतों ने सुना कि कृष्णगढ़ाधीश महाराजा सावंत सिंह जी आये हैं, तब वे उदासीन भाव से अलग खड़े हो गये, किंतु जब यह जाना कि यह तो नागरीदासजी हैं तब सब लोग दौड़-दौड़ कर इनसे प्रेम पूर्वक मिलने लगे :

इक मिलत भुजनि भरि दौरि-दौरि। इक टेरि बुलावत औरि-औरि ॥
कोउ चले जात सहजैं सुभाय। पद गाय उठत भोगहिं सुनाय ॥
जे परे धूरि मधि मत्तचित्त। तेउ दौरि मिलत तजि रीति नित्त।
अतिसय विरक्त जिनके सुभाव। जे गनत न राजा रङ्क राव ॥
ते सिमिटि-सिमिटि फिरि आय आय। फिरि छौंड़त पद पढ़वाय गाय ॥

जहाँ इन पर और इनकी कविता पर लोग इतने मुग्ध थे, भला उस व्रज-मंडल को यह क्यों छोड़ने चले! सर्वस्व छोड़ दिया, पर व्रज-रज न छोड़ी :

सर्वस के सिर धूरि दै, सर्वस कै व्रज-धूरि।

वृन्दावन और वृन्दावन-विहारी पर आप कैसे आसक्त थे वह नीचे की घटना से भली भाँति प्रकट हो जाता है। एक बार आप वृन्दावन के उस पार रात के समय पहुँचे; कोई नाव नहीं मिली। जावें तो कैसे? वृन्दावन का क्षण-वियोग भी न सहा गया। सब के समझाने-बुझाने पर भी यमुना में कूद पड़े और तैर कर उसी समय अपने प्यारे श्रीवृन्दावन बिहारी के समीप पहुँच गये। आप के ही शब्दों में :

देखौ श्रीवृन्दाविपिन पार। बिच बहति महा गंभीर धार।

नहिं नाव, नाहिं कछु और दाव। हे दई! कहा कीजै उपाव।
रहे वार लगनि को लगै लाज। गये पारहि पूरे सकल काज॥
प्रेम-पंथ कों पीठि दै, यह जीवौ न सुहाय।
मंगल दिन है आजु कौ, प्रिय-सनमुख जिय जाय॥
यह चित्त माहिं करिकैं विचार। परे कूदि-कूदि जल मध्य धार॥
वार रहे, रहे वार ते, पार भये, भये पार।
दरसे वृन्दाविपिन विच, राधा - नंद - कुमार॥

श्रीराधारमणजी को अपना दर्शन देने में अब संदेह ही क्या! आप ब्रज में रहकर कैसे संतुष्ट और सुखी हो गये, यह बात आपके इस पद से प्रकट होती है :

हमारी सबही बात सुधारी।
कृपा करी श्री कुंज-बिहारिनि अरु श्री कुंज-बिहारी॥
राख्यौ अपने वृन्दावन में जिहिकौ रूप-उज्यारी।
नित्य केलि आनंद अखण्डित रसिक संग सुखकारी॥
कलह कलेस न व्यापै इहि ठौर विस्व तें न्यारी।
'नागरिदासहिं' जनम जिवायौ बलिहारी-बलिहारी॥

सफलजीवन भक्ताग्रगण्य महाराज नागरीदास ब्रजवास करते हुये भाद्र शुक्ला २ संवत् १८२१ को ६५ वर्ष ८ महीने की अवस्था में गोलोकवासी हुए।

महात्मा नागरीदास का कविता-काल सं० १७८० से सं० १८१९ तक माना जाता है। इस ४० वर्ष के समय में इन्होंने सहस्रों पद लिख डाले। साहित्य की रसवंती जाह्नवी बहा दी। सुप्रख्यात प्रेमी कवि आनन्द-घनजी आप के गहरे मित्र थे। कविता में आप अपना नाम नागरीदास नागरी, नागर और नागरिया रखते थे। आपकी उपपत्नी बनीठनीजी भी रसिकविहारी छाप देकर पद बनाया करती थीं। बनीठनीजी महाराजा के साथ अंत तक ब्रज में ही रहीं।

नागरीदासजी वल्लभकुल के गोस्वामी रणछोड़जी के शिष्य थे।

रणछोड़जी श्रीवल्लभाचार्य की पाँचवीं पीढ़ी में आते हैं। श्री आचार्य-जी के पुत्र श्रीगोसाईं विट्ठलनाथजी, तिनके श्री गिरिधरजी टीकैत, तिनके श्रीगोपीनाथजी और तिनके श्रीरणछोड़जी थे। यह गद्दी कोटा की है। नागरीदासजी के सेव्य ठाकुर श्रीकल्याणरायजी थे, पर बाहर साथ में श्रीनृत्यगोपालजी का स्वरूप रखते थे। आज भी कृष्णगढ़ में श्रीकल्याण-राय और श्रीनृत्यगोपाल के विग्रह विराजमान हैं। नागरीदासजी का भक्ति-भाव आज भी वहाँ कुछ-कुछ झलकता है।

नागरीदासजी ने छोटे-बड़े सब मिलाकर ७५ ग्रंथ रचे, जिनमें दो नहीं मिलते, शेष ७३ का संग्रह ज्ञानसागर यंत्रालय के अध्यक्ष श्रीधर शिवलालजी ने 'नागर-समुच्चय' के नाम से प्रकाशित किया है। इसके तीन भाग कर दिये गये हैं—'वैराग्य-सागर', 'सिंगार-सागर' और 'पद-सागर'। समुच्चय में ६१ पद बनीठनीजी के भी सम्मिलित हैं। उन ७३ ग्रंथों के नाम लिखे जाते हैं:

१. सिंगार-सार; २. गोपी प्रेम-प्रकाश (सं० १८००); ३. पद-प्रसंग-माला, ४. ब्रज-बैकुंठ-तुला (सं० १८०१); ५. ब्रजसार (सं० १७९९) ६. भोर-लीला; ७. प्रातिरस-मंजरी; ८. बिहार-चन्द्रिका (सं० १७८८); ९. भजनानन्दाष्टक; १० जुगलरस-माधुरी; ११. फूल-बिलास; १२ गोधन आगमन; १३ दोहन-आनन्द; १४. लगनाष्टक; १५. फाग-विलास; १६. ग्रीष्म-बिहार; १७. पावस-पचीसी १८. गोपी-बैन-बिलास; १९. रास-अनु-लता; २० नैनरूप-रस २१. सीतसार; २२. इश्क-चमन; २३. मजलिस-मंडन, २४ अरिल्लाष्टक; २५. सदा की मांझ; २६. वर्षा ऋतु की मांझ; २७. होरी की मांझ; २८. कृष्ण-जन्मोत्सव-कवित्त; २९ प्रिया-जन्मोत्सव-कवित्त; ३०. साँझी के कवित्त; ३१ रास के कवित्त, ३२. चाँदनी के कवित्त ३३. दिवारी के कवित्त; ३४. गोवर्धन-धारन के कवित्त; ३५. होरी के कवित्त; ३६. फाग गोकुलाष्टक; हिंडोरा के कवित्त; ३८. वर्षा के कवित्त; ३९. भक्ति-मग-दीपिका (सं० १८०२); ४० तीर्थानंद (सं० १८१०); ४१. फाग-बिहार (सं० १८०८); ४२. बाल-बिनोद (सं०

१८०६); ४३ सुजानानंद (सं० १८१०);४४. वन-विनोद (सं०१८०१); ४५. भक्तिसार (सं० १७९९); ४६. देह-दशा; ४७. वैराग्य-वल्ली; ४८. रसिक-रत्नावली (सं० १७८२ ; ४९. कलि-वैराग्य-वल्लरी (सं० १७९५) ५०. अरिल्लपचीसी; ५१. छूटक-विधि; ५२. पारायण-विधि-प्रकाश(सं० १७९९)५३.शिखनख; ५४. नखशिख;५५. छूटक-कवित्त; ५६. चर-चरियाँ; ५७ रेखता,५८.मनोरथ-मंजरी (सं०१७८०); ५९. राम-चरित्रमाला; ६०. पद-प्रबोधमाला,६१.जुगुल भक्तिविनोद (सं०१८०८, ६२. रसानुक्रम के दोहे, ६६. शरद की मांझ. ३४. सांझी-फूल-बीनन-संवाद,६५. वसंत-वर्णन, ६६. रसानुक्रम के कवित ६७. फाग-खेलन-समेतानुक्रम कवित्त, ६८. निकुंज-विलास (सं० १७९४, ६९. गोविन्द-परचई, ७०. वनजन-प्रशंसा, ७१ छूटक दोहा, ७२ उत्सव-माला, ७३ पद-मुक्तावली।

दो अप्राप्य ग्रंथों के नाम 'वैन-विलास' और 'गुप्तरस-प्रकाश' हैं। नागरीदासजी की सारी ही कविता श्रीराधाकृष्ण की भक्ति-रसमयी है। आपने उत्सवों का— विशेषकर होली का—वर्णन बड़ा ही विशद और रोचक किया है। आपकी कविता हरिवंशी और हरिदासी महात्माओं की बानियों से बहुत कुछ मिलती-जुलती है, यद्यपि थे आप वल्लभ कुलावलंबी आपकी कविता की भाषा व्रजभाषा और कहीं-कहीं उर्दू-फारसी मिश्रित है। कविता में सर्वत्र प्रेम की झलक दिखायी देती है। नागरीदास सरीखे महाकवि हिन्दी साहित्य में इने गिने ही मिलेंगे। व्रजभाषा के तो आप अभिमान स्वरूप हैं। 'नागर रस सागर' के कुछ अनमोल रत्न नीचे दिये जाते हैं :

वैराग्य-सागर

कवित्त

लीला-रस आसव[1] स्रवन पान कीने, हरि-
ध्यानहि गजक आन नाहिं चाहियतु है।

[1] मदिरा।

विधिना कुवेर इन्द्र आदि सब रंक दीसें[1],
ऐसे[2] मद छाये पै नमनि[3] गहियतु हैं ॥
भावनाहि भोग में मगन दिन-रैन रहैं,
ताके नैन ताके, नित छाके[4] रहियतु हैं।
और मतवारे[5] मतवारे नाहिं 'नागर' वे,
प्रेम-मतवारे मतवारे कहियतु हैं ॥१॥

सवैया

'नागर' वेद पुरान पढ़्यौ 'सब वादि[6] कै कीन्हीं कई मति पांगुरी[7]।
गंग औ गोमती न्हात फिर्यौ अति सीत में प्रीत सौं हाथ लै कांगुरी ॥
गल्यका[8] न्हाय गोदावरि न्हायौ सु त्यागि दी अन्न रु खावत सागुरी[9]।
और हूँ न्हायो सुमैं न बदी[10] जु पै नेह[11] नदी में नदी पग-आँगुरी ॥२॥

कवित्त

काहे कोरे[12] नाना मतसुनै तू पुरानन के,
तैंही कहा तेरी मूढ़, गूढ़ मति पंग की।
वेद के विवादनि कौ पावैगो न पार कहूँ,
छाँड़ि देहि आसा सब दान-न्हान गंग की ॥
और सिद्धसाधे[13] अब 'नागर' न सिद्ध कछू,
मानि लेहि मेरी कही वारता सुढङ्ग[14] की।

१ दिखाई देते हैं, ऐसे ...गहियतु हैं—भगवद्भक्ति की मदिरा पीने पर ऐंठ नहीं आती, बल्कि नम्रता आ जाती है। ३ नम्रता, झुकाव। ४ छके हुए। ५ मतवाले, मदोन्मत्त। ६ [illegible] मत या धर्म के मानने वाले, [illegible]। ७ लँगड़ी; [illegible]। ८ [illegible]-विशेष। ९ [illegible]। १० मानी। ११ नेह-नदी...आँगुरी—यदि प्रभु की नदी में पैर की अँगुली नहीं डूबी है, [illegible] के निकट नहीं गये। १२ व्यर्थ; [illegible]। १३ साधने से, [illegible]। १४ सुढङ्ग।

जाहि ब्रज भोरे[१], फोरे मन कों रँगाइ ले रे,
वृन्दावन-रैन[२] रची गौर-स्याम-रंग[३] की ॥३॥

अड़िल्ल

संग फिरत है काल, भ्रमत निज सीस पर ।
यह तन अति छिनभंग, धुवें को धौं लहर ॥
यातें दुरलभ साँस[४] न वृथा गमाइए ।
ब्रज-नागर नँदलाल सु निसिदिन गाइए ॥४॥
चली जाति है आयु जगत-जंजाल में ।
कहत टेरिकैं घरी-घरी घरियाल[५] में ॥
समै चूकिकैं काम न फिरि पछताइए ।
ब्रज-नागर नँदलाल सु निसिदिन गाइए ॥५॥
सुत-पित-पति-तिय मोह महादुखमूल है ।
जग-मृग-तृस्ना देखि रह्यौ क्यों भूल है ?
स्वप्न-राज-सुख पाय न मन ललचाइए ।
ब्रज-नागर नँदलाल सु निसिदिन गाइए ॥६॥
कलह-कलपना, काम-कलेस निवारनौ ।
परनिंदा परद्रोह न कबहुँ बिचारनौ ॥
जग-प्रपंच[६]-चटसार[७] न चित्त पढ़ाइए ।
ब्रज-नागर नँदलाल सु निसिदिन गाइए ॥७॥
अंतर कुटिल कठोर भरे अभिमान सों ।
तिन के ग्रह नहिं रहैं संत सनमान सों ॥
उनकी संगति भूलि न कबहुँ जाइए ।
ब्रज-नागर नँदलाल सु निसिदिन गाइए ॥८॥
कहूँ न कबहूँ चैन जगत दुखकूप है ।

१सवेरे; जल्दी । २रँगने का बर्तन । ३राधाकृष्ण की भक्ति । ४व्यर्थ समय नष्ट नहीं करना चाहिए । ५घड़ा । ६सांसारिक जंजालरूपी । ७पाठशाला

हरि-भक्तन को संग सदा सुखरूप है ॥
इनके ढिग आनंदित समै बिताइए ।
ब्रजनागर नँदलाल सु निसिदिन गाइए ॥९॥
कृष्ण भक्ति-परिपूरन जिनके अंग हैं ।
दृगनि परम अनुराग जगमगै[1] रंग हैं ॥
उन संतन के सेवत दसधा[2] पाइए ।
ब्रजनागर नँदलाल सु निसिदिन गाइए ॥१०॥
ब्रज-वृन्दावन स्याम-पियारी भूमि हैं ।
तहँ फल-फूलनि-भार रहे द्रुम झूमि हैं ॥
भुवि दंपति-पद-अंकनि लोट लुटाइए ।
ब्रज नागर नँदलाल सु निसिदिन गाइए ॥११॥
नंदीस्वर[3], बरसानो[4], गोकुल गाँवरो ।
वंसीवट संकेत[5], रमत तहँ साँवरो ॥
गोवर्धन राधाकुंड[6] सु जमुना जाइए ।
ब्रज-नागर नँदलाल सु निसिदिन गाइए ॥१२॥
नंद-जसोदा, कीरति, श्रीवृषभान हैं ।
इनतें बड़ो न कोऊ जग में आन हैं ॥
गो-गोपी-गोपादिक - पद - रज ध्याइए ।
ब्रज-नागर नँदलाल सु निसिदिन गाइए ॥१३॥

[1]प्रकाशित हो रहा है। [2]भक्ति के दस प्रकार; प्रायः भक्ति नौ प्रकार की मानी गयी है—अर्थात् श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनम् वंदनं दास्यं सख्यमात्म-निवेदनम्। 'नारद-भक्ति-सूत्र' में दसवीं' और ग्यारहवीं' भक्ति का भी उल्लेख किया है, जिनके नाम प्रेमासक्ति और परम विरहासक्ति है। [3]ब्रज का एक पवित्र स्थान। [4]बरसाना वृषभानु का गाँव, जो नंदगाँव के समीप ही है। [5]स्थान-विशेष। [6]प्रसिद्ध कुंड, जो गोवर्धन के समीप है; श्रीहितहरिवंशजी प्रायः यहाँ रहा करते थे।

बँधे उलूखल लाल[1] दमोदर हारिकैं ।
बिस्व[2] दिखायौ वदन वृच्छ दिय तारिकैं ॥
लीला ललित अनेक पार कित पाइए ।
ब्रज-नागर नँदलाल सु निसिदिन गाइए ॥१४॥
मेटि महोच्छव[3] इन्द्र कुपित कीन्हों महा ।
जल बरसायो प्रलयकरन कहिए कहा ॥
गिरि धरि कियौ सहाय सरन जिहिं जाइए ।
ब्रज नागर नँदलाल सु निसिदिन गाइए ॥१५॥
राधा-हित ब्रज तजत नहीं पल साँवरो ।
नागर नित्य विहार करत मनभावरो[4] ॥
राधा-ब्रज-मिश्रित जस रसनि रसाइए[5] ।
ब्रज-नागर नँदलाल सु निसिदिन गाइए ॥१६॥
ब्रज-रस-लीला सुनत न कबहुँ अघावनो ।
ब्रजभक्तन, सत-संगति प्रान पगावनो ॥
'नागरिया' ब्रजवास कृपा-फल पाइए ।
ब्रज-नागर नँदलाल सु निसिदिन गाइए ॥१७॥

पद

हम ब्रज सुखी ब्रज के जीव ।
प्रान तन मन, नैन सर्वसु, राधिका को पीव[6] ॥

१दामोदरलाल, श्रीकृष्ण; आप का यह नाम उलूखल-बंधन के बाद पड़ा । २विश्व...वदन—एक बार श्रीकृष्ण ने बाल-भाव से मिट्टी खानी । यशोदा जी ने डांटकर मुंह से मिट्टी उगलने को कहा । श्रीकृष्ण ने ज्योंही मुँह खोला, यशोदा देखती क्या हैं कि इतने छोटे मुंह में सारा विश्व समाया हुआ है । यह लीला देखकर उनका सारा मोह भंग हो गया । ३महोत्सव; इन्द्र-पूजा । ४मन चाहा, प्राण-प्यारा । ५रसों का वर्णन कर या अनुभव कर आनन्द लूटना चाहिये ६प्यारा ।

कहाँ आनँद मुक्ति में, यह कहाँ मृदु-मुसकान।
कहाँ ललित निकुञ्ज लीला, मुरलिका - कलगान ॥
कहाँ है यह सरद-रजनी, जोन्ह[1] जगमग जोति।
कहाँ नूपुर-बीन-धुनि मिलि रास-मंडल होति ॥
कहाँ पाँति कदंब की, झुकि रही जमुना-बीच।
कहाँ रंग-विहार फागुन, मचत केसर - कीच ॥
कहाँ लंगर[2] सखा मोहन, कहाँ उनकी हासि।
कहाँ गोरस छाँछि[3] टैंटी[4], छाक रोटी रासि ॥
कहाँ स्रवनन, कीरतन, जगमगनि दरुभा रंग।
कहाँ गद्‌गद् रामहर्षन, प्रेम पुलकित अंग ॥
जहाँ एती वस्तु पैयत, बीच वृन्दाधाम।
हौंऽब[5] ऐसे ब्रज सुखद सों काहि रे बेकाम ॥
'दास नागर' चहत नहिं सुख, मुक्ति आदि अपार।
सुनहुँ ब्रज बसि स्रवन में ब्रजबासिनिन की गार[6] ॥१८॥

हमारे मुरलीवारो स्याम।
बिनु मुरली बनमाल चंद्रिका, नहिं पहिचानत नाम ॥
गोपरूप वृन्दावन-चारी, ब्रज-जन-पूरन-काम।
याही सों हित चित्त बढ़ौ नित, दिन-दिन पल छिन जाम ॥
नंदीसुर, गोवर्धन, गोकुल, बरसानो बिसाम।
'नागरिदास' द्वारिका-मथुरा, इनसों कैसो काम ॥१९॥*

१चाँदनी। २हठात करनेवाले, छेड़खानी करनेवाले। ३मट्ठा। ४करील का फल; इसका अचार रखा जाता है। ५मैं अब। ६प्रेमभरी गालियाँ।

*नागरीदासजी ब्रजवासी श्रीकृष्ण के उपासक थे। इन्हें ब्रज के आगे मथुरा और द्वारका का राजैश्वर्य तुच्छ जान पड़ता है। इस पद में 'माधुर्य भावानन्यता' का बड़ा ही उत्तम वर्णन किया गया है।

चरचा करो कैसे जाय।
बात जानत कछुक हमसों, कहत जिय थहराय॥
कथा अकथ सनेह की, उर नाहिं आवत और।
वेद-सुमृति[1]-उपनिषद[2] कों, रही नाहिन ठौर॥
मनहि में है कहनि ताकी, सुनत[3] स्रोता-नैन।
सोऽब[4] 'नागर' लोग बूझत, कहि न आवत बैन॥२०॥

कहाँ वे सुत नाती हय हाथी।
चले निसान बजाइ अकेले, तहँ कोउ संग न साथी॥
रहे दास-दासी मुख जोवत, कर मीड़ैं सब लोग।
काल गह्यौ तब सब हीं छाँड्यो, घरे रहे सब भोग॥
जहाँ-तहाँ निसिदिन विक्रम को, भट्ट[5] कहत बिरदत्त[6]।
सो सब बिसरि गये एकै रट, राम-नाम कहैं सत्त॥
बैठन देत हुते नहि माखी, चहुँ दिसि चँवर सचाल।
लिये हाथ में लट्ठा ताकौ, कूटत मित्र कपाल॥
सौंधे[7]-भीगो गात जारिकै, करि आये बन ढेरी।
घर आये तें भूलि गये सब, धनि माया हरि, तेरी॥
'नागरिदास' बिसरिए नाहीं, यह गति अति असुहाती।
काल-ब्याल कौ कष्ट-निवारन, भजि हरि जनम-सँगाती[8]॥२१॥

जो मेरे तन होते दोय।
मैं काहू तें कछु नहि कहतो, मोतें कछु कहतो नहिं कोय॥
एक जु तन हरि-बिमुखनि के सँग रहतो देस-बिदेस।
बिबिध भाँति के जग-दुख-सुख जहँ, नहीं भक्ति-लव लेस॥
एक जु तन सतसंग-रंग रँगि, रहतो अति सुख-पूरि।

१स्मृति; धर्मशास्त्र-संबंधी ग्रंथ। २अध्यात्मविद्या-संबंधी ग्रंथ। ३जिसे नेत्र-रूपी श्रोता ही सुनते हैं, अर्थात् जो देखते ही बनता है, कहते नहीं। ४सो अब। ५भाट, बंदीजन। ६यश। ७सुगंध, इत्र। ८सदा साथ रहने वाला।

जनम सफल कर लेतो ब्रज बसि, जहँ ब्रज-जीवन मूरि ॥
द्वै तन बिन द्वै काज न ह्वै है, आयु सु छिन-छिन छीजे[1] ।
'नागरिदास' एक तनतें अब, कहौ, कहा करि लीजे ॥२२॥

दरपन[2] देखत, देखत नाहीं ।
बालापन फिरि प्रगट स्याम कच, बहुरि स्वेत सु जाहीं ॥
तीन रूप या मुख के पलटे, नहिं अयानता[3] छूटी ।
नियरे आवत मृत्यु न सूझत, आँखें हिय की फूटी ॥
कृष्ण-भक्ति-सुख लेत न अजहूँ, वृद्ध देह दुख-रासी ।
'नागरिया' सोई नर निहचै, जीवत नरक-निवासी ॥२३॥

हरिजू अजुगत[4] जुगत करेंगे ।
परवत ऊपर बहल[5] काँच की, नीके लै निकरेंगे ॥
गहिरे जल पाषान नाव बिच, आछी भाँति तरेंगे ।
मैन-तुरंग[6] चढ़े पावक बिच, नाहीं पिघरि[7] परेंगे ॥
याहू ते असमंजस हो किन, प्रभु दृढ़ करि पकरेंगे ।
'नागर' सब आधीन कृपा के, हम इन डर न डरेंगे ॥२४॥

दुहुँ भाँतिन कौ मैं फल पायो ।
पाप किये तातें बिमुखन सँग, देस-देस[8] भटकायो ॥
तुच्छ कामना-हित कुसंग बसि, झूठे लोभ लुभायो ।
कौन पुन्य अब वृन्दावन, बरसाने सुबस[9] बसायो ॥

१क्षीण होती चली जा रही है। सारांश यह कि एक शरीर से पूरे तौर पर एक ही काम हो सकता है। २दरपन...नाहीं—दर्पण में मुंह देखता हुआ भी यह नहीं देखता कि बुढ़ापा और मौत पास आती जाती है। ३अज्ञानता। ४अयुक्त असंभव। ५काँच की गाड़ी जो पत्थर की ठोकर से टूट फूट जाती है। ६मोम का घोड़ा। ७पिघलेंगे नहीं। ८नागरीदासजी को बादशाह की ओर से काबुल की लड़ाई में जाना पड़ा था। दूसरे, गृह-कलह-वश इधर उधर भागना पड़ा था, यही उल्लेख इस पद में किया गया है। ९स्वच्छन्द, सुखपूर्वक।

आनँदनिधि ब्रज-अनन्य[1]-मंडली, उर लगाय अपनायो।
मुनिवेहूँ को दुर्लभ सो सब, रस-विलास दरसायो॥
स्यामा-स्याम 'दास नागर' कौ, कियो मनोरथ भायो॥२५॥

हमारी तुमसों हरि, सुधरेगी।
बहुत जनम हम जनम बिगार्‌यो, अबहूँ बिगरि परेगी?
प्रीति-रीति पूरन नहिं, कैसे माया-व्याधि टरेगी।
'नागरिया' की सुधरेगी जो, अँखियाँ इतहिं ढरेंगी॥२६॥

हमारी सबही बात सुधारी।
कृपा करो श्री कुंजविहारिनि, अरु श्रीकुञ्जविहारी॥
राख्यो अपने वृन्दावन में, जिहिटौं[2] रूप-उजारी[3]।
नित्य केलि-आनन्द अखंडित, रसिक संग सुखकारी॥
कलह-कलेस न व्यापै इहि टौं, ठौर बिस्व[4] तें न्यारी।
'नागरिदासहि' जनम जितायो, वलिहारी, बलिहारी॥२७॥*

ब्रज के लोग सब ठग महा।
आप ठग, ठग[5] के उपासक, अधिक कहिए कहा॥
कनक-बीज[6] सी बचन-रचना, देत तनिक चखाय।
बावरो ह्वै रहत सो फिरि, धाम धन बिसराय।
छाड़िकैं[7] रज लुटत रज में, दीन दीसत अंग।
और जग-सुख-रङ्ग उड़िकैं, चढ़त कारो-रङ्ग[8]॥
भूमि ठग, द्रुम, देस, ठग इत, ठगे स्याम सुजान।
राखै सयानप सोऽब इनके, और कौन समान॥

१ अनन्य भक्तों की मंडली। २ स्थान। ३ दिव्य-स्वरूप का नित्य प्रकाश।
४ पांचभौतिक संसार से परे (गोलोक)। ५ ठग के उपासक—भक्तों के मन को ठगने-वाले श्रीकृष्ण के उपासक। ६ सोने के ऐसे बीज के धीधुर और प्यारे। ७ छाड़िकै... रज में—राजसी अहंकार छोड़कर ब्रज की धूल में लोटते हैं। ८ श्रीकृष्ण का रंग।

* आत्म-तुष्टि, का यह बड़ा ही उत्तम पद है।

इहाँ आवत हीं परत दृढ़ प्रेम की गर-पास[1] ।
भूलि ह्याँ कोउ आइयो मति कहत 'नागरिदास' ॥२८॥*

भक्ति बिन हैं सब लोग निखट्टू[2] ।
आपस में लड़िबे-भिड़िबे कों, जैसे जंगी टट्टू[3] ॥
नित उनकी मति भ्रमत रहत है, जैसे लंपुल लट्टू ।
'नागरिया' जाग में वे उछरत, जिहि विधि नट के बट्टू[4] ॥२९॥

वृन्दाविपिन रसिक-रजधानी ।
राजा रसिकविहारी सुंदर, सुन्दर रसिकविहारिनि रानी ॥
ललितादिक ढिग रसिक सहचरी, सुन्दर जुगल-रूप[5] मदपानी ।
रसिक टहलनी[6] वृन्दा देवी, रचना रुचिर निकुंज सुहानी ॥
जमुना रसिक, रसिक द्रुम-वेली, सोहै रसिक-भूमि सुखदानी ।
इहाँ रसिकचर[7] थिर 'नागरिया' रसिकहि रसिक सबै गुनगानी ॥३०॥

किते दिन बिन वृन्दावन खोये
योहीं वृथा गये ते अबलौं, राजस - रंग समोये[8] ॥
छाँड़ि पुलिन फूलनि की सेज्या, सूल सरनि सिर सोये ।
भीजे[9] रसिक अनन्य न दरसे, विमुखनि के मुख जोये[10] ॥
इकरस[11] ह्याँ के सुख तजिकै, ह्याँ कबौं हँसे कबौं रोये ।
कियो न अपनो[12] काज, पराये भार सीस पर ढोये ॥
पायो नहिं आनंद-लेस मैं, सबै देस टकटोये[13] ।
'नागरिदास' बसे कुञ्जन मैं, जब सब विधि सुखभोये[14] ॥३१॥

१फंदा । २पुरुषार्थ-हीन । ३लड़ाके घोड़े । ४बटा, लोहे का गोला जिसे नट लोग उछाला करते हैं । ५रूप-रूपी मद पीनेवाली । ६दासी । ७चैतन्य । चलन । ९भाव में सराबोर । १०देखे । ११सदा एक से रहने वाले; अखंड । १२आत्म-सुधार । १३खोज डाले । १४मग्न ।

*प्रेमपूर्ण-व्यंग्य का क्या ही सुन्दर पद है !

जो सुख लेत सदा ब्रजवासी ।
सो सुख सपनेहूँ नहिं पावत, जे जन हैं बैकुंठ-निवासी ॥
ह्यां घर-घर हैं रह्यां खिलौना, जगत कहत जाकों अविनासी ।
'नागरिदास', विस्व तें न्यारी, लगि गई हाथ, लूट सुखरासी ॥३२

ब्रजवासी तें हरि की सोभा ।
वेनु अधर छवि भये त्रिभंगी, सो वा ब्रज की सोभा ॥
ब्रज-वन-धातु विचित्र मनोहर, गुञ्ज - पुञ्ज अति सोहै ।
ब्रजमोरनि कौ पंख सीस पर, ब्रज - युवती-मन मोहै ॥
ब्रज-रज नीको लगति अलक पै, ब्रज - द्रुम फल उर माल ।
ब्रज-गउवन के पीछे आछे, आवत मद - गज[1]-चाल ॥
बीच लाल ब्रजचंद सुहाये, चहूँ ओर ब्रज - गोप ।
'नागरिया' परमेसुरहूँ की. ब्रज तें बाढ़ी ओप[2] ॥३३॥

ब्रज सम और कोउ नहिं धाम ।
या ब्रज में परमेसुरहूँ के, सुघरे सुन्दर नाम ॥
कृष्णनाँव यह सुन्यो गर्ग[3] तें, कान्ह - कान्ह कहि बोलैं ।
बाल-केलि-रस-मगन भये सब, आनन्द - सिंधु - कलोलैं ॥
जसुदानंदन, दामोदर, नवनीत[4]-प्रिय, दधिचोर ।
चोर-चोर, चित-चोर, चिकनियां[5], चातुर, नवलकिसोर ॥
राधा - चंद - चकोर, साँवरो, गोकुलचंद, दधिदानी[6] ।
श्रीवृन्दावन-चंद, चतुर चित, प्रेमरूप अभिमानी ॥
राधारमन सु राधावल्लभ, राधाकांत, रसाल ।
वल्लभ-सुत[7], गोपीजन-वल्लभ, गिरिवर-धर, छवि-जाल[8] ॥
रासबिहारी, रसिकबिहारी, कुञ्जबिहारी स्याम ।

१मस्त हाथी । २तेज; शोभा । ३यादव-वंशियों के कुलगुरु । ४जिनको मक्खन प्यारा है । ५छैला । ६दही का दान माँगने वाले । ७श्रीवल्लभाचार्यजी के पुत्र । ८अत्यंत सुन्दर ।

विपिनविहारी, वङ्कविहारी[1], अटलविहारऽभिराम[2] ।
छैलविहारी, लालविहारी, वनवारी, रसकन्द[3] ।
गोपीनाथ, मदनमोहन, पुनि वन्सीधर गोविंद ॥
व्रजलोचन, व्रजरमन, मनोहर, व्रजउत्सव[4], व्रजनाथ ।
व्रजजीवन, व्रजवल्लभ सबके, व्रजकिशोर सुभगाथ[5] ॥
व्रजभूषण' व्रजमोहन, सोहन[6], व्रजनायक, व्रजचंद ।
व्रजनागर, व्रजछैल, छबोले, व्रजवर, श्रीनँदनंद ॥
व्रज-आनँद, व्रजदूलह नितहीं, अति सुन्दर व्रजलाल ।
व्रज-गउवन के पाछे आछे[7], सोहत व्रजगोपाल ॥
व्रज - संबंधी नाम लेत ये, व्रज की लीला गावै ।
'नागरिदासहिं' मुरलीवारो, व्रज को ठाकुर भावै ॥३४॥

मनोरथ-मञ्जरी*

दोहा

माँ नैनन की ठौर कों, कब[8] लैहै वह रूँघ ।
तीन - ताप - सीतलकरन, सघन तरुन[9] की घूँघ ॥३५॥
कब वृन्दावन-धरनि में, चरन परैंगे जाय ।
लोटि धूरि, धरि सीस पर, कछु[10] मुखहूँ में पाय ॥३६॥
पिक, चेकी, कोकिल-कुहुक, वन्दर-वृन्द अपार ।
ऐसे तरु लखि निकट कब, मिलिहौं बाँह पसार ॥३७॥

१ बांकेबिहारी । २ बिहार-अभिराम, सुन्दर बिहार करने वाले । ३ आनंद-कंद । ४ ब्रज को सुख देने वाले । ५ पवित्र है कथा जिनकी । ६ सुन्दर । ७ अच्छे । ८ कब...रूँध—वह कब ढक लेगी । ९ तरुन की घूँध—पेड़ों की अँधेरी छाया । १० कछु...पाय—थोड़ी-सी मुँह में भी डाल कर,

*नागरीदासजी की सर्वप्रथम रचना यही है । इसका रचना-काल सं० १७८० है ।

कबै रसीली कुञ्ज में, हौं करिहौं परबेस[१] ।
लखि-लखि लता जु लहलही[२], चित ह्वैगो आबेस[३] ॥३८॥
प्रिय-परिकर के सुघरजन, बिरही-प्रेम-निकेत[४] ।
देखि कबै लपटायहौं, उनतें हिय करि हेत[५] ॥३९॥
कछु मोहूँ में प्रेम लखि, तब औरन तें फाट ।
कबै पुलिन[६] लै जाहिंगे, करन मानसी[७] ठाट ॥४०॥
जमुना-तट निसि चाँदनी, सुभग पुलिन में जाय ।
कब एकाकी[८] होयहौं, मौन वदन उर चाय[९] ॥४१॥
जुगुलरूप - आसव - छक्यो, परे रीझ के पान ।
ऐसे संतन की कृपा, मो पै दंपति[१०] जान ॥४२॥
कुंडल-झलक कपोल पर, राजति नाना भाँति ।
कब इन नैननि देखिहौं, वदन चंद की काँति[१२] ॥४३॥
दयन दसनि, ईषद[१३] हँसनि, उपमा समसर[१४] है न ।
फैलि परत किरननि-निकर, कब देखौं इन नैन ॥४४॥
कब दुखदाई होयगो, मोकों बिरह[१५] अपार ।
रोय-रोय उठ दौरिहौं, कहि, कित 'सुकुवाँर[१६] ॥४५॥
ता दिन हीं तें छूटिहै, खान-पान अरु सैन ।
छीन देह, जीरन बसन, फिरिहौं हियें न चैन ॥४६॥
नैन द्रवै, जल-धार वह, छिन-छिन लेत उसाँस ।
रैन अँधेरी डोलिहौं, गावत जुगल, उपास[१७] ॥४७॥
चरन छिदत काँटेन तें, स्रवत रुधिर, सुधि नाहिं ।

१प्रवेश । २ हरी-भरी । ३प्रेमानन्द । ४प्रेम-स्वरूप । ५प्रेम । ६किनारा
७मानसी शृङ्गार; भगवान की मानसी भावना । ८अकेला; विरक्त । ९चाह,
प्रेम । १०श्रीराधाकृष्ण । ११प्यारे । १२कांति । १३मंद-मंद । १४बराबरी
१५भगवद्-विरह; विरहासक्ति सर्वोत्कृष्ट भक्ति है । १६सुकुमार; श्रीराधाकृष्ण ।
१७उपासक; इष्टदेव ।

पूँछत हौं फिरिहौं भटू[1] खग, मृग, तरु, वन माहिं ॥४८॥
हेरत, टेरत डोलिहौं, कहि-कहि स्याम सुजान।
फिरत-गिरत वन सघन में, यौंही छुटिहैं प्रान ॥४९॥
कबै मनोरथ सिद्ध ये, ह्वैहैं मेरे लाल।
सतसंगति तें दूर नहि, जानैं रसिक रसाल ॥५०॥
परम मित्र[2] आग्या दई, मेरेहूँ हित वास।
नवल 'मनोरथ-मंजरी', करी[3] 'नागरीदास' ॥५१॥
जो वाँचै सीखै सुनै, रीझि करै फिरि प्रस्न[4]।
सो सतसंगति कीजियौ, पहुँचै 'जय श्रीकृस्न'[5] ॥५२॥

पद

नंदसुत नित्यरस बाललीला-मगन,
उदधि आनन्द गोकुल कलोलैं।
गौर[6] अरु स्याम अभिराम भैया दोऊ,
ललित लरिकान लिय संग डोलैं ॥
भवन प्रति भवन चलि चोरहीं दूध दधि,
रतन भूषन वदन तन उजेरैं।
खात, लपटात, ढरिकात[7] फिरि हँसि भजत,
चकृत ह्वै भवन निज भवन हेरैं ॥
कबहुँ गहि-गहि फिरत पूँछ बछियान की,
किंकिनी कनक कटि मधुर बाजैं।
गोप-गोपीन मन दृगनि से खिलौना खिलत[8]
मुख कमल मुरि[9] हँसनि भ्राजैं ॥

१गोपीजन। २ यहाँ परम मित्र से जान पड़ता है, [illegible] आनंदघनजी से आशय है। ३रची। ४प्रश्न। ५उसे मेरी 'जय श्रीकृष्ण', पहुँचे। वल्लभकुल वाले वैष्णव आपस में 'जय श्रीकृष्ण' कहकर दंडवत् प्रणाम करते हैं। ६रोहिणी के पुत्र श्रीबलभद्रजी। ७गिरा देते हैं। ८प्रफुल्लित। ९मुड़कर।

बदन दधि-छवि, धूरि-धूसरित अँग,
अवहिं तें मदन-गति पगनि पेलें।
कंठ बघना[1] दिये पाय पैंजनि झनक,
दास 'नागर'-हिये अँगन - खेलें ॥५३॥

शृङ्गार-सागर

दोहा

अरी, छिमा कर मुरलिया, परत तिहारे पाय।
और सुखी सुनि होत सब, महादुखी हम हाय ॥५४॥
कियो न, करिहै कौन नहिं, पिय सुहाग कौ राज।
अरी, बावरी बँसुरियाँ, मुख-लागी मति गाज ॥५५॥
तो कारन गृह-सुख तजे, सह्यौ जगत कौ बैर।
हमसों तोसों मुरलिया, कौन जनम कौ बैर ॥५६॥
ऐ अभिमानी मुरलिया, करी सुहागिनि स्याम।
अरी, चलाये सबनि पै, भले[2] चाम के दाम ॥५७॥
मुख मूँदे रहु मुरलिया, कहा करति उतपात।
तेरे हाँसी घर-बसी, औरन के घर जात[3] ॥५८॥
हरि चित लियौ चुरायकैं, रह्यौ परत नहिं मौन।
तापर बंसी वालि मति, देत कटे पर लौन ॥५९॥
तूँहूँ व्रज की मुरलिया, हमहूँ व्रज की नारि।
एक बास[4] की कान करि, पढ़ि-पढ़ि मंत्र न मारि ॥६०॥

१बाघ के नख, जो सोने के तावीज में मढ़ाकर बच्चों को पहनाये जाते हैं; कहते हैं, बघनहा के पहना देने से लड़कों को नजर नहीं लगती। २झूठे सिक्के भी असल के भाव चला दिये। ३दूसरों को घर और कुटम्ब से हाथ धोना पड़ता है। ४एक जगह पर रहने के नाते तू मर्यादा तोड़, कुछ तो शील रख।

* वात्सल्य-रस का यह पद सूरदासजी के तत्सम्बन्धी पदों से किसी अंश में कम नहीं है।

मति मारै सर तानिकैं, नातो इतो विचारि।
तीन लोक सँग गाइए, बंसी अरु ब्रजनारि ॥६१॥
सब कौ मन लै हाथ में, पकरि नचाई हाथ।
एक हाथ की मुरलिया, लगि पिय-अधरनि साथ ॥६२॥*
बंस-बंस में प्रगटि भई, सब जग करत प्रसंस।
बंसी हरि-मुख सों लगी, धन्य बंस कौ बंस ॥६३॥
फूँकनि के चल तीर तन, लगे परतु नहिं चैनु।
अँग-अँग आप बिधाइकैं, हमहूँ बेधतु बैनु ॥६४॥
हा हा![1] अब रहि मौन गहि, मुरली करति अधीर।
मोसी[2] ह्वै जो तू सुनै, तब कछु पावै पीर ॥६५॥
सबद सुनावत हमहिं तूँ, देत नहीं छिन चैनु।
अनबोली[3] रहु तनिक तो, ऐ बकवादी बैनु[4] ॥६६॥
थिर[5] कीन्हें चर, चर सुथिर, हरि-मुख मुरली बाजि।
खरब सुकीनों सबनि कों, महागरब सों गाजि ॥६७॥

इश्क-चमन

दोहा

इश्क उसी[6] की झलक है, ज्यौं सूरज की धूप।
जहाँ इश्क तहँ आपु है, कादिर नादिर रूप ॥६८॥

१तेरी विनय करती हूँ। २मोसी...पीर—मेरी तरह, हे मुरली, एक क्षण के लिए भी यदि तू गोपी बनकर अपना घातक शब्द सुनले, तो हमारी वेदना समझ में आ जाय। ३मौन। ४बाँसुरी। ५थिर...सुथिर—जड़ को चैतन्य और चैतन्य को जड़ बना दिया, ऐसा तेरा प्रभाव है! यह भाव गोस्वामी तुलसीदासजी की इस चौपाई से मिलता है—"जो न जनम जग होत भरत को। अचर सचर, चर अचर करत को।" ६परमात्मा की।

*जो कहीं मुरली के दो हाथ होते, तो न जाने, वह क्या कर डालती।

कहूँ किया नहिं इश्क का, इस्तेमाल सँवार[1]।
सो साहिब[2] सों इश्क वह, करि क्या सकै गँवार ॥६९॥
सब मजहब सब इल्म अरु, सबै ऐश के स्वाद।
अरे, इश्क के असर बिन, ये सब हीं बरबाद ॥७०॥
आया इश्क-लपेट में, लागी चश्म-चपेट।
सोई[3] आया खलक में, और भरैं सब पेट ॥७१॥
कोइ न पहुँचा वहाँ तक, आसिक नाम अनेक।
इश्क-चमन के बीच में, आया मजनूँ[4] एक ॥७२॥
इश्क-चमन महबूब का, सँभल पाँउ धरि आव;
बीच राह[5] के बूड़ना, ऊबट[6] माहिं बचाव ॥७३॥
इश्क-चमन महबूब का, जहाँ न जावै कोइ।
जावै सो जीवै नहीं, जियै सु बौरा[7] होइ ॥७४॥*
सीस काटिकैं भू धरै, ऊपर रक्खै पाँव।
इश्क चमन के बीच में, ऐसा हो तो आव ॥७५॥
अरे पियारे, क्या करौं, जाहि रहो है लाग।
क्योंकरि दिल-बारूद में, छिपै इश्क की आग ॥७६॥

१सँभाल कर; मन लगाकर। २परमेश्वर। ३सोई...में —उसी का संसार में जीना सफल है। ४यह बहुत बड़ा प्रेमी था। कहते हैं, जब यह अपनी प्यारी लैला के विरह में मर गया, तब परमेश्वर ने धिक्कारते हुए इससे पूछा कि, अगर तू जितना प्रेम उस नाचीज़ लैला पर करता था उससे आधा भी मुझ पर करता तो आज तू मुक्त ही न हो जाता? इसपर मजनू ने जवाब दिया, कि अगर आपको अपने पुजाने की ही इच्छा थी, तो लैला का रूप धरकर मेरे पास क्यों न आ गये? मेरे लिए तो लैला ही परमेश्वर है। ५शास्त्रोक्त मार्ग। ६मरे-मिटे प्रेमियों का मार्ग। ७गूँगा।

*यह दोहा कबीरदासजी की साखियों में भी कुछ पाठ-भेद से पाया जाता है।

आतिस[1] लपटै राग की, पहुँचै दिल बिच जाय।
दवी इश्क-बारूद की, भभकनि लागी लाय ॥७७॥

कवित्त

वृन्दावन-कानन में भीर है बिमानन की,
देववधू देखि-देखि भई हैं मनचला[2]।
बंसी कल गान कै बितान धुनि वायु बँध्यौ,
रमा लोक लोभित ह्वै भूली उर-अंचला ॥
द्वै-द्वै बिच गोपिन के ललित त्रिभंग लाल,
'नागरिया' पदन्यास[3] बजै छुन-छुंछला[4]।
रास-रङ्ग-मंडल अखंड रत भेद-भाव,
संग ह्वै भ्रमत मानों मेघ-चक्र चंचला[5] ॥७८॥

दोहा

यह वृन्दावन, यह समै, यह दंपति की प्रीति।
'नागरिया' के हिय बसौ, नित-बिहार-रस-रीति ॥७९॥

बिहार-चंद्रिका

रोला

उज्ज्वल पख की रैन, चैन उज्ज्वल रसदैनी[6]।
उदित भयौ उडुराज अरुनदुति मन-हर-लैनी ॥
दहनमान पुर भये मिलन कों मन हुलसावत।
छावत छपा अमंद चंद ज्यों-ज्यों नभ आवत ॥
जगमगात बन-जोत सोत[7] अमरत-धारा से।
नवद्रुम किसलय दलनि चारु चमकत तारा-से ॥

१ आग। २ मन चंचल हो गया है जिनका। ३ नृत्य करते समय पैरों का रखना और उठाना। ४ नूपुर का शब्द विशेष। ५ बिजली; यहाँ गोपियों से आशय है। ६ दिव्य आनंद देनेवाली। ७ सोत।

स्वेत रजत की रैन, चैन चित मैन-उमहनी।
तैसिय मंद-सुगंध पौन दिनमनि-दुख-दहनी॥
अधिनायक गिरिराज, पदिक वृन्दावन-भूषन।
फटिक-सिला मनि-खञ्च, जगमगत दुति निदूषन॥
सिला-सिला प्रतिचंद चमकि, किरननि छवि छाई।
बिच-बिच अंब कदंब झंव, झुकि पाइन आई॥
ठौर-ठौर चहुँ फेर, ढेर फूलन के सोहत।
आवत सुखद सुगंध अंध-मद[1], भँवर विमोहत॥
विमल नीर निरझरत, कहूँ झरना सुखकरना।
महासुगंधित सहज वास, कुंकुम—मदहरना॥
ठौर-ठौर लखि ठौर रहत, मनमथ सो भारी।
विहरत विविध विहार तहाँ, गिरि पर गिरिधारी॥८०॥

---

[1] मदांध; मतवाले

अलबेलीअलि

छप्पय

गुरु-गोविंद में भेद-भाव नहिं कछुवै मान्यौ।
भजन-कीरतन चारु सारु जीवन कौ जान्यौ॥
सुधी, सुसील, सुसंत सहजरस-रास-रँगीलो।
निरमत्सर, निरद्वंद, कंद नवनेह-रसीलो॥
रचि 'समय-प्रबन्ध-पदावली' लली-लाल गुन-गान कर।
श्रीबंसीअलि कौ सिष्य श्रीअलबेलीअलि रसिक-वर॥

—वियोगी हरि

अलबेलीअलिजी महात्मा वंशीअलिजी (वंशीधर) के कृपापात्र शिष्य थे। वंशीअलिजी श्रीनारायण मिश्र की वंश - परंपरा में हुए हैं। नाभाकृत भक्तमाल में इनके संबन्ध का यह छप्पय प्रसिद्ध है :

भागवत भली विधि कथन कों, धनि जननी एकै जन्यौ।

पूज्यपाद स्वर्गीय श्रीराधाचरण गोस्वामी श्रीवंशीअलिजी के विषय में लिखते है : वंशीअलिजी ने बरसाने में श्रीललिताजी की उपासना कर श्रीप्रियाजी का दर्शन पाया। इनका जन्म विक्रम की १८ वीं शताब्दी के आदि में हुआ।" गोस्वामीजी ने, इनके सम्बन्ध में, अपनी "नव भक्त-माल" में यह छप्पय भी लिखा है :

श्री बरसाने वास बरस द्वादस दृढ़ कीनों।
श्रीललिता-सँग आपु लाड़िली दरसन दीनों॥
रहस-केलि-माधुर्य मधुर पद लीला गावी।
प्रेम-पंथ अति गूढ़, तासु पदवी दरसावी॥
श्रीरासेस्वरी-कृपा-कुसल निज परिकर में अपनई।
श्रीबंसीअलि आचार्य श्रीललिता जिमि सहचरि भई॥

वंशीअलिजी के प्रधान शिष्य किशोरीअलिजी थे। इनका यह पद प्रसिद्ध है :

श्री वृन्दावन, वृन्दावन, वृन्दावन कहु रे।
वृन्दावन-रज की तू सरन वेगि गहु रे॥

अलबेलीअलिजी के सम्बन्ध में विशेष ऐतिहासिक वृत्त नहीं मिलता इन्होंने अपने 'गुरु-सम्बन्ध' के विषय में —गुरु परम्परा में—केवल इतना ही लिखा है :

पुरुपार्थः शुद्ध सख्यं तत्प्रख्यं सर्वमेव हि।
यत्प्रसादान्मया प्राप्तं सा वंश्यालिर्गतिर्मम॥

यह विष्णुस्वामि-संप्रदाय में हुये हैं। इन्होंने संस्कृत में गुरु-परम्पराका आद्यंत वर्णन किया है। अनुमान से इनका जन्म १८ वीं शताब्दी के मध्य में माना जा सकता है।

अलवेलीअलिजी का 'समय-प्रबन्ध-पदावली' नाम का एक ग्रंथ संवत् १६४८ में स्वर्गीय जगन्नाथदास जी 'रत्नाकर' द्वारा प्रकाशित हुआ था। उसमें इनके विषय में एक पंक्ति भी नहीं लिखी है। विनोद में भी इनका नामोल्लेख नहीं किया गया है। यह भाषा के सुकवि होने के अतिरिक्त संस्कृत के भी अच्छे पंडित थे। इनका लिखा 'श्रीस्तोत्र' एक सुन्दर काव्य-ग्रंथ है। उदाहरणार्थ, उसमें से नीचे दो श्लोक लिखे जाते हैं :

श्रीराधिकां ललितया सहितां प्रसन्नां,
या लालयत्यतिसुभापितचारुहासैः॥
निःश्रेयसे समभवन्नति यामराणाम्,
सा वंशिकास्फुरतु मे हृदि सुन्दरास्या॥
कमलिनी मलिनी मलनी कृता,
भुवि न ते विनते विनते स यः।
विशमलं शमलं शमलंकरो

भवतु मेवतु मेवतु मेदिनीम् ॥

'समय-प्रबन्ध-पदावली' में 'अष्टयाम' विषयक ३१३ अनूठे भावपूर्ण पद हैं। आदि में श्रीवंशीअलि-संबन्धी 'मंगल' भी अपूर्व है। गान-विद्या में भी यह परम दक्ष थे। इनके सभी पद संगीत-संगत और सुसंस्कृत हैं। कुछ पद नीचे उद्धृत किये जाते हैं :

सूहो

जय जय श्रीवन्सीअलि, जे अनुगत[1] भये।
भर्म भूलि जग-द्वन्द, तिमिर हिय के गये॥
प्रेम-सुधारस-सिंधु-मगन मन मीन-से।
निरभय, निरअभिमान, सबन सों दीन-से॥
दीन-से रहैं संतजन सों, रूप में नैना जये[2]।
फिरत झूमत प्रेम-विह्वल मनों मादक-मद-छये॥
बसि सु वृन्दाविपिन संतत सुख सुमन भाये लये।
जय जय 'श्रीवन्सीअलि' जे अनुगत भये॥१॥

जय जय 'श्रीवन्सीअलि' आनँदकंदना।
रसिक-चकोरन हेतु सुप्रगट्यो चंदना[3]॥
बरसत आनदसिंधु अतिहि सुखदाइनो।
हियो-नैन - मन-पुंज - कुमुद - बिगसाइनो[4]॥
कुमुद बिगसत मोद दिन-दिन किरिन कृपा पसारहीं।
द्वंद कलिमल मिटत तम सब जोन्ह[5] हिम संचारहीं॥
झलकैं सुबैनन माधुरी बिबि रसिकमनि बर राजहीं।
जाके सुहृदय प्रकास है यह कलपतरु वह साजहीं॥२॥

जय जय 'श्रीवंसीअलि' आनँद-रूपिनी।
दीनन सदा सहाई सुखद सरूपिनी॥

१ अनुगामी; शिष्य। २ दर्शन में; टक लगाये। ३ चंद्रमा। ४ [illegible] देनेवाली। ५ चाँदनी, प्रकाश।

परमप्रेम, गुन, रूप अमित कवि को कहै ?
मीन, दीन जललीन, सु क्यों अंतहिं लहै ॥
लहै अंत[1] न कोटि कल्पन सारदा मूक[2] रहै ।
जीवन-कृपन[3] की का चलै, विनु तव कृपा जो कछु कहै ॥
चरन-रति जो देहु स्वामिनि, जन्म कौ फल पाइए ।
'श्रीवंसीअलि' अलवेलि जीवन सुजस तुम्हरो गाइए ॥३॥

पद

श्रीवंसीअलि प्रान हमारे ।
हृदय-कमल-संपुट करि राखूँ, अँखियन के वर तारे ॥
चरन-सरोज सुगति मति मेरी, निरधन-धन अनुसारे ।
अलवेली, अलिगन, मधुकर ह्वै, पीवत रस सुखसारे[4] ॥४॥
श्रीवंसीअलि की वलि जाऊँ ।
जाकी चरन-सरन-किरपा तें, वृन्दावन धन पाऊँ ॥
नवनागरि-अलिकुल-चूड़ामनि, रहसि-रहसि[5] दुलराऊँ ।
अलवेली, अलि हिय कौ गहिनो, प्रेम-जराइ[6] जराऊँ[7] ॥५॥

समय-प्रबन्ध

मंगल

भोरहिं उठि अलिरूप विचारूँ ।
अद्भुत नवल किसोर माधुरी, रूप अनूप निहारूँ ॥
करि अस्नान उवटि अँग-अंगनि, नाना भाँति सिंगारूँ ।
भूषन वसन प्रसादी[8] स्वामिनि, पुलकि-पुलकि उर धारूँ ॥
सदा रहूँ ललितादिक संगी, प्रेम-भरी अनुहारूँ ।

१पार । २मूक, मौन । ३असमर्थ । ४सुखों का सार; चिदानंद । ५प्रसन्न हो-हो कर । ६जड़ाव । ७जड़वाऊँ । ८अर्पित किया हुआ पदार्थ ।

अलबेली, श्रीबंसीअलि बलि, महल-टहल[१] अनुसारूँ ॥१॥

भैरव

गुंजन मधुपन, सुनत अली री।
उमगी मनों प्रेम की सरिता, रूप के सिंधु चली री॥
विहँसत बदन हँसत बिगसत-सी, जनु अनुराग-कली री।
रूप अनूप लखैं 'अलबेली' आई वारि भली री॥२॥

भैरव

लीन्हें कर बीन ललित, लाड़िली जगावैं।
प्रेम पुलकि अंग-अंग, दरस सरस अति उमंग;
मधुर-मधुर तान लगी, कान सों सुनावैं॥
झीने पट बदन जोत, कोटि चंद मंद होत,
भूषन द्युति अति उदोत[२], उडुगन चमकावैं।
आरस-रस-भरे नयन, छाई मनु मयन-सयन,
रैन की उनींद[३] पलक, झपकि-झपकि जावैं।
'अलबेलीअलि'-उरसि लाल, लगी मनों रूपमाल,
मंद-मंद हास बदन, चालि[४] में दुरावैं॥३॥

ललित

लला, तूँ अनोखे ख्याल पर्यौ है।
अति हीं नींदर[५] नैन उनींदे, आरस[६]-रंग भर्यौ है।
अति आसक्ति[७]-भर्यौ, नहिं जानत, पुहुप प्रभाव कर्यौ है।
'अलबेली अलि' तृपति न मानत, किहिं रस-रंग ढर्यौ है॥४॥

१ सेवा। २ उदय; प्रकाश। ३ निद्रित। ४ चाल। ५ नींद। ६ आलस्य। ७ अनुराग से भरा हुआ।

पंचम

बने दोउ रसिक रस-रास मंडल सरस,
सरद की रैन सुखदैन माई।
परम पावन पुलिन सरस स्वच्छ स्थलनि,
मदन-मद-दवनि[१] ससि-जोन्ह छाई॥
बनी अति चारु जरतारि सारी सुभग,
किरनि चौकोर मुख लहलहाई।
नीलपट, पीत फहरात अंगनि मिथुन[२],
तड़ित घन नील उद्योतिताई[३]।
लेत ओघर सुघर तालगति तान की,
जगमगत पीक मुख अरुनिमाई॥
ताल मिरदंग लिय संग सजनी खरीं[४],
मुरलि मोहन मधुर सुर बजाई।
देहिं पग थाप[५] आलाप सुर रँगभरीं,
भूषननि अंग छनकनि मिलाई॥
अलक अंगुष्ठ तरजनि गहे पलटि पग,
जात मुसक्यात सुंदर सुहाई।
परी रसभीर[६] दृग धीर नाहिंन धरैं,
निरखि 'अलबेलिअलि' छबि-छटाई॥५॥

छंद चाली

मुरली धुनि बन बाजै। मनो मैन दल साजै॥
मनों मैन दल साजि अंग-अँग नौ सत[७] सरस बनाये।
उमगि चलीं अलिकुल सरिता-सी, स्रवननि सुनि सचुपाये॥
जो करन चहुँ ओर खरीं मिलि, मंडल अति छबि छाजै।

१दमन करनेवाली। २संयुक्त। ३प्रकाश। ४खड़ी हैं। ५ताल। ६आनंद का समूह; अत्यधिक आनंद। ७नौ और सात; सोलह शृङ्गार।

कर कंकन किंकिनि पग नूपुर, मुरली धुनि वन बाजै ॥
खेलत रास रसीले । दंपति छैल छबीले ॥
दंपति-रंग रँगी सँग सजनी महि-मंडल पर डोलैं ।
बीच-बीच नव नागरि सुन्दरि तत्ता थेइ-थेइ बोलैं ॥
भूषन बसन बने अँग-अँगनि, फहरत पट चटकीले ।
करत विलास हास-रस बरसत, खेलत रास रसीले ॥
लिये बीन कल गावैं । पिय मोहनहिं रिझावैं ॥
पिय मोहन दच्छिन दिसि सजनी, बाम भाग कर जोरैं ।
ठुमकि चलनि, डोलनि पदगति की, ताननि मान सु तोरैं ॥
ग्रीवा ढुरनि[1], मुरनि[2] कल कटि की, भृकुटी नैन नचावैं ।
सुन्दरि सरस मधुर पिकबैनी लिये बीन कल गावैं ॥
गौरी[3] राग जमायौ । सब बन घन में छायौ ॥
सब बन घन पूरित अति आनँद मोदीं सकल सहेलीं ।
उडपति थकित, चकित उडमंडल[4], प्रेम-बिवस द्रुमबेली ॥
पद पटकत लटकत अँग-अँग प्रिय, रतिपति प्रगट नचायो ।
गावत सनमुख स्याम मनोहर, गौरी राग जमायो ॥६॥

सोरठ

देखु सखी, इनकौ नव नेह ।
उमड़ि[5] ढेर[6] घन रूप के मानौं, बरसत रस कौ मेह ॥
खान-पान बसनन कल भूषन, भूले सब सुधि देह ।
'अलबेली' नहिं[7] जानति निसिदिन, परे प्रेम के गेह ॥७॥

१ढलना । २मोड़ । ३एक रागिनी जो प्रायः संध्या समय गायी जाती है । ४तारा-मंडल । ५उमड़कर । ६गिर रहे हैं । ७इन प्रेमियों के लेखे न दिन है न रात, सदा एकरस आनंद ही आनंद है । हितहरिवंशजी ने लिखा है—
"चंद्र घटै सूरज घटै, त्रिगुन विस्तार । पै हित हितहरिवंश कौ, घटै न नित्य बिहार ॥"

परज

वृन्दावन बसि यह सुख लीजै।
सात[१] समय की टहल महल बिनु, इकछिन जान न दीजै ॥
परमप्रेम - रस-रास - रसिक जे, तिनही को सँग कीजै।
निबिड़[२] निकुंज विहार चारु अति, सुरस-सुधा दिन पीजै[३] ॥
और भजन साधन में मिथ्या[४], कबहूँ काल न छीजै[५]।
दिन दुलराइ लड़ाइ दुहुन को, 'अलबेली अलि' जीजै[६] ॥८॥

लीनौं वृन्दावन बसि लाहौ[७]।
सेवा टहल महल की निसि-दिन, यह जिय नेम निबाह्यौ।
अद्भुत प्रेम विहार चारु रस, रसिकनि बिनु किनु चाह्यौ।
'अलिवेली अलि' सफल कियो सब, जिन यह रस अवगाह्यौ ॥९॥

ऐसैं काल बितावौं निसिदिन।
भोर साँझि लगि, साँझि भोर.लौं, लाड़ लड़ाय दोऊ जन ॥
छिन विच्छेप[८] न होइ टहल में, कीजै यह अद्भुत पन[९]।
सब रस कौ रस-सार विहार, सुचीन्यौ[१०] हंस रसिकगन ॥
विविध भाँति के और भजन जे, लौन बिना ज्यौं विंजन।
श्रीराधा-पद-कमल-कृपा बिनु, को पावै रस कौ कन ?
श्रीवृन्दावन-वास रासि रस, समय[११] प्रबन्ध परमधन।
'अलबेली' श्रीवंशीअलि बलि, यह मानौं मेरे मन ॥१०॥

१विष्णु-संप्रदाय अथवा वल्लभकुल के अनुसार भगवान् की सात समय की सेवा-पूजा—मंगला, ग्वाल, शृंगार, राजभोग, उत्थापन, आरती, और शयन। २ सघन। ३ तिरप। ४वृथा। ५नष्ट करे। ६जीवन बिताना चाहिए। ७लाभ। ८अंतर। ९प्रतिज्ञा। १०विवेक से चुन लिया। ११अष्टयाम के अनुसार श्री राधाकृष्ण की सेवा।

चाचा हितवृन्दावनदास

छप्पय

श्रीहरिवंस प्रसंस प्रेम-पथ, जो हिय ध्यायो।
रसिक रसायन जानि मानि, सोइ प्रगट लखायो॥
अनुभव अकथ उदार, पार कोऊ नहिं पायो।
देवन-दुरलभ वस्तु, सु दोऊ हाथ लुटायो॥
श्रीराधावल्लभ लाड़िली लाल सुनत मन में प्रबोधि।
'चाचा वृन्दावनदास' के, चार लच्छ पद चारों पयोधि॥

—गोस्वामी राधाचरण

हित वृन्दावनदासजी गौड़ ब्राह्मण थे। इनका निवास-स्थान पुष्कर क्षेत्र था। इनका जन्म संवत् १७६९ में हुआ। श्रीराधावल्लभीय गोस्वामी हितरूपजी इनके गुरु थे। तत्कालीन गोसाईं जी के पिता के गुरुभ्राता होने के कारण, गोसाईं जी की देखा देखी लोग इन्हें 'चाचाजी' कहने लगे और आप 'चाचाजी' नाम से ही प्रसिद्ध हो गये।

महाराजा नागरीदासजी के भाई बहादुरसिंहजी इनके आश्रय-दाता थे। राज्य-कुल में पारस्परिक कलह के कारण चाचाजी विरक्त होकर वृन्दाबन चले आये, और आजीवन वहीं रहे।

चाचाजी का कविता काल संवत् १७९५ से प्रारम्भ होता है। इन्होंने प्रायः चार लाख पद लिखकर ब्रज-साहित्य-रत्नाकर को आकण्ठ भर दिया। यह बात नहीं कि इनकी रचना साधारण सी है। उसमें यत्र-तत्र भाव-वैचित्र्य भाषा-शील और काव्य प्रौढ़ता आदि गुण अच्छी मात्रा में दिखाई देते हैं। इन्होंने ब्रजवासी कृष्ण का गुण-गान किया है, द्वारकावासी यदु-राज का नहीं। इनका 'नख-शिख', 'षट्ऋतु', 'समय-प्रबन्ध', 'छद्म' और अनेक अपूर्व लीलाओं का बड़ा ही विशद वर्णन

है । छद्म-लीलाओं के लिखने में तो चाचाजी ने कमाल किया है। इनके वैराग्य और सिद्धांत-सम्बन्धी पद भी अनूठे हैं । चाचाजी की बानी अभी तक कहीं से भी प्रकाशित नहीं हुई है। कुछ फुटकर पद 'राग-रत्नाकर' आदि संग्रह-ग्रंथों में ही छपे हैं। चारों लाख पद तो मिलते नहीं किंतु लगभग एक लाख पद प्राप्य हैं। क्या ही अच्छा हो, यदि कोई सज्जन किसी योग्य संपादक-द्वारा उत्तम पदों का सुन्दर संग्रह संपादन कराकर इन्हें प्रकाशित करा दे। इनके पदों की एक प्रतिलिपि छतरपुर राज्य के पुस्तकालय में भी थी।

प्राप्य ग्रंथों अथवा संग्रह-ग्रंथों के नाम ये हैं : — १. श्री ब्रज-प्रेमानंद सागर; २. हिंडोरा; ३. छद्म-लीला; ४. चौबीस लीला; ५. श्रीकृष्ण गिरि-पूजन मंगल; ६. श्रीकृष्ण - मंगल; ७. रास - रस; ८. अष्टयाम (८); ९. समय प्रबन्ध (१९); १०. भक्त-प्रार्थनावली; ११. श्रीहितरूप - चरित्रावलि। समुद्र में से दो-चार बूँदों के रूप में चाचाजी के कुछ अनमोल पद नीचे उद्धृत किये जाते हैं।

वीणावारी-लीला

खेमटा

प्रीतम, तुम मो दृगनि वसत हो।
कहा भरोसे ह्वै पूछत हो, कै चतुराई करि जु हँसत हो ?
लीजै परखि स्वरूप आपनो, पुतरिन में तुमहीं जु लसत हो।
वृन्दावन हितरूप, रसिक तुम, कुंज लड़ावत हिय हुलसत हौ ॥१॥*

कान्हरा

यह छवि वाढ़ी री, रजनी, खेलत रास रसिकमनि माई।
कानन वर सौरभ की महकनि, तैसिय सरद-जुन्हाई ॥

*यह पद उत्तम कविता का नमूना कहा जा सकता है। इसमें अवश्य कुछ ऐसा है जो आँखों के आगे भाव का सजीव चित्र खींचकर खड़ाकर देता है।

पुलिन प्रकास मध्य मनि-मंडल, तहँ राजत हरि-राधा।
प्रतिबिंबित तन दुरनि-मुरनि[1] में, तब छबि बढ़त अगाधा॥
गौर-स्याम छबि-सदन वदन पर, फबि रहे स्रम-कन ऐसे।
नील कनक-अंबुज अंतर धरे, ओपि जलज-मनि जैसे॥
झलकत हार, चलत[2] कल कुंडल, मुख मयंक-ज्यौं सोहैं।
वारों सरद निसा ससि केतिक, मैन कटाच्छनि मोहैं॥
थेइ-थेइ[3] वचन वदति[4] पिय प्यारी, प्रगटति नृत्य नई गति।
'वृन्दावन हित' तान गान रस, अलि हित रूप कुसल अति॥२॥

हौं बलि जाउँ, मुख सुख-रास।
जहाँ त्रिभुवन-रूप-सोभा, रीझि कियौ निवास॥
प्रतिबिंब तरल कपोल कमनी[5], जुग तरौना कान।
सुधा-सागर मध्य बैठे, मनौं रबि जुग न्हान[6]॥
छबि-भरे नवकंज-दल से, नेह-पूरित[7] नैन।
पूतरी मधु मधुप-छौना, बैठि भूले गैन[8]॥
कुटिल भ्रकुटी अमित सोभा, कहा कहौं बिसेख।
मनहुँ ससि पर स्याम बदरी[9] जुगल किंचित रेख॥
लसतभाल बिसाल ऊपर, तिलक नगनि जराय।
मनहुँ चढ़े विमान ग्रहगन, ससिहि भेंटत जाय॥
मंद मुसुकनि, दसन दमकनि, दामिनी दुति हरी।
'वृन्दावन हित' रूप स्वामिनि[10] कौन विधि रचि करी॥३॥

सोभा केहि बिधि बरनि सुनाऊँ
इक रसना, सोउ लोचन-हानी[11], कहो पार क्यों पाऊँ॥
अङ्ग-अङ्ग लावन्य-माधुरी, बुधि-बल किती बताऊँ!

१छिपने और मुड़ने में। २हिलते-डुलते हैं। ३नृत्य-संबंधी गति का शब्द विशेष। ४बोलती हैं। ५कमनीय, सुन्दर। ६नहाने के लिए। ७भींगे। ८गमन। ९बादल का छोटा-सा टुकड़ा। १०राधिकाजी से तात्पर्य है। ११रहित, हीन।

अतुलित सुनति कहि गये क्यों, दृग पल रजि धरि जु उचाऊँ ॥
नव वय-संधि[1] दुहुनि नित उलहत, जब देखौ तब औरे ।
यहि कौतुक मेरो सुनि सजनी, चित न रहत इक ठौरे ॥
लोक न सुनी दृगन नहिं देखी, ऐसी रूप निकाई[2] ।
मेरी तेरी कहा चली, खग-मृग-मति प्रेम बिकाई ।
कबहूँ गौर स्याम तन[3] कबहूँ, लोचन प्यासे धावैं ॥
कह घटि जात सिंधु कौ, पंछी जो चौंचन भरि लावैं ॥
सुन्दरता की हद मुरलीधर, बेहद छवि श्री राधा ।
गावै वपु अनंत धरि सारद, तऊ न पूजै साधा[4] ॥
न्याइ काम करवट ह्वै निकसत, पिय अरु रूप गुमानी ।
'वृन्दावन हितरूप' कियो वस, सो कानन की रानी ॥४॥

पद

भजन भावना होय न परसी, प्रेम नहीं उर कपटी ।
कुआँ[5] परयौ आकास उड़त खग, ताको करत जु झपटी ॥
रसिक कहावैं, कोई जिनके जुगल[6] मिलन की चटपटी[7] ।
'वृन्दावन हितरूप' कहाँ लगि, वरनौं सृष्टि अटपटी ॥५॥
देखा-देखी रसिक न ह्वै है, रस - मारग है बंका[8] ।
कहा सिंह की सरवर करिहैं, गीदर फिरै जु रंका[9] ?
असहन[10] निंदा करत पराई, कबौं न मानी संका ।
'वृन्दावन हितरूप' रसिक जिन, दिय अनन्य - पथ डंका ६३॥

१पौगंड और किशोरावस्था का मेल । वय-संधि पर बिहारी ने क्या ही मार्के का दोहा लिखा है : "छुटी न सिसुता की झलक, झलक्यौ जोवन अंग । दीपति देह दुहून मिलि, मनौं ताफ़ता रंग ।" २शोभा । ३तरफ । ४इच्छा । ५कुआँ ......उड़ता—असमर्थ होते हुए भी अपने को बड़ा पुरुषार्थी मान रहा है । ६श्रीराधाकृष्ण । ७अत्यंत विरहासक्ति । ८बांका, टेढ़ा, कठिन । ९बेचारा । १०असहाय । चाचाजी के यह पद्य (१२-१४ संख्या) अनन्य-सिद्धांत-प्रतिपादक हैं ।

भगवतरसिक

छप्पय

श्रीस्वामी हरिदास, रसिक-नृप को जो मारग।
ताहि धारि नित कुञ्ज-केलि करि भो भव-पारग॥
जग-वैभव मुख मोरि, कियौ करवा सों नातौ।
स्यामा-स्याम लड़ाइ फिरै, ब्रजवीथिनि मातौ।
विरचे अनन्य निस्चय-रहस, अष्टयाम पद सामयिक।
श्रीललितमोहिनीदास के,- कृपापात्र भगवतरसिक॥

वियोगी हरि

श्री भगवतरसिकजी* का जन्म-संवत् अनुमानतः १७६५ सिद्ध होता है। टट्टी-संस्थान के मुख्याचार्यों में श्रीस्वामी ललितकिशोरीजी के शिष्य श्रीस्वामी ललितमोहिनीदासजी के कृपापात्र भगवतरसिकजी थे। सहचरिशरणजी ने स्वरचित आचार्योत्सव सूचना में इन महात्माओं का अवतार और अंतर्धान काल इस प्रकार दिया है:

ललितकिसोरी ललित प्रगट पट, अगहन वदि आठैं दिन।
सम्वत नौ तैंतीस मनोहर, ताहि न भूलौं इक छिन।
अंतरध्यान पौष वदि छठि कों, रसिकन के उर दाहू॥
वर्ष अठारह सौ तेईसा, हर्ष हर्यौ सब काहू॥

*'मिश्रबंधुविनोद' में भ्रमवश भगवतरसिकजी को स्वामी हरिदासजी का शिष्य लिख दिया गया है।

ललितमोहिनी प्रभा सोहिनी, आस्विन सुदि दसमी कों।
कियौ प्रकास सरद जनु चंद्रम, बरसायौ सु अमी कों॥
संवत् सत्रह सौ सु असी कौ, अति प्रमोद कौ दानी।
सरन माघ वदि इकदसमी कों, सबही ने यह जानी॥
फागुन वदि नवमी कों प्रमुदित, रंगमहल कों गमने।
वरस अठारह सौ अट्ठावन, निरखत राधारमने॥

टट्टी-संस्थान के अष्टाचार्यों में सब से अंतिम यही ललितमोहिनी-दासजी थे। भगवतरसिकजी ने गद्दी का अधिकार नहीं लिया। अहर्निश भगवद्भजन में ही मस्त रहे। भगवतरसिकजी ने वैराग्य और शृङ्गार दोनों का ही सुन्दर वर्णन किया है। इनकी सिद्धांती कुंडलियां तो अपूर्व ही हैं। इनकी कविता में निष्पक्षपात, सच्चा त्याग, प्रत्यक्षानुभूति और अनन्यता अच्छी मात्रा में दृष्टि आती है। इनका "अनन्य-निश्चयात्मक" ग्रंथ लखनऊ-निवासी लाला केदारनाथजी वैश्य ने छपवा कर वितरण किया था।

थोड़े से पद्य आपकी बानी में से लेकर नीचे लिखे जाते हैं :

छप्पय

सब कालन कौ काल, लोकपालन कौ पालै।
आपुन सदा स्वतंत्र, नियंता बुद्धि विसालै॥
उपजावै, सब विस्व रमैं, फिर ताके माहीं।
देखतभूली१ करै, परै भूलन में नाहीं॥
षट् ऐश्वर्य समर्थ हरि, सो भगवत, असरन-सरन।
तन मन जन की वेदना२, हरहु मोद-मंगल करन॥१॥

१ भ्रमात्मक ज्ञान, अविद्या। २ कष्ट।

कुञ्जन तें उठि प्रात गात जमुना में धोवै।
निधिवन[1] करि दंडौत, बिहारी[2] कौ मुख जोवै॥
करै भावना बैठि स्वच्छ थल रहित उपाधा[3]।
घर-घर लेइ प्रसाद लगै जब भोजन-साधा[4]॥
संग करै 'भगवत रसिक' कर करुवा, गूदरि गरै[5]।
वृन्दावन विहरत फिरै, जुगुलरूप नैननि भरै॥२॥

कुंडलिया

साँचे श्रीराधारमन, झूठो सब संसार।
बाजीगर[6] कौ पेखनो, मिटत न लागै बार॥
मिटत न लागै बार, भूति की संपति जैसे।
मिहरी[7] नाती पूत, धुवाँ कौ धौरह[8] तैसे॥
'भगवत' ते नर अधम, लोभ-वस घर-घर नाचे।
झूँठे गढ़ै सुनार, मोम के बोलै साँचे[9]॥३॥
नित्य-बिहारी की कला, प्रथम पुरुष[10] अवतार।
तासु अंस माया भई, जाकौ सकल पसार॥
जाकौ सकल पसार, महत्तनु[11] उपज्यौ जातें।
अहंकार उत्पत्ति भई, स्तुति कहै जु तातें॥
अहंकार त्रैरूप[12] भयौ, सिव बिधि असुरारी[13]।
भगवत सब कौ, तत्व-बीज श्रीनित्यविहारी॥४॥
आचारज ललिता[14] सखी, रसिक हमारी छाप।
नित्यकिसोर-उपासना, जुगुल-मंत्र कौ जाप॥

१एक कुञ्ज का नाम जहां बैठ कर स्वामी हरिदासजी प्रायः भजन किया करते थे। २बांकेबिहारी जी से तात्पर्य है; स्वामी हरिदासजी की आराध्य थी कृष्ण-मूर्ति। ३उपाधि। ४इच्छा। ५गले में। ६जादूगर। ७स्त्री। ८धुरहरा। ९गढ़ने ढालने का सांचा। १०शेषशायी नारायण। ११महत्तत्व। १२सत्व, रज और तम। १३विष्णु। १४ललिता से यहां स्वामी हरिदासजी से तात्पर्य है।

जुगुल-मंत्र कौ जाप, वेद रसिकन की बानी।
श्रीवृन्दावन, धाम, इष्ट स्यामा महरानी॥
प्रेम-देवता मिले बिना, सिधि होइ न कारज।
भगवत, सब सुखदानि, प्रगट भे रसिकाचारज[1]॥५॥
नहिं हिंदू, नहिं तुरक हम, नहिं जैनी, अँगरेज।
सुमन सँवारत रहत नित, कुञ्ज-विहारी-सेज॥
कुञ्ज-विहारी-सेज, छाँड़ि, मग दच्छिन[2] डेरी[3]।
रहैं विलोकति केलि, नाम 'भगवत' अलि मेरी॥
श्रीललिता सखि पाय कृपा, सेवत सुख स्यामहिं।
नहिं काहू सों द्रोह, मोह काहू सों है नहिं॥६॥
जैसे मिले कुधातु के, लगै कंचनै दाग।
दूरि करै सब कालिमा, जबहीं मिलै सुहाग[4]॥
जबहीं मिलै सुहाग, रीति ललिता की जानौ।
ज्यौं जल खाड़ समाइ, फिरै करवट[5] उतरानौ॥
'भगवतरसिक' अनन्य महल में राजत ऐसे।
ज्यों दृग अंजन बसै, बरौनी बाहिर तैसे॥७॥
चसमा नित्य विहार कौ, दियौ विहारिनि[6] मोहि।
भई प्रीति-परतीत उर, अंतर लीनों जोहि[7]॥
अंतर लीनों जोहि, निरंतर निज धन पायौ।
नारद सुक सनकादि, 'नेति' निगमागम गायौ॥
'भगवत' यह रस-रीति, प्रगट परिपूरन ससमा[8]।
प्रेम[9]- पियूष न स्रवै, भाव-रूपी बिनु चसमा॥८॥

१रसिकों के आचार्य स्वामी हरीदासजी। २वैदिक मार्ग। ३वाम मार्ग, तांत्रिक मार्ग। ४सुहागा; आग में सोना के साथ सुहागा डाल देने से सोने का सब मैल कट कर दूर हो जाता है। ५कूड़ा। ६श्रीराधिकाजी। ७देख लिया। ८चन्द्रमा। ९प्रेम...स्रवै—बिना भाव के प्रेम-रूपी अमृत स्रवित नहीं होता।

देखे हाट-बजार सब, जहँ-तहँ पोति[1] बिकाय।
लिये जवाहिर जौहरी, बिनु गाहक फिरि जाय॥
बिनु गाहक फिरि जाय, बलाहक[2] ऊसर बरसैं।
छप्पन भोग बनाय, कहा बनचर के परसैं॥
ऐसेहि कर्मठ[3] लोग, धर्म-रत बरन बिसेखे।
'भगवतरसिक' अनन्य, स्वाद-भेदी[4] कहुँ देखे॥९॥
अनुभव बिनु जग आँधरो, वस्तु न दीखै कोइ।
मुकुर दिखाये होत कह, आनन जात न जोइ॥
आनन जात न जोइ, अरथ बानी कौ कहिबौ।
सुने न होइ प्रतीति, बिना देखैं उर दहिबौ॥
बहु बिधि मरदन करै, नहीं चैतन्य होइ शव।
'भगवत' रस की बात कहा, जानै बिनु अनुभव॥१०॥
काहू दई न लई कोउ, विद्यमान दरसाय।
ज्यौं मनियारौ-उरग[5] मनि, लै आवै लै जाय॥
लै आवै लै जाय, वस्तु रसिकन की ऐसे।
निसिदिन सेवत रहैं, कृपन निज संपति जैसे॥
'भगवतरसिक' सुकेलि, स्याम-स्यामा अवगाहू।
रही दृगनि भरिपूर, भेद जान्यौ नहिं काहू॥११॥
'भगवतरसिक' अनन्य मति, गौर स्याम रँगरात।
अमरकोस[6] से धूम लौं, मृगमद[7] छाँड़ि न जात॥
मृगमद छाँड़ि न जात, गही ज्यों हारिल[8] लकरी।
चुम्बक लोह न तजै, दारु पावक जिमि पकरी॥

१ कांच के छोटे-छोटे दाने। २ मेघ। ३ हृदयहीन, कोरे कर्मकांडी। ४ रस-रहस्य के ज्ञाता। ५ मणिवाला साँप। ६ अमरबेल। ७ कस्तूरी। ८ एक चिड़िया। प्रवाद है कि हारिल कभी भूमि नहीं छूती; जब बैठती है तब लकड़ी पर, जिसे वह सदा अपने साथ रखती है।

गुन बयारि तनु लगै, डिगै नहिं मनसा नग[1] वत[2] ।
संतत स्यामा-स्याम, धाम कीनों उर भगवत ॥१२॥
चलनी में गैया दुहैं, दोष दई कों देहिं ।
हरि-गुरु-कह्यौ न मानहीं, कियौ आपनो लेहिं ॥
कियौ आपनो लेहिं, नहीं यह ईस्वर-इच्छा ।
देस-काल-प्रारब्ध-दैव कोउ करइ न रच्छा ॥
मूरख मरकट[3] मूठ कीर हठि, तजै न नलिनी ।
कहि 'भगवत' कह करै भाग भौंड़े[4] की चलनी[5] ॥१३॥
अनहोनी नहिं होइ कछु, होनी मिटै न कोय ।
देखौ सीता दसरथै, अति समरथ तहँ दोय ॥
अति समरथ तहँ दोय, राम भरता, वसिष्ठ गुर ।
जदुबंसिन कौ नास भयो, देखत परमेसुर ॥
पारीछत[6] उर ब्याल, मृतक पहिरायौ मौनी[7] ।
'भगवत' इच्छा जानि, नहीं यामें अनहोनी ॥१४॥
जात-जात में जात सब, सब हीं जाति कुजाति ।
रसिक अनन्य अजात की, कहौं कौन-सी जाति ॥
कहौ कौन-सी जाति, सजाती मिलै सुजानै ।
विमुख विजाती देह-खेह[8] की जाति बखानै ॥
निज स्वरूप नहिं लखै, विवादी बात-बात में ।
'भगवत' भगत न तेइ, जगत सब जात-जात में ॥१५॥

१पहाड़ । २समान । ३बंदर । ४मूर्ख, अभागा । ५आटा छानने की चलनी; धार्मिक आचार । ६अभिमन्यु के पुत्र महाराजा परीक्षित। ७एक ध्याना-वस्थित मुनि, जिन्हें परीक्षित ने मरा हुआ साँप पहना दिया था। इस पर मुनि-पुत्र ने राजा को यह शाप दे दिया कि वह सातवें दिन साँप के काटने से मर जायेगा । शुकदेवजी के मुखारविंद से श्रीमदभागवत सुनते-सुनते सातवें दिन ब्रह्मशाप बस राजा परमधाम को सिधार गये । ८पांचभौतिक शरीर ।

पैसा पापी साधु कों परसि लगावै पाप।
विमुख करै गुरु इष्ट[1] तें, उपजावै संताप॥
उपजावै संताप ग्यान, वैराग्य बिगारै।
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, मत्सर छ्ह्वारै[2]॥
सब द्रोहिन में सिरे[3], भगत-द्रोही नहिं ऐसा।
'भगवतरसिक' अनन्य, भूल जिन परसौ पैसा॥१६॥
आवै जो सो चून कों, जहँ जइए तहँ चून।
दियो चून चसमा चखनि, भगति-भाव भो नून[4]॥
भगति-भाव भो नून, साधु कौ रूप न सूझै।
रहे मान मद बूड़ि, और की औरै बूझै॥
हरि गुरु साधु बिहाय, आपनी प्रभुता गावै।
'भगवत' स्यामा-स्याम, कहौ उर कैसैं आवै॥१७॥
गेही[5] संग्रह परिहरै, संग्रह करै बिरक्त।
हरि गुरु द्रोही जानिए, आज्ञा तें वितिरक्त[6]॥
आज्ञा तें वितिरक्त होय जमदूत हवालैं।
अष्टाविंसति निरय[7], अधोमुख करि तहँ घालैं॥
'भगवतरसिक' अनन्य, भजौ तुम स्याम सनेही।
संग दुहुन कौ तजौ, वृत्ति[8] बिनु बिरत[9] रु[10] गेही॥१८॥
जाकों जैसी लखि परी, तैसी गावै सोय।
वीथीं भगवत मिलन की, निह्चय एक न होय॥
निह्चय एक न होय, कहैं सब पृथक हमारी।
स्रुति स्मृति भागौत, साखि गीतादिक भारी॥
भूपति सबनि समान, लखै निज परजा ताको।
जाकौ जैसे भाव, सुभासै तैसी ताको॥१९॥

१ परमेश्वर। २ परिपूर्ण करता है। ३ प्रधान शिरोमणि। ४ न्यून, कम। ५ गृहस्थ। ६ हीन। ७ रौरव, कुंभीपाक इत्यादि अट्ठाईस नरक। ८ जीविका स्वरूप में। ९ विरक्त। १० और।

हाथी देख्यौ अँधरिन, निज मन के अनुमान।
कान पूँछ पग पीठि गहि, कर्‌यौ सवनि परनाम॥
कर्‌यौ सवनि परनाम, बिटौरा[1] रूप पेटतर।
झगरैं संत महंत, निगम-आगम पुरानवर॥
'भगवतरसिक' अनन्य, दृष्टि-वर[2] कीजै साथी।
जिन देख्यौ गुन रूप, अंग हिय में हरि हाथी॥२०॥

चेला काहू के नहीं, गुरु काहू के नाहिं।
सखी लड़ैती लाल की, रहैं महल के माहिं॥
रहैं महल के माहिं, टहल सब करैं निरंतर।
दंपति अति अकुलाहिं, पलक कहुँ परै जु अंतर॥
'भगवत' भगवत कहैं, नहिं हम बिन चेला[3]।
ताते हम परिहरे देह-मानी[4] गुन चेला॥२१॥

नहीं द्वैत[5] अद्वैत[6] हरि, नहीं विशिष्टाद्वैत[7]।
बँधे नहीं मत-वाद में, ईस्वर इच्छा द्वैत॥
ईस्वर इच्छा द्वैत, करैं सब ही कौ पोषन।
आप रहैं निरलेप, भगत सों मानैं तोषन[8]॥
'भगवतरसिक' अनन्य संग डोलैं गलबाहीं।
करैं मनोरथ-सिद्धि, उचित अनुचित कछु नाहीं॥२२॥

सतगुरु सब्द सुस्वाति-जल, सिष्य-सीप-हिय होय।
सकुचि-मीन[9] टक्कर लगै, तब वह मुकता होय॥
तब वह मुकता होय, सजाती संगति जैसे।

१ढेर। २अनन्य निश्चयात्मक दिव्य दृष्टि। ३केलि; नित्य विहार। ४शरीर को ही आत्मा मानने वाले; अविद्याग्रस्त। ५श्रीमाध्वसंप्रदाय का सिद्धांत, जिसमें जीव और ब्रह्म पृथक्-पृथक् माने गये हैं। ६श्रीशांकर-सिद्धांत, जिसमें केवल ब्रह्मसत्ता स्वीकार की गयी है। ७श्रीरामानुजीय सिद्धांत, जिसमें प्रकृति एवं जीव-विशिष्ट अद्वैत ब्रह्म की सत्ता सिद्ध की गयी है। ८प्रसन्नता। ९शील रूपी मछली।

नतरु तोय कौ तोय, होय नहिं मुकतो ऐसे ॥
'भगवतरसिक' अनन्य वधू गर्भ धरैं उरु ।
सदा सहायक सासु, स्वामियाँ जानौ सतगुरु ॥२३॥
माँछी, माछर, माँगने[1], मूसे, वादर, चोर ।
काँटे, दीमक, जीव कों जागा[2] दस दुख घोर ॥
जागा दस दुख घोर, वास क्यों कीजै वन में ।
असन-वसन बिनु मिले, रहै न धीरज मन में ॥
'भगवतरसिक', अनन्य-मिलन दुस्तर-स्रुति साछी[3] ।
विहरत स्यामा-स्याम, जहाँ नहि माछर-माँछीं ॥२४॥
कौवा धोये हंस नहिं, होइ न बछरा स्वान ।
रासभ[4] तें हय होइ नहिं, जो धोवै भगवान ॥
जो धोवै भगवान, साखि देखौ दुरजोधन ।
हरि आये बनि दूत गये फिरि, भयौ न वोधन[5] ॥
'भगवतरसिक' अनन्य होत्र नहिं वाँभन नौवा ।
गुन-सुभाव नहिं मिटै, हंस-संगति करि कौवा ॥२५॥
काटै कूकर वावरो, जाकों लागै भूत ।
करै अमल[6] तहँ आपनो, दावि परायो पूत ॥
दावि परायो पूत, प्रेम की यह गति जानौ ।
जिय[7] तें ईश्वर होय, साखि ब्रजवधू[8] बखानौ ॥
'भगवतरसिक' अनन्य होय. अद्भुत रस चाटै ।
स्यामा-स्याम-विहार नित्य, तिहिं काम न काटै ॥२६॥
साँचौ नहिं निज धर्म कोउ, कासों करिए प्रीति ।
व्यभिचारी[9] सब देखिए, आवति नहिं परतीति ॥

१ भिखारी । २ जगह । ३ साक्षी ४ गदहा । ५ ज्ञान । ६ शासन; नशा ; ७ जीव । ८ गोपिकाएँ, जीव से ब्रह्म-रूप होकर 'कृष्णोऽहं' कहने लगी थीं । ९ मन-मुखी, अनेकमार्गी । * साहित्य-सागर में [illegible] सुन्दर पाठ्य [illegible] ।

आवति नहिं परतीति, दीजिए काकों निज धन।
मन-माफिक नहिं मिलै, खोजि देखे बसती-बन॥
'भगवतरसिक' अनन्य संग की सहै न आँचौ[1]।
कूकर हाड़ चबाय, सिंह मारै गज साँचौ॥२७॥
घर-घर में गुरु बैद सब, बिन गुरु बैद न कोय।
औषदि मंत्र बतावहीं, शीघ्र सिद्ध यह होय॥
सीघ्र सिद्ध यह होय, बहुत भाँतिन अजमायौ।
कह्यौ हमारो करौ, लेहु सुख मन कौ भायौ॥
रोगी बर गुरु हीन करै, कह काकों परिहर।
निहचै 'भगवत' करै एक, नहिं डोलैं घर-घर॥२८॥

पद

परम पावन करुवा[2] कौ पानी।
जाके पियत हृदय में आवत, मोहन-राधा रानी॥
अनुभव प्रगट होत क्रीड़ा कौ, मोद बिनोद कहानी।
'भगवतरसिक' निकुंज महल की, टहल मिलै मनमानी॥२६॥

लखी जिन लाल की मुसक्यान।
तिनहिं बिसरी वेद-विधि, जप, जोग, संयम, ध्यान॥
नेम, व्रत, आचार, पूजा, पाठ, गीता-ग्यान।
'रसिक भगवत' दृग[3] दई असि,[4] ऐंचिकै मुख म्यान॥३०॥

भक्त-नामावली

पद

हमसों इन साधुन सों पंगति[5]।
जिनकौ नाम लेत दुख छूटत, सुख लूटत तनु संगति।

१भाग। २इस संप्रदाय के महात्मा बरतन के नाते केवल एक करुवा रखते थे। ३दृग...म्यान मुख-रूपी म्यान से मुसक्यान-रूपी तलवार खींच कर आँखों को हलाल कर डाला। ४तलवार। ५पंक्ति, जाति बिरादरी।

मुख्य महंत काम-रति, गनपति, अज, महेस, नारायन[1]।
सुर, नर, असुर, सुमुनि, पंछी, पसु, जे हरि-भगति-परायन ॥
वालमीकि, नारद, अगस्त, सुक, व्यास सूत कुल-हीना[2]।
सबरी, स्वपच, वसिष्ठ, विदुर, विदुरानी[3], प्रेम-प्रवीना ॥
गोपी, गोप, द्रौपदी, कुंती, आदि पंडवा, ऊधौ[4]।
विस्नुस्वामि[5], निंबारक, माधौ रामानुज मग सूधौ ॥
लालाचारज, धनुरदास, कूरेस भावरस-भीजे।
ग्यानदेव गुरु, सिष्य तिलोचन, पटतर कों केहि दीजै ?
पदमावती-चरन कौ चारन[6], कवि जयदेव जसीलौ।
चिंतामनि चित रूप लखायौ, विल्वमंगलहि रसीलौ ॥
केसव भट्ट, श्रीभट्ट, नारायन भट्ट, गदाधर भट्टा।
विट्ठलनाथ, वल्लभाचारज, व्रज के गूजर जट्टा[7] ॥
नित्यानंद, अद्वैत, महाप्रभु, सची[8]-सुवन चैतन्या।
भट्टगुपाल, रघुनाथ गुसाईं, मधू गुसाईं धन्या ॥
रूप, सनातन, भजि वृन्दावन तजि दारा सुत संपति।
व्यासदास, हरिवंस गुसाईं दिन दुलराये दंपति ॥
श्रीस्वामी हरिदास हमारे, विपुल[9], विहारिनि-दासी।
नागरि, नवल माधुरी वल्लभ नित्यविहार-उपासी ॥
तानसेन, अकबर, करमैती, मीरा करमाबाई।
रतनावती, मीर, माधौ, रसखानि रीति रस गाई ॥
अग्रदास, नाभादि सखी ये, सबै राम-सीता की।

१ शेषशायी नारायण; श्रीकृष्णोपासकों के मतानुसार नारायण नित्यविहारी के अंश-मात्र हैं। २ शूद्र। ३ महात्मा विदुर की सती स्त्री। ४ श्रीकृष्ण के अनन्य सखा उद्धव। ५ विष्णुस्वामि...रामानुज—क्रमशः शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत, द्वैत और विशिष्टाद्वैत वैष्णव सिद्धांतों के प्रवर्तक। ६ भाट, यश वर्णन करनेवाला। ७ जाट। ८ श्रीचैतन्य महाप्रभु की माता। ९ विट्ठलविपुल।

सूर, मदनमोहन, नरसी अलि तसकर[1] नवनीता की ॥
माधौदास, गुसाईं तुलसी, कृष्णदास, परमानँद ।
विस्नुपुरी, श्रीधर, मधुसूदन, पीपा; गुरु रामानँद ।
अलि भगवान, मुरारि रसिक, स्यामानँद, रँका बंका ।
रामदास, चोधर, निष्किंचन[2] भक्त अनन्य निसंका ।
लाखा अंगद भक्त, महाजन गोविंद, नंद-प्रबोधा[3] ।
दास मुरारि, प्रेमनिधि, वीठलदास मथुरिया योधा[4] ॥
लालमती, सीता, प्रभुता झाली गोपाली बाई ।
सुत विष दियौ पूजि सिलपिल्ले, भक्ति रसीली पाई ॥
पृथ्वीराज, खेँमाल, चतुरभुज राम-रसिक रस-रासा ।
आसकरन, मधुकर जैमल नृप, हरीदास, जनदासा ॥
सैना, धना, कबीरा, नाभा, कूबा, सदन कसाई ।
बारमुखी[5], रैदास सभा में, सही न स्याम सहाई ॥
चित्रकेतु, प्रह्लाद, बिभीषन, बलि अह बाजै[6] बावन ।
जामवंत हनुमंत, गीध, गुह, किये राम जे पावन ॥
प्रीति, प्रतीति, प्रसाद साधु सों इन्हैं इष्टगुरु जानों ।
तजि ऐस्वर्य, मृजाद[7] बेद की तिनके हाथ बिकानों ॥
भूत भविष्य, लोक चौदह में भये होयँ हरि प्यारे ।
तिन-तिन सों ब्यौहार हमारो, अभिमानिन तें न्यारे[8] ॥
'भगवतरसिक' रसिक-परिकर करि, सादर भोजन पावैं ।
ऊँचो कुल आचार अनादर, देखि ध्यान नहिं आवैं ॥३१॥*

१माखनचोर, श्रीकृष्ण । २परमत्यागी । ३स्वामी प्रबोधानंद । ४भक्त-वीर ५गिजा नाम की वेश्या । ६प्रसिद्ध है । ७मर्यादा । ८विरक्त ।

*इस पद में आये हुये भक्तों की कथा नाभा-कृत भक्तमाल, उत्तरार्द्ध भक्तमाल तथा नवभक्तमाल में लिखी है । यहाँ पर यदि प्रत्येक भक्त की कथा लिखी जाय, तो एक पोथा बन जायगा । अतएव स्थल-संकीर्णता-वश हम इनकी

सारङ्ग

वेषधारी[1] हरि के उर सालैं[2] ।
परमारथ स्वपनें नहिं जानैं, पैसन ही कों लालैं ॥
कबहुँक वकता ह्वै बनि बैठैं, कथा भागवत गावैं ।
अर्थ-अनर्थ कछू नहिं भासैं, पैसन ही कों धावैं ॥
कबहुँक हरि-मंदिर कों सेवैं, करैं निरंतर वासा ।
भाव-भगति को लेस न जानैं, पैसन ही की आसा ॥
नाचैं-गावैं, चित्र बनावैं, करैं काव्य चटकीली[3] ।
साँच बिना हरि हाथ न आवैं, सब रहनी है ढीली[4] ॥
बिना बिवेक, विराग, भगति बिनु, सत्य न एकौ मानौ ।
'भगवत' विमुख कपट चतुराई, सो पाखंडै जानौ ॥३२॥

पद

इतने गुन जामें सो संत ।
श्री भागवत मध्य जस गावत, श्री मुख कमलाकंत[5] ॥
हरि को भजन, साधु की सेवा, सर्वभूत पर दाया ।
हिंसा लोभ दंभ छल त्यागै, विष-सम देखै माया[6] ॥
सहनसील, आसय उदार अति, धीरज सहित विबेकी ।
सत्य बचन सब कों सुखदायक, गहि अनन्य-व्रत एकी ॥
इन्द्रीजित अभिमान न जाके, करै जगत कों पावन ।
'भगवतरसिक' तासु की संगति, तीनहुँ ताप-नसावन ॥३३॥

पद

हमारो वृन्दावन उर और ।
माया काल तहाँ नहिं व्यापै, जहाँ रसिक सिरमौर ॥

प्रासंगिक कथा देने में असमर्थ हैं ।

१कपटमय साधु-भेष धारण किये हुए । २कष्ट पहुँचाता है । ३भड़कीली-लुभावनी । ४व्यर्थ । ५लक्ष्मीनाथ विष्णुभगवान् । ६काम-कांचन । ७चंचलता ।

छूटि जाति सत-असत-वासना, मन की दौरादौर[1] ।
'भगवतरसिक' बतायौ श्रीगुरु[2], अमल अलौकिक ठौर ॥३४॥

काफी

वलि जैहौं श्री रसिकाचारज[3] ।
नित विहार उद्धार कियौ जिन, मथिकैं हृदय-सिंधु वर वारज ॥
भ्रम, तम, सम[4] सब हरे हमारे, कर गहि सकल सँभारे कारज ।
'भगवतरसिक' प्रसंसित कीन्हें, स्यामास्याम सहायक आरज[5] ॥३५॥

गौरी

नमो, नमो वृन्दावन-चंद ।
नित्य अनंत अनादि एकरस, पिय-प्यारी विहरत स्वच्छंद ॥
सत्त[6] चित्त[7]-आनंद[8]-रूपमय, खग, मृग, द्रुम वेली वर वृन्द ।
'भगवतरसिक' निरंतर सेवत, मधुप भये पीवत मकरंद[9] ॥३६॥

अरिल्ल

दुख-सुख भुगतै देह, नहीं कछु संक है ।
निंदा-स्तुति करौ राव क्या रंक है ॥
परमारथ व्यौहार बनौ कै[10] ना बनौ ।
अंजन ह्वै मम नैन 'रसिकभगवत' सनौ[11] ॥३७॥

टोड़ी

तुव[12] मुख नैन कमल अलि मेरे ।
पलकन[13] लगत पलक[14] विनु देखे, अरबरात[15] अति फिरत न फेरे ॥

१चंचलता । २श्रीललितमोहिनीदासजी से तात्पर्य है । ३रसिकों के आचार्य श्रीस्वामी हरिदासजी । ४संशय । ५आर्य । ६अस्ति; भाव । ७चैतन्य । ८त्रिकालाबाधित, एकरस, अखंड आनंद । ९ये राग । १०अथवा । ११लीन रहो । १२तुव...मेरे—तेरे मुख रूपी कमल का पराग पान करने के लिए मेरे नेत्र भ्रमर रूप हैं । १३आँखों की पलक । १४एक पल । १५फड़फड़ाते हैं ।

पान करत मकरंद रूप-रस, भूलि नहीं फिर इत-उत हेरे।
'भगवतरसिक', भये मतवारे, घूमत रहत छके मद तेरे ॥३८॥

टोड़ी

तुव मुख चंद चकोर ये नैना।
अति आरत अनुरागी, लंपट[1], भूलि गई गति, पलहुँ लगै ना ॥
अरबरात मिलिबे कों निसिदिन, मिलेइ[2] रहत मनु कबहुँ मिलै ना ॥
'भगवतरसिक' रसिक की बातैं, रसिक बिना कोउ समुझि सकै ना ॥३६॥

दोहा

काया कुञ्ज, निकुञ्ज मन, नैन द्वार अभिराम।
'भगवत' हृदय सरोज सुख, बिलसत स्यामा स्याम ॥४०॥
जीभ जुगुल नामहिं जपै, दृगनि विलोकै रूप।
उदर भरै अलिवृत्ति[3] सों, छाँड़ि स्वान मृग भूप ॥४१॥
जप तप तीरथ दान व्रत, जोग जग्य आचार।
'भगवत' भक्ति अनन्य विनु, जीव भ्रमत संसार ॥४२॥
वेदनि[4] खोवै वैद सों, गुरु गोविंद-मिलाप।
भूख भजै भोजन सोई, 'भगवत' और खिलाप[5] ॥४३॥
'भगवत' जन[6] स्वाधीन नहिं, पराधीन जिमि चंग[7]।
गुन[8] दीने आकास में, गुन लीने अँग-संग ॥४४॥
'भगवत', जन चकरी कियौ, तुरत[9] समाई डोर।
खेलति निसिदिन लाड़िली,[10] कबहुँ न डारति तोर ॥४५॥
ग्राम-सिंह भूलो बिपिन, देखि सिंह कौ रूप।

१लोभी। २मिलेइ...मिलैन—दिन-रात रहते तो सामने ही हैं, किंतु प्रेम की तृप्ति न होने के कारण सदा यही शङ्का बनी रहती है कि हम मिले हैं या नहीं। ३मधुकरी भिक्षा, दस-पाँच घरों से माँगकर खाना। ४वेदना, कष्ट। ५खिलाफ, विरुद्ध। ६जीव। ७पतंग। ८गुण, डोरी। ९ध्यान, सुरत। १०श्रीराधिकाजी।

सुन-सुनि भूखैं गलिन में, सबै स्वान बेकूप[1] ॥४६॥
नहिं निरगुन, सरगुन[2] नहीं, नहिं नेरे, नहिं दूरि।
'भगवतरसिक' अनन्य की, अद्भुत जीवनमूरि ॥४७॥
तुष्टि पुष्टि तासों रहै, जरा न व्यापै रोग।
बाल-अवस्था, जुवा पुनि, तिनकों करै न भोग ॥४८॥
जनम-मरन माया नहीं, जहँ निसि-दिवस न होइ।
सत-चित-आनँद एकरस, रूप अनूपम दोइ ॥४९॥
निसिवासर तिथि मास रितु, जे जग के व्यौहार।
ते सब देखौ भाव[3] में, छाँड़ि जगत-व्यौहार ॥५०॥
छके जुगुल-छवि-वारुनी, डसे[4] प्रेमवर-व्याल।
नेम न परसे गारुड़ी[5], देख दुहुँन कौ ख्याल[6] ॥५१॥
नवरस[7] नित्य-विहार में, नागर[8] जानत नित्त।
'भगवतरसिक' अनन्य वर, सेवा मन बुधि चित्त ॥५२॥

ईमन

जय जय रसिक रवनी-रवन[9]।
रूप-गुन-लावन्य-प्रभुता, प्रेमपूरन भवन ॥
विपति जन की भानिबे[10] कों, तुम बिना कहु कवन ?
हरहु मन की मलिनता, व्यापै न माया-पवन ॥
विषयरस इन्द्री अजीरन, अति करावहु बवन।
खोलिए हिय के नयन, दरसै सुखद वन अवन ॥
चतुर चिंतामनि दयानिधि, दुसह दारिद-दवन।

१बेवक़ूफ। सगुण। ३त्रिकालाबाधित, नित्य, अखंड एकरस भगवद् प्रेम। ४काटे गये, घायल किये गये। ५मंत्र-बल से साँप का विष दूर करनेवाला। ६दशा, लीला। ७साहित्यिक नवरस; यथा—शृङ्गार, हास्य, करुणा, वीर, रौद्र भयानक, अद्भुत, वीभत्स और शांत। ८रस-प्रवीण। ९रमणी-रमण, श्रीराधा-वल्लभ। १०काटने के लिए।

मेटिये 'भगवत' व्यथा, हँसि भेंटिए तजि मवन[१] ॥५३॥

चर्चरी

कुंजबिहारी एक आस, और सकल तजि दुरास,
असन वसन तें उदास[२], बाँकेव्रत-धारी[३]।
ग्यान-दया-गुन-निधान, रसिक-मुकुट-मनि-प्रधान,
राग भोग समय जान, तोषत[४] पिय-प्यारी ॥
तिमिर-हरन कों दिनेस, ताप-हरन को निसेस[५],
पाप-दहन पावकेस, गुरुता मुखचारी[६]।
निधिवन-आसीन[७] नित्त, वर बिहार सरस वित्त,
जय जय हरिदास, रसिक 'भगवत' बलिहारी ॥५४॥

पद

यह दिव्य प्रसाद प्रिया प्रिय कौ।
दरसत हीं मन मोद बढ़ावत, परसत पाप हरत हिय कौ ॥
पावन परम प्रेम उपजावत, भुलवत[८] भाव पुरुष तिय कौ ॥
'भगवतरसिक' भावतो[९] भूषन, तिहिं छन होत जुगुल जिय कौ ॥५५॥

१मौन व्रत। २बेपरवाह। ३प्रेम का महा कठिन व्रत धारण करनेवाले। बोधा कवि कहते हैं: 'यह प्रेम को पंथ करार महा, तरवार की धार पर धावनो है।' ४तोषत...प्यारी—श्रीराधाकृष्ण को प्रसन्न करते हैं। ५चंद्रमा। ६ब्रह्मा। ७विराजमान। ८भुलवत...तिय कौ—स्त्री-पुरुष का दैहिक भेद-भाव भुला देता है। ९प्यारा।

हठी

छप्पय

राधा-चरन-सरोज-मधुप रस-सरस-उपासी।
भावुक-भक्ति-विभोर मोर, घनस्याम-विलासी॥
ब्रजरज पै तिहुँलोक-विभव, तृन लौं तजि दीनों।
परम प्रेम दरसाय विमल, जीवन-फल लीनों॥
श्रीहित-कुल कौ अवलंब लै, 'राधा-सत' बिरच्यौ जु इक।
दृढ़व्रत अनन्य हठ कै भयौ हठी, हठी साँचो रसिक॥

—वियोगी हरि

हठीजी ने 'राधा सुधा शतक' संवत् १८३७ में समाप्त किया, जैसा कि उन्होंने इस दोहे में लिखा है:—

रिषि सुदेव वसु ससि सहित, निरमल मधु कौ पाय।
माधव तृतिया भ्रगु निरखि, रच्यौ ग्रंथ सुखदाय॥

कुछ लोगों का अनुमान है कि हठीजी श्रीहितहरिवंशजी के शिष्य थे, परन्तु रचना-काल देखने पर यह सिद्ध नहीं होता। हित-कुल के शिष्य यह अवश्य थे, किंतु इनके गुरु कौन थे, यह अभी तक अज्ञात है। इन्होंने 'राधा-सुधा-शतक' में अपने गुरुदेव का नाम स्मरण भी नहीं किया।

इनका बनाया केवल एक 'राधा-सुधा-शतक' मिलता है। इसमें ११ दोहे, और सवैये तथा कवित्त १०३ हैं। हठीजी, भगवद्भक्त होने के अतिरिक्त, साहित्य-मर्मज्ञ भी थे। इन्होंने उपमाओं, उत्प्रेक्षाओं और अनुप्रासों का अच्छा आदर किया है। राधिकाजी को प्राधान्य मानते हुए इन्होंने अन्य सब देवी-देवताओं को नीचा दिखाया है। इनको राज-दरबारों तथा अंतःपुरों का अच्छा अनुभव था। जान पड़ता है, 'शतक' में कई पद्य

ऐसे मिलते हैं, जिनमें इन्होंने राजसी ठाटबाट का पूरा चित्र उतार दिया है। इनके कतिपय मधुर पद्य नीचे लिखे जाते हैं :—

श्रीराधा-सुधा-शतक

दोहा

श्रीवृषभानु-कुमारि के, पग बंदौं कर जोर।
जे निसिवासर उर धरैं, ब्रज बसि नंद-किसोर ॥१॥
कीरति[1] कीरति[2] कुँवरि की, कहि-कहि थके गनेस।
दस सत मुख बरनन करत, पार न पावत सेस ॥२॥
अज सिव सिद्ध सुरेस मुख, जपत रहत निसि जाम।
बाधा जन की हरत है, राधा राधा नाम ॥३॥
राधा राधा जे कहैं, ते न परैं भव-फंद।
जासु-कंध पर कमलकर, धरे रहत ब्रजचंद ॥४॥
राधा राधा कहत हैं, जे नर आठौं जाम।
ते भवसिंधु उलंघि कैं, बसत सदा ब्रजधाम ॥५॥

कवित्त

काहू कों सरन संभु गिरिजा गनेस सेस,
काहू कों सरन है कुबेर-ऐसे धोरी[3] कौ।
काहू कों सरन मच्छ, कच्छ बलराम, राम,
काहू कों सरन गोरी साँवरो-सी जोरी कौ ॥
काहू कों सरन बोध, बामन, बराह, ब्यास,
एही निराधार सदा रहै मति मोरी कौ।
आनँदकरन बिधि-बंदित[4] चरन एक,
'हठी' कों सरन वृषभानु की किसोरी कौ ॥६॥

१ कीर्ति, यश। २ राधिकाजी की माता का नाम। ३ धनी। ४ आदि सृष्टिकर्ता ब्रह्मा से वंदनीय।

कलपलता के किधौं पल्लव नवीन दोऊ,
हरन मंजुता[1] के कंजता के वनता के हैं।
पावन पतित गुन गावैं मुनि ताके छवि,
छलै सविता के[2] जनता के गुरुता के हैं॥
नवो निधिता के सिद्धिता के आदि-आलै[3] 'हठी'
तीनों लोक ताके प्रभुता के, प्रभु ताके हैं।
कटैं पाप ताके[4], बढ़ैं पुन्य के पताके, जिन,
ऐसे पद ताके[5] वृषभानु की सुता के हैं॥७॥

कोमल बिमल मञ्जु कंज-से अरुन सोहैं,
लञ्छन[6]-समेत सुभ सुद्ध कंदनी के हैं।
हरी के मनालय[7] निरालय निकारन के,
भक्ति-बरदायक बखानैं छंद नीके हैं॥
ध्यावत सुरेस संभु सेस औ गनेस, खुले,
भाग अवनी के जहाँ[8] मंद परैं नीके हैं।
कटैं जन फंदनीय द्वंदनीय हरि-हर,
बंदनी चरन वृषभानु-नंदनी के हैं॥८॥

कोऊ उमाराज[9], रमाराज, जमाराज[10] कोऊ,
कोऊ रामचंद सुखकंद नाम नाधे मैं।
कोऊ ध्यावै गनपति, फनपति, सुरपति कोऊ,
देव ध्याय फल लेत पल आधे मैं॥

कोमलता। २सूर्य। ३आदि स्थान मूलाधार। ४उसके। ५देखे; सेये। ६चिह्न २४चिह्न दक्षिण चरण में और २४ वाम चरण में माने गये हैं; भक्ति-मार्ग के अनुसार श्रीचरण-चिह्नों के ध्यान से अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है। ७मन के बसने का स्थान। ८जहाँ...परैं—जिस पर धीरे-धीरे मंद गति से चरण रखे जाते हैं। शिवाजी १०यमराज।

'हठी' की अधार निरधार[1] की अधार तू ही,
जप तप जोग जग्य कछुवै न साधे मैं।
कटैं कोटि बाधे[2] मुनि[3] धरत समाधे, ऐसे,
राधे, पद रावरे सदा ही अवराधे[4] मैं ॥९॥

कोऊ धन-धाम कोऊ चाहै अभिराम, कोऊ,
साहिबी सुरेस भाँति लाख लहियतु[5] है।
कोऊ गजराज, महाराज, सुखराज कोऊ,
तीरथ-वरत[6]-नेम अंग दहियतु[7] है॥
ऐसो चित चाहै, चरचा है दुनिया की 'हठी',
चाहै ह्वै एक तौन ठीक ठहियतु है।
जन रखवारी की सु प्रभु-प्रान प्यारी की,
सुकीरति-दुलारी की नजर[8] चहियतु है ॥१०॥

कंचन-महल-चौक, चाँदनी बिछौना तामें,
जरी कौ वितान[9]-तान[10]-भान[11]-जोति मंद की।
लालन की मालै, लाल सारी कोरदार अंग,
औंठन की लाली जिमि लाली जीवबंद[12] की॥
रंभा[13]-सी रमा-सी जहाँ दासी मैनका-सी 'हठी',
ठाढ़ी कर जोरें, तेऊ छीनै जोति चंद की।
गावै बेद बानी[14], चौंर ढारति भवानी[15] राधे,
बैठी सुखदानी महारानी नन्द-नन्द की ॥११॥

[1]निराधार, असहाय। [2]बाधाएँ। [3]मुनि...समाधे—मुनि लोग समाधि अवस्था में जिन (चरणों) का ध्यान धरते हैं। [4]मैंने आराधना की है। [5]प्राप्त करता है। [6]व्रत। [7]कठोर हठयोग द्वारा शरीर को जलाते हैं। [8]कृपादृष्टि। [9]चंदोवा। [10]तनाव। [11]भानु। [12]जपा पुष्प। [13]अप्सराएँ। [14]सरस्वती। [15]पार्वती।

चंदन लिपायो चौक, चाँदनी[१] चँदोवे तामें,
चाँदनी बिछौना फैली लहर सुगंद[२] की।
चाँदनी की साज नीकी चंद-सम चमकन,
चारयौ ओर चंदमुखी चंद-जोति मंद की॥
चाँदनी-सी चार चारु चाँदनी सी फैली 'हठी'
चाँदनी-सी हाँसी, कै मिठाई सुधा-कन्द[३] की।
चंदन की चौकी बैठी चंदन लगाय भाल,
चंद-से बदन राधे रानी ब्रजचंद की॥१२॥

चामीकर[४] चौकी पर चंपक-बरन 'हठी',
अंग जु चमकैं[५] चारु चंचलै चलावतीं।
तारा-सी तरंगना-सी अतर लगावै रति,
मुकुर दिखावै सिजै बीजन डुलावतीं॥
कमला करनि जोरै, विमला[६] सुतृन[७] तोरै,
नवला[८] लै मरजी[९] कौं अरजी सुनावतीं।
सुरन की रानी, सुरपालन की रानी,
दिगपालन की रानी द्वार[१०] मुजरा न पावतीं॥१३॥

फटिकसिलान के महल महरानी बैठी,
सुरन की रानी जुरि आईं मन-भावतीं।
कोऊ जलदानी[११] पानदानी पीकदानी लिये,
कोऊ कर बीनै लै सुहाये गीत गावतीं॥

१सफेद मलमल का चंदोवा। २सुगन्ध। ३अमृत के समान कंद; अमृत का रंग श्वेत माना गया है—'अमी हलाहल मद भरे' सेत श्याम रतनार।" ४सोना। ५चमक-दमक। ६सरस्वती। ७तिनका तोड़-तोड़ कर बलैया लेती है। ८नव वधू। ९आज्ञा लेकर। १०द्वार...पावतीं'—प्रणाम करने का भी साहस नहीं होता' द्वार पर पड़ी-पड़ी प्रतीक्षा किया करती हैं। ११गडुवा।

कोऊ चौंर ढारैं चारु चाँदनी-से चौजवारे,
'हठी' लै सुगंधन सों अलकैं बनावतीं ।
मोतिन के, मनिन के, पन्नन[1] के, प्रवालन के,
लालन के, हीरन के हार पहिनावतीं ॥१४॥

चंद की कला-सी, नवला-सी सखी संगवारीं,
रंभा, रमा, उमा, हठी' उपमा कों को रही ?
कीरति-किसोरी वृषभानु की दुलारी राधा,
आली, वनमाली कौ सहज चित चोर ही ॥
भौन तें निकसि प्यारी पाय धारे वाहिर लौं,
लाली तरवान की उमड़ि इक ओर ही ।
बगर-बगर[2] अरु डगर-डगर वर,
जगर-मगर चार्यौ ओर दुति हो रही ॥१५॥

हीन हौं, अधीन हौं, तिहारो ब्रज-साहिबनी[3] !
हिय में मलीन करुना की कोर ढरिए ।
भारी भवसागर तें वोरत बचावौ मोहिं,
काम क्रोध लोभ मोह लागे सब अरिए[4] ।
बुरो-भलो; जैसो, तेरे द्वार पर्‌यो हौं तो,
मेरे गुन-औगुन तू मन में न धरिए ।
कीरति-किसोरी, वृषभानु की दुहाई[5] तोहिं,
लच्छ-लच्छ[6] भाँति सों 'हठी' को पच्छ[7] करिए॥१६॥

१हरे रंग का एक रत्न । २घर-घर । ३ब्रज-स्वामिनी । ४शत्रु । ५सौगंद ।
६लाख । ७पक्ष, तरफ़दारी ।

जन-दुख-हरनी, धरनी-पति ध्यावैं तोहिं,
तेरी जग कर्नी[1] विधि वर्नी[2] बड़े थान[3] की।
चिंता कैसो घेरा मन ढेरा[4]-सो भ्रमत फिरै,
हृदै नहिं डेरा,[5] सुधि खान की न पान की ॥
ध्यावत बनै न मोहि, तेरोई कहावत हौं,
'हठी' पै कृपा की कोर राखि दया-दान की।
औगुननि-भरो हौं कहत करजोरि अब,
मेरो पच्छ करि तू किसोरी वृषभानु की ॥१७॥

ध्यावत महेसहूँ गनेसहूँ धनेसहूँ,[6]
दिनेसहूँ, फनेस[7] त्यों मुनेस[8] मन मानी हैं।
तीनों लोक जपत, त्रिताप की हरनहारि,
नवों निद्धि, सिद्धि, मुक्ति भई दरवानी[9] हैं।
कीरति-दुलारी सेवैं चरन बिहारी धन्य,
जाकी किरा[10] नित्त विधि वेदन बखानी है।
साधा[11] काज पल में, अराधा[12] छिन आधा 'हठी',
बाधा हरिवे को एक राधा महारानी है ॥१८॥

गिरि कीजै गोधन[13], मयूर नव कुंजन को,
पसु कीजै महाराज नन्द के बगर[14] को।

१करणी, लीला। २वरणो, वर्णन की। ३स्थान। ४चक्कर, नकली। ५शांति। ६कुबेर। ७शेषनाग। ८शुद्ध शब्द 'मुनीश' है; यहाँ महेश-गनेस आदि का अनुप्रास मिलाने के लिए कवि ने शब्द को विकृत कर 'मुनेस' कर दिया है। ९द्वार पर खड़ी रहनेवाली नौकरानी। १०कीर्त्ति। ११पूरा कर दिया। १२आराधना की। १३गोवर्द्धन। १४गोशाला।

नर कौन ? तौन, जौन 'राधे-राधे' नाम रटै,
तट कीजै बर कूल कालिंदी कगर[1] कौ ॥
इतने पै जोई कछु कीजिए कुँवर कान्ह,
राखिए न आन फेर 'हठी' के भगर कौ ।
गोपी-पद-पंकज-पराग कीजै महाराज !
तृन कीजै रावरेई गोकुलनगर कौ ॥१६॥

सवैया

मोरपखा, गर गुंज[2] की माल, किये नव भेष बड़ी छबि छाई ।
पीतपटी दुपटी कटि में, लपटी लकुटी 'हठी' मो मन भाई ॥
छूटी लटैं, डुलैं कुण्डल कान, बजै मुरली-धुनि मंद सुहाई ।
कोटिन काम गुलाम भये, जब कान्ह ह्वै भानु[3]-लली बनि आई ॥२०॥

नवनीत गुलाब तें कोमल है, 'हठी' कञ्ज की मंजुलता इन में ।
गुललाला[4] गुलाल प्रवाल जपा छवि, ऐसी न देखी ललाइन[5] में ॥
मुनि-मानस-मन्दिर मध्य बसैं, बस होत हैं सूधे सुभाइन में ।
रहु रे मन, तू चित-चाइन सों, वृषभानु-कुमारि के पाइन में ॥२१॥

चंद-सो आनन, कञ्चन-सो तन, हौं लखिकैं बिनमोल बिकानी ।
औ अरबिन्द-सी आँखिन कों 'हठी', देखत मेरियै[6] आँखि सिरानी[7] ॥
राजति है मनमोहन के सँग, वारौं मैं कोटि रमा, रति, बानी[8] ।
जीवनमूरि सबै ब्रज की, ठकुरानी[9] हमारी है राधिका रानी ॥२२॥

जाकी कृपा सुक[10] ग्यानी भये, अतिदानी औ ध्यानी भये त्रिपुरारी ।

१कगार, किनारा । २गुञ्जा, घुँघुची । ३वृषभानु ।
४लाल रंग का एक फूल । ५लाली में, अरुणिमा में । ६मेरी भी । ७ठंडी हुई, प्रसन्न हुई । ८सरस्वती । ९स्वामिनी । १०व्यासजी के बाल परमहंस पुत्र शुकदेव ।

जाकी कृपा विधि वेद रचे, भये ब्यास पुरानन के अधिकारी ॥
जाकी कृपा तें त्रिलोकी-धनी, सु कहावत श्रीब्रजचंद-बिहारी ।
लोक-घटा१ तें 'हठी' कों बचाउ, कृपा करि श्रीवृषभानु-दुलारी ॥२३॥

१सांसारिक प्रपंच ।

सहचरिशरण

छप्पय

कुंज-केलि-माधुर्य-सिंधु पूरन अवगाह्यौ।
गादी कौ अधिकार संतव्रत अगम निवाह्यौ॥
'मंजावलि' रचि सरस रहसि-पद्धति विस्तारी।
भई न है, नहिं ह्वै है रचना अस रसवारी॥
जन-रसिक-मंडली-आभरन, सेये श्रीस्यामा-चरन।
पट सिष्य राधिकादास कौ, प्रेमपुञ्ज सहचरिसरन॥

—वियोगी हरि

सहचरिशरणजी का असली नाम सखीशरणजी[1] था। यह टट्टी संस्थान की परम्परा[2] में महंत राधिकादासजी के उत्तराधिकारी थे। सहचरिशरणजी का जन्म-काल, अनुमानतः वैक्रमीय १६ वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जा सकता है। इन्होंने 'गुरु-प्रणालिका' तथा

१आश्चर्य है कि 'मिश्रबंधुविनोद' प्रथम संस्करण, (पृष्ठ ७८३) में गुरु-प्रणालिका और मंजावली के रचयिता सखीशरणजी अयोध्या के महंत माने गये हैं! सखीशरण और सहचरिशरण एक ही व्यक्ति थे, और यह वृन्दावन के टट्टी-संस्थान के महंत थे।

२टट्टी-स्थान की गुरु-परंपरा इस प्रकार है:

१.श्रीस्वामीहरिदासजी; २.श्रीविट्ठलविपुलजी; ३.श्रीबिहारिनिदेवजी; ४.श्रीसरसदेवजी; ५.श्रीनरहरिदेवजी; ६.श्रीरसिकदेवजी; ७.श्रीललितकिशोरीजी (इन्होंने टट्टी-स्थान बनवाया); ८श्रीललितमोहिनीजी; ९श्रीचतुरदासजी (श्रीभगवतरसिकजी इनके गुरु-भाई थे), १०श्रीठाकुरदासजी; ११.श्रीराधिकादासजी; १२.श्रीसखीशरण (सहचरिशरण); १३.श्रीराधाप्रसादजी; १४.श्रीभगवानदासजी।

'आचार्योत्सव सूचना' में टट्टी-संस्थान के महंतों और महात्माओं का समय निरूपण किया है। किंतु समय-निरूपण केवल श्रीस्वामीहरिदासजी से लेकर श्रीललितमोहिनीजी तक का ही किया गया है। उन्होंने ललित-मोहिनीजी के बाद के महंतों का कुछ भी वर्णन नहीं किया; कदाचित अष्टाचार्य के साथ ही टट्टी-संस्थान का वास्तविक जीवन समाप्त कर दिया है और बात भी ऐसी ही है।

सहचरिशरणजी ने फुटकर पदों के अतिरिक्त दो स्वतंत्र ग्रंथों की रचना की—'ललित-प्रकाश' और 'सरसमंजावली' 'ललित-प्रकाश' में टट्टी-संस्थान का सिद्धांत, श्रीस्वामीहरिदासजी का चरित, गुरु-प्रणालिका, आचार्योत्सव आदि विषयों का विविध छंदों में वर्णन किया गया है। 'सरसमंजावली' में १४० मंज वा माँक हैं। बीच में कहीं-कहीं पर अड़िल्ल छंद भी हैं। इसकी रचना बड़ी उच्चकोटि की है। काव्य-चमत्कार के साथ ही इसमें प्रेम-माधुरी और रस-वारुणी की एक निराली ही छटा और मादकता है। इसकी भाषा भी अनूठे ढङ्ग की है। व्रजभाषा, खड़ी बोली, पंजाबी और फ़ारसी का उसमें बड़ा मधुर मिश्रण हुआ है। कोई-कोई छंद तो 'तीर, तलवार और तमंचा' का काम कर जाता है।

सहचरिशरणजी की सुधारस-मयी रुचिर रचना की कुछ बानगी नीचे रखी जाती है :

सरस मंजावली

अड़िल्ल

स्याम कठोर न होहु, हमारी बार कों।
नैकु दया उर ल्याय, उदय करि प्यार कों॥
'सहचरि सरन' अनाथ, अकेलो जानिकैं।
कियो चहत खल ख्वार[1] बचाओ आनिकैं॥१॥

[1] बरबाद, नष्ट।

स्याम सुवेद[1] को सार है।
आशिक-तिलक, इश्क-करतार है॥
आनँद-कंद तीन गुन[2] तें परें।
प्रीति-प्रतीति रसिक तासों करें॥२॥

मंज

कहि-कहि वचन, विहँसि, माथे पर कर को कवै धरोगे?
करुनाकर चितचोर कहावत, चित को कवै हरोगे?
हरषि हमारी आँखिन में सुख, सुषमा[3] कवै भरोगे?
'सहचरिसरन' रसिक आशिक मोहि, मोहन कवै करोगे? ॥३॥
सरल सुभाव, सील संतोषी, जीव-दया चित-चारी।
काम क्रोध-लोभादि विदा[4] करि, समुझि-बूझि अवतारी।
ज्ञान-भक्ति-बैराग विमलता, दसधा[5] पर अनुसारी।
'सहचरिसरन' राखि उर सद्गुन, जिमि सुवास फुलवारी ॥४॥
धीरज-धर्म-विवेक-छमाजुत भजन-यजन[6], दुखहारी।
तजि अनीति मन सेइ संत जन, मानि दीनता भारी॥
मीठे बचन बोल सुभ साँचे, कै चुप आनँदकारी।
कीरति-बिजय-विभूति मिलै, श्रीहरि-गुरु-कृपा अपारी ॥५॥
पाहि-पाहि[7], उर अंतरजामी, हरन अमंगल ही[8] के।
'सहचरिसरन' विनय सुनि कीजै, बारिधि कृपा-अमी के॥
दुस्तर दुसह दुखद अविचारू, विफल होहिं खल जी के।
जिमि सिसुपाल[9] कुचाली-जी के परे[10] मनोरथ फीके ॥६॥

१सुवेद्य, भली-भाँति जानने योग्य। २सत्व, रज और तम। ३आनंदमय सौंदर्य ४दूर करदे। ५दसधा भक्ति के दश प्रकार। ६यज्ञ करना। ७रक्षा करो, रक्षा करो। ८हृदय के। ९चेदि का राजा, जो श्रीकृष्ण का फुफेरा भाई था। १०परे ...फीके—शिशुपाल की सारी दुरिच्छाएँ व्यर्थ गईं; रुक्मिणी का पाणि-ग्रहण न कर सका, श्रीकृष्ण और उनके भक्त पांडवों का बाल भी बाँका न कर सका,

छितिपति[1] लेत मोल पसु पच्छिन, इहि विधि कवै लहोगे ?
रवि-दुहिता[2] सुरसरित-भूमि जिमि, रस उर कवै वहोगे ?
पकरत भृंग कीट कों जैसे, तैसे कवै गहोगे ?
'सहचरिसरन' मराल मानसर[3], मन इमि कवै रहोगे ?॥७॥
निरदय हृदय न होहु मनोहर, सदय[4] रहौ मन-भावन !
नवल मोहिलो[5] मोहि तजौ जिन, तोहि सौंह प्रिय पावन ॥
रसिक 'सहचरीसरन' स्यामघन, रस[6]-वरसाव न सावन ।
दरस देहु वर वदन-चंद्रमा, चख-चकोर विलसावन[7] ॥८॥
उर में घाव, रूप सों सेंकै, हित[8] की सेज विछावै ।
दृग-डोरे सुइयाँ वर-वरुनी, टाँके ठीक लगावै ॥
मधुर सचिक्कन[9] अंग-अंग छवि, हलुवा सरस खवावै ।
स्याम तवीव[10] इलाज करै जव, तव घायल[11] सचु[12] पावै ॥९॥*
गज-मोतिन की मंजुल माला, सीस जरकसी[13] चीरा ।
चंद्र चारु वारौं पुनि तापर, कलित कलंगी हीरा ॥
नगवर[14]-जड़े कड़े कर सुन्दर, खड़े फेंट पट पीरा ।
'सहचरिसरन' लियो विन मोलन, मृदुवोलन मुख वीरा[15] ॥१०॥

जगद्विजयी भी न हो सका । यह सब न होकर हुआ यह कि अंत में भगवान् कृष्ण के चक्र सुदर्शन-द्वारा मारा गया ।

१राजा । २सूर्य-पुत्री यमुना । ३एक निर्मल झील, जो तिब्बत में है । कहते हैं, यहाँ राजहंस पाये जाते हैं । ४दयालु । ५मोही, प्रेमी । ६रस... सावन— आनंद की वर्षा करने के लिए सावन मास के समान । ७प्रसन्न करनेवाले । ८प्रेम । ९स्निग्ध; स्नेह-पूर्ण । १०हकीम । ११प्रेम का घायल । १२आराम । १३रेशमी वस्त्र, जिसपर लड़ी का काम होता है । १० श्रेष्ठ रत्न । १५तांबूल का बीड़ा ।

*यह मंज मीरा के इस पद की भाष्य-स्वरूप कही जा सकती है :
'मीरा की तव पीर मिटेगी, जव वैद संवलिया होय ।''

जरीदार पगरी[१] उदार उर, मुक्तमाल थहरति[२] है।
जरद[३] लपेटा फेंटा[४] कटि सों, गुरु गर्वीली गति है॥
'सहचरिसरन' मयंक-वदन की मदन-मोहिनी अति है।
छबि-सागर की छबि को बरनै, कवि की क्या कुदरति[५] है॥११॥

कटि किंकिनि, सिर मोर मुकुट वर, उर वनमाल परी है।
करि मुसिक्यान चकाचौंधी चित, चितवनि रंग-भरी[६] है॥
'सहचरिसरन' सुबिस्व-विमोहिनि, मुरली अधर धरी है।
ललित त्रिभंगी सजल मेघ तनु, मूरति मंजु खरी[७] है॥१२॥

मलयज-तिलक ललाट पटल, पट अटल सनेह सटक सो।
मदन-विजय जनु करत पुरट मय, कटि किंकिनी कटक सो॥
'सहचरिसरन' तरनि-तनया-तट, नटवर, मुकुट-लटक सो।
चित चुरली मुरली-धुनि गावत, आवत चटक-मटक सो॥१३॥

अब तकरार[८] करौ मति यारो, लगी लगन चित चंगी।
जीवन-प्रान जुगल जोरी के, जगत जाहिरा अंगी[९]॥
मतलब नहीं फ़रिश्तों से[१०] हम, इश्क़-दिलों-दे[११] संगी।
'सहचरिसरन, रसिक सुलतां[१२] वर, मिहरवान रसरंगी॥१४॥

मय अमलादि पिया न पिया, सुख प्रेम-पियूष पिया रे।
नाम अनेक लिया न लिया, रति स्यामा-स्याम लिया रे॥
आन सुदान दिया न दिया, बर आनँद हुलसि दिया रे।
जप जग्यादि किया न किया, हिय पर-उपकार किया रे॥१५॥*

१पगड़ी। २हिलती। ३पीला। ४कमर में लपेटने का वस्त्र। ५मजाल, शक्ति। ६मतवाली। ७खड़ी है। ८लड़ाई-झगड़ा। ९पक्षवाले, शरणागत। १०देवदूतों से, सिद्ध पुरुषों से। ११प्रेमियों के। १२बादशाहों में श्रेष्ठ।

*इस मंज के तीसरे और चौथे चरण बड़े मार्के के हैं। दूसरों को 'आनंद देना' यही सर्वोत्तम दान है, तथा 'परोपकार करना' यही सर्वोत्तम यज्ञ है।

अड़िल्ल

फूल विमल हरिदास रसिक रसमूल है।
आलि सरन, अलि-सरन कृपा अनुकूल है॥
पान करत उर भरत प्रेम, स्वच्छंद कौं।
वंस प्रसंसित सुलभ दुलभ[1], मति मंद कौं॥१६॥

दोहा

यह मंजावलि मंजु वर, इस्क सिलीमुख[2]-ग्राम।
रसिकन हृदय प्रवेस करि, राजत अति अभिराम॥१७॥

ललित-प्रकाश

गुरु-प्रणालिका

रोला

आसधीर[3] गंभीर विप्र सारस्वत स्रुतिपर[4]।
जनम अलीगढ़ मध्य मधुर बानी प्रमोदकर॥
गुरु अनुकूल अतूल[5] कूल वन निधिवन माहीं।
सत्तर लौं तन राखि साखि[6] जस की मित नाहीं॥१८॥
श्रीस्वामी हरिदास रसिक-सिरमौर अनीहा[7]।
द्विज सनाढ्य सिरताज सुजसु कहि सकत न जीहा[8]॥
गुरु-अनुकंपा मिल्यौ ललित निधिवन[9] तमाल के।
सत्तरलौं[10] तरु[11] बैठि गनै, गुन प्रिया-लाल के॥१९॥

१दुर्लभ। २ बाण। ३यह महाराज निंबार्क संप्रदाय में महात्मा हरिदेवजी के शिष्य थे। श्री स्वामी हरिदासजी के गुरु यही आसधीरजी थे। भक्तमाल में भी लिखा है, 'मस आसधीर- उद्योतकर रसिक छाप हरिदास की।' ४श्रोत्रिय, वैदिक धर्मानुयायी। ५अनुपम। ६साक्षी। ७निष्काम। ८जीभ। ९वृन्दावन में एक कुञ्ज का नाम। १०सत्तर वर्षतक। ११पेड़ के नीचे बैठकर।

'बीठल'[1]-बिपुल सनाढ्य, आढ्य[2] धन-धरम पताका।
श्रीगुरु अनुग[3] अनन्य, अनूपम जनु ससि राका॥
बिपिन सु निधिवन सघन जहाँ जाकौ मन अटक्यौ।
ब्यासी[4] की गनि आयु, उदासी[5] ह्वै चित झटक्यौ॥२०॥
सुमन बिहारिनदास[6] सूर, सूरज द्विज धरमी।
जन्म मधुपुरी[7] लीन्ह, कीन्ह अति ही निज नरमी[8]॥
द्वै कम इक सत बरस, आयु आनँद में बीती।
गायौ नित्य-बिहार, सार निगमागम नीती॥२१॥
श्रीगुरु अंत प्रसन्न धन्य, बनवास बिसेखी।
उनसठि सुठि जेहि आयु, स्याम-स्यामा-दुति[9] देखी॥
सरसदेव रति-सरस[10], गौड़कुल कल जनु भृंगी।
गुरु करुना बनवास बहत्तर, आयु असंगी[11]॥२२॥
गुरु पीछे छत्तीस बरस, बनराज[12] बिराजै।
काम-केलि-कौतूह[13], गाय आनँद नित साजै॥
नरहरिदेव सनाढ्य, गुढ़ा[14] कौ प्रथम बसेरौ[15]।
पुनि आरन्य अनादि, अनूपम आनँद हेरौ॥२३॥
'रसिकदेव' रसमीन सनावढ़ पीन[16] प्रेम सों॥
जनम बुन्देलाखंड बिपिन, पुनि भजन नेम सों॥
कीन्हें शिष्य अनेक, एक-तें-एक अमायक[17]।
तिन बिच मिथुन[18] प्रसिद्ध-सिद्ध, सुनि सब बिधिलायक॥२४॥

१इन्हें विट्ठलविपुल भी कहते हैं। यह स्वामी हरिदासजी के मामा थे। पीछे स्वामीजी के शरणापन्न होकर उनके उत्तराधिकारी हुए। २संपन्न। ३अनुगामी। ४(८२)। ५विरक्त। ६इन्हें बिहारिनिदेवीजी भी कहते हैं। ७मथुरा। ८माधुर्ययुक्त ९छवि। १०प्रेम में प्रवीण। ११विरक्त। १२वनराज से तात्पर्य यहाँ 'निधिवन, से है। १३लीला। १४यह स्थान बुन्देलखंड में है। १५निवास-स्थान। १६परिपुष्ट, दृढ़। १७माया से निर्लिप्त। १८दो; इनके प्रधान शिष्य

'ललितकिसोरी' छकित[१], ललित माथुर द्विजराजू।
भये प्रगट अति कांति, सालि सज्जन सिरताजू॥
रीझि दियौ गुरु जाहि अगद[२] वृन्दावन पद कौं।
नव ऊपर धरि सुख रहे, गहिकैं सद-हद-[३] कौं॥२५॥
ललितमोहिनीदास[४], व्यासकुल[५] कौ अवतंसा।
जनम ओड़छे माँहि, नाहिं कलि की रति अंसा[६]॥
हृदयजनित निर्वेद, सदय गुरु - कृपा घनेरी।
वन-मकरंद-प्रमत्त आयु अठहत्तर हेरी[७]॥२६॥

दो थे श्रीललितकिशोरीजी और श्रीपीतांबर देवजी।

१मस्त। २व्याधिरहित। ३मर्यादा-स्वरूप स्थान, वृन्दावन। ४श्रीस्वामी हरिदासजी से श्रीललितमोहिनीदासजी तक टट्टी-संस्थान के यही मुख्य अष्टाचार्य हैं ५श्रीहरिराम व्यासजी। ६लेशमात्र। ७बिताई।

गुणमंजरीदास

छप्पय

जुगल-प्रेम-सर्वस्व, भजन-भावन-गत अहनिस ।
ब्रज-वासिन कों करन सरन भक्तन कों सब दिस ॥
राधारमन लड़ाय, रहत ताही रँगराते ।
श्रीभागौत - सुरूप, इष्टग्रंथन - रसमाते ॥
पद - रचना पावन किये, देस-देस भव-भंजरी ।
श्रीगल्लूजी गुणमञ्जरीदास, अपर गुणमञ्जरी ॥

—गोस्वामी राधाचरण

गुणमंजरीदासजी का असली नाम श्रीगोस्वामी गल्लूजी था। इनका जन्म ज्येष्ठ ८ संवत् १८८४ को वृन्दावन में हुआ। यह राधारमणी[१], गोस्वामी श्रीरमणदयालुजी के पुत्र थे। इनकी माता का नाम श्रीसखीदेवी था। गोस्वामी रमणदयालुजी अधिकतर फर्रुखाबाद में रहते थे। संवत् १९०१ में गोस्वामीजी गल्लू जी का विवाह फर्रुखाबाद

के जगन्नाथ पुरोहित की कन्या के साथ हुआ। कुछ दिनों बाद सखोदेवी का स्वर्गवास हो गया लोगों के आग्रह से वृन्दावन के श्रीजगन्नाथ मिश्र की कन्या सूर्यादेवी के साथ इनका दूसरा विवाह हुआ इनके गर्भ से फाल्गुन कृष्णा ९ संवत् १९१९ में हमारे साहित्य-पथ प्रदर्शक भारतेंदु-सखा स्वर्गीय श्रीराधाचरण गोस्वामी का जन्म हुआ।

संवत् १९२२ में श्रीगल्लूजी महाराज ने वृन्दावन में श्रीप्रभुवर महाप्रभुजी का मंदिर स्थापित किया। अबतक आप प्रायः बाहर रहा करते थे, कभी काशी, कभी फर्रुखाबाद, कभी लखनऊ। संवत् १९२७ से आप बराबर वृन्दावन वास करने लगे। श्रीराधारमणजी की सेवा-अर्चा करते हुए, ६३-वर्ष की अवस्था में मार्गशीर्ष कृष्णा १, सं० १९४७ को आप गोलोक-धाम पधार गये।

श्रीगल्लूजी महाराज का स्वभाव बड़ा सरल, निष्कपट और मधुर था। क्रोध तो आप में लेशमात्र भी नहीं था। भगवच्चरणारविन्दों में आपकी अनन्य निष्ठा थी। व्रजभाषा के तो अनन्य भक्त थे। फारसी शब्द न बोलने का बड़ा कड़ा नियम बना रखा था। एक दिन साहजी साहब (श्री ललितकिशोरी) से बन्दूक चलने का वर्णन इस प्रकार किया—'लोहे-नलिका में श्यामचूर्ण प्रवेश करिकैं अग्नि जो दीनीं, तो भडाम शब्द भयो!' श्रीमद्भागवत पर आपकी विशेष भक्ति थी। आपने जितना धनोपार्जन किया, सब भगवत्-सेवा में लगा दिया। पदों में आप अपना नाम गुण-मंजरी रखते थे। आपने 'श्रीयुगल छद्म', 'रहस्य-पद' तथा 'पदावशेष' और फुटकर पदों की रचना की है। पद पुरानी परिपाटी के हैं। इनके पदों में रूपक और उपमाओं की अच्छी छटा है। कुछ मधुर सुन्दर पद नीचे उद्धृत किये जाते हैं :

मलार

देखो आली, गौर[१]-मेघ-उल्लास।
श्रीअद्वैत[२]-पवन पुरवाई, करुना-बिजुरि[३]-विलास॥
अंतर स्याम घटा प्रघटत है, अरुनांबर परगास[४]।
नाम-धुनी[५] गरजत प्रेमामृत, बरसत है रसरास॥
कबहुँ परत वैवर्न्य इन्द्रधनु, धुरवा - अस्रु-निकास।
उपजत है रोमांच-सस्य[६] बहु, निरखत पूरै आस॥
पोषक चातक-रसिक-भक्तजन, हरत है विरह-हुतास।
नव-अनुराग-नदी उमगी है, करम-धरम-तट-नास॥
देत बहाय त्रास-लज्जा-तृन, कपट-संक नहिं पास।
श्रीवृन्दावन-प्रेमसिंधु मिलि, 'गुनमंजरि' सुखबास॥१॥

मलार

हमारैं धन स्यामाजू कौ नाम।
जाकौं रटत निरंतर मोहन, नँदनँदन घनस्याम॥
प्रतिदिन नव-नव महामाधुरी, बरसति आठौं जाम।
'गुनमंजरि' नवकुञ्ज मिलावै, श्रीवृन्दावन - धाम॥२॥

१महाप्रभु; श्रीचैतन्यदेव। २अद्वैतप्रभु; यह माध्व संप्रदाय के भारी उद्भट आचार्य थे। इनका जन्म-स्थान नदिया शांतिपुर माना जाता है। 'नवभक्त-माल' में इनके विषय का यह छप्पय प्रसिद्ध है : 'पेखि प्रबल पाखंड खंड करिबे मति कीनी। गंगोदक तुलसी मिश्र, हरि-चरननदीनी॥ सघन लेत हुंकार सार अवतार करायो। प्रेमानंद-समुद्र सर्व दिग-विदिग बहायो॥ अद्वैत भये अद्वैत हरि, भक्ति प्रचारी परात्पर। कलिकाल प्रलय प्रगटी प्रथम स्फूर्ति शांतिनगर।' ३बिजली। ४प्रकाश। ५'हरे कृष्ण, हरे राम' आदि की ध्वनि। ६धान्य।

*इस पद में महाप्रभु श्रीचैतन्य का पावस के साथ बहुत ही सुन्दर सांगरूपक बाँधा गया है।

वसंत

प्यारी-चरनन में नव-वसंत। दस नख ससि-किरननि नित लसंत[1]।
अरुनित अँगुरी हैं नव-प्रवाल। बिछुवा घुंघरू मुकुलित[2] रसाल[3]॥
मेहँदी-दुति केसू[4] कौ प्रकास। जावक नव-वेली कर बिलास।
छिप बोलत स्यामल गनि सुरूप। कोकिल कुहुवति है अति अनूप॥
दामन-लामन[5] मलया समीर। सुरभित चहुँदिसि मिलि हरत धीर।
केसर उर की प्रिय लगी आय। गुनगन[6] 'गुनमंजरि' मधुप धाय॥२३॥*

होली

पिय-प्यारी खेलत होरी।
श्री बृन्दावन-कुञ्ज-भवन में, श्रीजमुनाजी - ओरी[7]।
नँदनँदन - रसिकेस रसीले, श्रीवृषभानु - किसोरी॥
भरें हिय भाव-कमोरी[8]॥
तरल कटाच्छ, मंजु पिचकारी, छूटत तन-मन बोरी[9]।
लगत है नयो-नयो री॥
हँसन-अबीर हीर[11]-दुति सुंदर, उजलत[12] परम उजोरी।
गौर-स्याम-छवि मिलकैं चोवा, अंग-अंग चरचो[13] री॥
सुगंधन चित्तनि चोरी॥
गोल कपोल-कुमकुमा दोऊ, धारत हैं सुख सों री।
कंकन ताल किंकिनी ढप रव, बाजत हैं सुर सों री॥

१शोभित होते हैं। २बौरे हुये। ३आम। ४टेसू; पलाश। ५हिलना, लटकना। ६भौंरों का गुञ्जार। ७तरफ़। रंग भरने का पात्र ९डूब गये। १०प्रेम-रूपी गुलाल; प्रेम का रंग साहित्य में लाल माना गया है। ११हीरे की चमक। १२प्रकाशमय। १३ लगा दिया।

*इस पद में श्रीराधिकाजी के चरणों के साथ वसंत का रूपक बड़ा ही सुन्दर और सांगोपांग बाँधा गया है।

मधुर बंसी - धुनि थोरी ॥
श्रीललितादिक सखी - सहेली, यह आनंद लहोरी।
'गुनमंजरि' राधा-माधव पर, वारति है तृन तोरी ॥
सिरावति[1] नैन हियो री ॥४॥*

---

१ शीतल करती है।

नारायणस्वामी

छप्पय

अच्छर अरथ अनूप, अलंकारन सु अलंकृत ।
भाव हृदय गंभीर, अनुप्रासन गुन गुंफित ॥
राग नवीन-नवीन प्रवीनन कौ मन मोहै ।
नृत्य करत, गति भरत, रास-मंडल अति सोहै ॥
करि देस-विदेस प्रचार श्रीवृन्दावन विश्राम ।
श्रीनारायण स्वामी नवल पद रचना ललित ललाम ॥

—गोस्वामी राधाचरण

नारायणस्वामी का जन्म संवत् १८८५ वा ८६ के लगभग रावलपिंडी (पंजाब) जिले में हुआ । यह सारस्वत ब्राह्मण थे । संवत् १९०० में वृन्दावन आकर इन्होंने लाला बाबू के मंदिर में दफ़्तर की नौकरी कर ली । दिन में नौकरी बजाते और रात में रास-विलास और सत्संग में लगे रहते थे । उस समय यह गृहस्थ थे, पर साथ में स्त्री-पुत्र नहीं रखते थे ।

सब से पहले इन्होंने भगवत्-संबन्धी ग़ज़लों की एक पुस्तक छपवाई । रेख़ता और पद भी कभी-कभी रचा-करते थे । श्रीमती महरानी टिकारी के मंदिर में जो मंडली रास करती थी, उसके द्वारा यह अपने पदों का अभिनय कराते थे । प्रेम-रङ्ग कुछ ऐसा चढ़ गया, कि नौकरी छोड़कर संन्यास ग्रहण कर लिया । इधर आपके पदों की ओर रसिक प्रेमियों का प्रेम दिन-दिन बढ़ने लगा । स्वामीजी अद्वैतवादी संन्यासी नहीं थे । इन्होंने दंड आदि भी धारण नहीं किया । प्रायः आप केशी-घाट पर खपटिया बाबा के घेरे में यमुना-तट पर निवास करते थे ।

स्वामीजी का स्वभाव बड़ा सरल और दयालु था। आप कभी धातु-स्पर्श नहीं करते थे। कामिनी-कंचन से बचा करते थे। स्वामीजी की ख्याति धीरे-धीरे बढ़ती ही गई। रुपया ढेरों भेंट में आया करता, जिसे इनके बगुला-भगत चट कर जाते थे। इन गुँडों के मारे स्वामीजी वृन्दावन छोड़कर कुसुमसरोवर पर रहने लगे।

स्वामीजी वृन्दावन की पवित्र भूमि पर शौच नहीं जाते थे। वर्षा में भतरौंद की ओर गर्मी-जाड़े में यमुना-पार जाते थे। ध्यान-धारणा तो आदर्श थी। प्रेम-सिंधु में डूबकर आप आँसुओं का तार बाँध देते थे।

वैसे तो स्वामीजी के सैकड़ों शिष्य थे, पर पट्ट शिष्य अमृतसर के ठाकुर महानचंद्रजी और जालंधर के लाला बसंतरायजी थे। श्रीमान् पंडित दीनदयालुजी व्याख्यान वाचस्पति भी आपके अंतरङ्ग मित्रों में से थे।

फाल्गुन कृष्णा ११ संवत् १९५७ में श्रीगोवर्द्धन के समीप कुसुम-सरोवर पर श्री उद्धवजी के मंदिर में श्री स्वामीजी का देहावसान हुआ। ठाकुर महानचंद्रजी ने वहाँ पर एक समाधि बनवा दी।

स्वामीजी ने सहस्रों भक्तिरस-पूरित पद-भजन रचे। संवत् १९४० में प्रथम बार लाला गनेशीलाल लोहावाले ने स्वामीजी के पदों का एक संग्रह 'व्रज-बिहार' के नाम से छपवाकर मुफ्त बाँटा था। अब तक इसके कई संस्करण हो चुके हैं। 'भारतेंदु' पत्र के संपादक श्रीराधा-चरणजी गोस्वामी ने 'व्रज-विहार' के प्रथम संस्करण की समालोचना इस प्रकार की थी:

"व्रजविहार परमहंस-परिव्राजकाचार्य श्रीयुक्त महानुभाव श्रीनारायण स्वामीजी की वाणी है। स्वामीजी महाराज इस समय वृन्दावन में महात्माओं की श्रेणी में अग्रगण्य हैं। आपने जो कुछ समय पर लीलारस अनुभव किया है, वही पदों के द्वारा रसिक लोगों की तृप्ति के लिए पुस्तक-पयोद के द्वारा बरसाया है। ये पद कुछ हमारी प्रशंसा के आश्रित नहीं। इनमें कुछ ऐसा चमत्कार है, कि सैकड़ों पुस्तकें लिखकर और हजारों पुस्तकें छपकर भारतवर्ष के इस ओर से उस ओर तक प्रसिद्ध

हुईं, पर प्रेमीजनों की तृष्णा उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है। इससे अधिक रासधारियों की मंडलियों में तो इनका राज्य है। जब तक ये पद नहीं गाये जाते, दर्शनीक चित्र-लिखित ही नहीं होते। फिर इन पदों का भाव विलक्षण, राग स्वयः मनोहर और अक्षर तो जादू के बाण हैं। कैसा ही कुटिल कल्मषी क्यों न हो, एक बार तो मोहित हो ही जाता है। इसीसे आज स्वामीजी की वाणी प्राणी-मात्र को प्यारी लगती है। इसी वाणी के वेधे अनेक अनुरागी घरबार छोड़कर ब्रजमंडल में घूमते फिरते हैं।"

अब आपकी रचना पर हमें कुछ कहने-सुनने की आवश्यकता नहीं स्वामीजी पंजाबी होते हुए भी ब्रजभाषा की जो अनन्य उपासना की वह सराहनीय और स्तुत्य है। आपके कुछ पद नीचे उद्धृत किये जाते हैं।*

कवित्त

चाहै तू योग करि भ्रकुटी-मध्य[1] ध्यान धरि,
चाहै नामरूप मिथ्या जानिकै निहारि लै।
निर्गुन, निर्भय, निराकार ज्योति व्याप रही,
ऐसो तत्वज्ञान निज मन में तू धारि लै।
'नारायन' अपने को आपु हीं बखान करि,
मोतें[2] वह भिन्न नहीं या विधि पुकारि लै।

१भौहों के बीच में सुषुम्ना नाड़ी होती है। इसी नाड़ी के द्वारा योगियों को आत्मज्योति का दर्शन मिलता है। २मोतें—नहीं—जीव और ब्रह्म, एक ही है। 'अयमात्मा ब्रह्म' आदि वाक्यों से सिद्ध अद्वैतवाद। इसी आशय का एक श्लोक भी प्रसिद्ध है ")यवाजिरंजनमज पुरुषं जरन्तम् संचिंतयामि निखिले जीवति स्फुरंतम्। तावद्बलाद् हंत ? हृदन्तरे मे गोपस्य कोऽपि शिशुरंजनपुञ्ज मंजुः।"

*श्रीनारायणस्वामी की यह संक्षिप्त जीवनी हमने श्रीमान् पंडित राधाचरण गोस्वामी लिखित उस लेख के आधार पर लिखी है, जो उन्होंने द्वादश हिंदी-साहित्य सम्मेलन के लिए लिखा था।

जौलौं तोहि नंद को कुमार नाहिं दृष्टि पर्यौ,
तब लौं तू भले बैठ ब्रह्म कों विचारि लै ॥१॥

जैजैवंती

आजु सखी, प्रीतम जों पाऊँ, तौ अपने बड़भाग मनाऊँ ॥
साँवरि मूरति नैन विसाला, चंदवदन, गर मुतियन-माला।
रूप मनोहर, चाल मराला, सुँदरता पर बलि-बलि जाऊँ ॥
जो प्यारे इन गलियन आवै, मो विरहिन कों दरस दिखावै।
बैठि निकट मृदु वचन सुनावै, मैं उनको हँसि कंठ लगाऊँ ॥
'नारायन' जीवन गिरिधारी, कब लेंगे सुधि आय हमारी।
जब मोसों कहेंगे प्यारी, तब मैं फूली अँग न समाऊँ ॥२॥

कान्हरो

नंद-नँदन के ऐसे नैन।
अति छवि-भरे नाग के छौना, डरति डसैं करि सैन[1] ॥
इन सम साबर[2] मंत्र न होई, जादू जंत्र-तंत्र नहिं कोई।
एक दृष्टि में मन हरि लेवैं, करि देवैं बेचैन ॥
चितवन में घायल करि डारैं, इनपै कोटि बान लै वारैं।
अति पैने तिरछे हिय कसकैं स्वास न देवैं लैन ॥
चंचल चपल मनोहर कारे, खंजन-मीन लजावनहारे।
'नारायन' सुन्दर मतवारे, अनियारे दुखदैन ॥३॥

झंझोटी

साँवरे, क्यों मोसों रिसि मानी।
तेरे काज घर-बार त्यागिकै गलियन फिरति दिवानी ॥

१ इशारा। २ शाबर गोंक अंट-संट अक्षरों के मंत्र, जिनका सद्यः प्रभाव देखा जाता है। बार-बार बंदौं हर-गिरिजा। साबर मंत्र-जाल जिन्ह सिरजा ॥ तु०

श्रीनारायणस्वामी कान्ता भाव की उपासना के संन्यासी थे। इनका अंत में नाम '[illegible]' था।

लोक-लाज कुलरीति प्रीति जग, इनहूँ को दियो पानी[1] ।
'नारायन' अब तौं हँसि चितवौ, एरे रूप-गुमानी ॥४॥

आसावरी

सखि, मेरे मन की को जानै ।
कासों कहौं, सुनै जो चित दै, हित की बात बखानै ।
ऐसो को है अंतरजामी, तुरत पीर पहिचानै ।
'नारायन' जो बीत रही है, कब कोई सच मानै ॥५॥

सोरठ

मनमोहन जाकी दृष्टि परत, ताकी गति होत है और-और ।
न सुहात भवन, तन-असन-वसन, बनहीं को धावत दौर-दौर ॥
नहिं धरत धीर, हिय बिरह-पीर, व्याकुल है भटकत ठौर-ठौर ।
कब अँसुवन भरि 'नारायन' मन झाँकत[2] डोलत है पौर-पौर ॥६॥

सोरठ

जाहि लगन लगी घनस्याम की ।
धरत कहूँ पग परत है कितहूँ, भूलि जाय सुधि धाम की ॥
छवि निहार नहिं रहत सार[3] कछु, घरि पल निसिदिन जाम की ।
जित मुँह उठै तितैहीं धावै, सुरति न छाया-घाम की ॥
अस्तुति निंदा करौ भलैहीं, मेंड़[4] तजी कुल-ग्राम की ।
'नारायन' बौरी भई डोलै, रही न काहू काम की ॥७॥

खमाच

प्रीतम, तूँ मोहि प्रान तें प्यारो ।
जो तोहिं देखि हियो सुख पावत, सो बड़ भागिनवारो[5] ॥
तूँ जीवन-धन, सरवस तूँ ही, तुहीं दृगन को तारो ।

१तिलांजलि दे दी, बिल्कुल छोड़ दिया । २ झाँकत...पौर—द्वार-द्वार पर देखता हुआ घूमा करता है । ३मजा, आनंद । ४मर्यादा । ५भाग्यवान ।
*इस पद में लगन-बान का क्या ही सजीव चित्र खींचा है ।

जो तोकों पलभर न निहारूँ, दीखत जग अँधियारो ॥
मोद बढ़ावन के कारन हम, मानिनि रूपहिं धारो ।
'नारायन' हम दोउ एक हैं, फूल[1] सुगंध न न्यारो ॥८॥

काफी

या साँवरे सों मैं प्रीति लगाई ।
कुल-कलंक तें नाहिं डरौंगी, अब तौ करौं अपनी मनभाई ॥
बीच-बाजार पुकार कहौं मैं, चाहै करौ तुम कोटि बुराई ।
लाज-मजाद[2] मिली औरन कों, मृदु मुसुकनि[3] मेरे बट[4] आई ॥
बिन देखे मनमोहन कौ मुख, मोहिं लगत त्रिभुवन दुखदाई ॥
'नारायन' तिनको सब फीकौ, जिन चाखी यह रूप-मिठाई ॥९॥

बेदरदी[5], तोहि दरद न आवै ।
चितवन में चित बस करि मेरो, अब काहे कों आँख-चुरावै[6] ॥
कब सों परी द्वार पै तेरे, बिन देखे जियरा घबरावै ।
'नारायन' महबूब साँवरे, घायल करि फिर गैल[7] बतावै ॥१०॥

बिहाग

नयनों रे, चितचोर बतावौ ॥
तुमहीं रहत भवन रखवारे, बाँके बीर कहावौ ॥
तुम्हरे बीच[8] गयौ मन मेरो, चाहै सौंहैं खावौ ।
अब क्यों रोवत हौ दईमारे, कहुँ तौ थाह लगावौ ॥
घरके भेदी बैठि द्वार पै, दिन में घर लुटवावौ ।
'नारायन' मोहि वस्तु न चहिए, लेनेहार[9] दिखावौ ॥११॥*

१फूल...न्यारो—जैसे फूल और सुगंध पृथक्-पृथक् नहीं हैं, इसी प्रकार प्यारे तुम और हम एक ही हैं। २मर्यादा। ३मुसुकयान। ४बाँट, हिस्सा। ५दूसरे के कष्ट का अनुभव न करनेवाला, निर्दय। ६छिपना फिरता है। ७सामने से बचा रहा है; दगाबाजी कर रहा है। ८तुम्हारे ही भेद में। ९अर्थात् वही चितचोर।

*अनुपम भाव है।

लावनी

रूपरसिक मोहन मनोज-मन-हरन सकल गुन-गरबीले।
छैलछबीले, चपल लोचन-चकोर चित-चटकीले[१] ॥
रतन-जटित सिर मुकुट लटक रहि, सिमट स्याम लट[२] घुँघरारी।
बालबिहारी, कन्हैयालाल चतुर तेरी बलिहारी ॥
लोलक[३] मोती कान कपोलनि झलक बनी निर्मल प्यारी।
जोति उज्यारी, हमैं हरबार[४] दरस दै गिरिधारी ॥
बिज्जु-घटासी दंत-छटा मुख देखि सरद-ससि सरमीले।
छैलछबीले, चपल लोचन-चकोर चित-चटकीले ॥
मंद हँसन, मृदु वचन तोतले, वय किसोर भोली-भाली।
करत चोचले, अधर अमोलक पीक रच रही लाली ॥
फूल गुलाब[५]-चिबुक सुन्दरता, रुचिर कंठ छबि बनमाली।
कर-सरोज में बुन्द मेंहदी अति अमन्द है प्रतिपाली ॥
फूलछरी-सी नरम-करम करधनी सब्द हैं तुरसीले[६]।
छैलछबीले, चपल लोचन-चकोर चित-चटकीले ॥
झँगुली झीन जरीपट कछनी, स्यामल गात सुहात भले।
चाल निराली, चरन कोमल पंकज के पात भले ॥
पग-नूपुर-झनकार, परम उत्तम जसुमति के तात[७] भले।
संग सखन के, निकट जमुन-तट गोबछरान चरात भले ॥
ब्रजजुवतिन के प्रेम-भोग में घर-घर माखन-गटकीले[८]।
छैलछबीले, चपल लोचन-चकोर चित-चटकीले ॥
गावैं बागबिलास,[९] चरित हरि सरद-रैन रसरास करैं।

१रँगीले। २अलक। ३बुलाक। ४बार-बार। ५ठोढ़ी गुलाब के फूल के समान है। यह बड़ी ही सुन्दर उपमा है। ६घायल करनेवाले, तीखे। ७प्यारा; इस शब्द को हिन्दी-कवियों ने छोटे-बड़े सभी के साथ प्रयुक्त किया है। ८खानेवाले। ९वाक्य-विलास, बतरस।

मुनिजन मोहैं, कृष्ण कंसादिक-खल-दल नास करैं ॥
गिरिधारी महराज सदा श्रीब्रज वृन्दावन-वास करैं।
हरि-चरित्र कों, स्रवन सुनि सुनि करि मन अभिलाष करैं ॥
हाथ जोरिकैं करैं बीनती 'नारायन' दिल-दरदीले[1]।
छैलछबीले, चपल लोचन-चकोर चित-चटकीले ॥१२॥

विहाग

करु मन, नँदनन्दन कौ ध्यान।
यहि अवसर तोहिं फिरि न मिलैगा, मेरो कह्यौ अब मान ॥
घूंघरवारी अलकैं मुख पै, कुंडल झलकत कान।
'नारायन' अलसाने नैना, झूमत रूप-निधान ॥१३॥

भैरव

आजु सखी, प्रातकाल, दृग मींड़त जगे लाल,
रूप के बिसाल सिंधु, गुनन के जहाज।
कुंडल सों उरझि माल, मुख पै अलकन कौ जाल,
भई मैं निहाल[2] निरखि सोभा की समाज[3] ॥
आलस-वस झुकत ग्रीव, कबहूँ अँगड़ाइ लेत,
उपमा[4] सम देत मोहिं, आवत है लाज।
'नारायन' जसुमति ढिग हौं तो गई बात कहन,
यामें भये री, एक पंथ दोउ काज ॥१४॥

नट

देखु सखी, नव छैलछबीलौ, प्रात समैं इततें को आवै ?
कमल समान बड़े दृग जाके, स्याम सलौनो मृदु मुसुकावै ॥
जाकी सुन्दरता जग बरनत, मुख-सोभा लखि चंद लजावै।
'नारायन' यह किधौं वही है, जो जसुमति कौ कुँवर कहावै ॥१५॥

१दिल का दर्द जानने वाले। २सफल, संतुष्ट। ३समूह, पर सौंदर्य। ४तुलना।

ईमन

मो पै कैसी यह मोहिनी डारी, चितचोर छैल गिरिधारी।
गृह-कारज में जी न लगत है, खान-पान लगै खारी॥
निपट उदास रहत हौं जब तैं, सूरत देखि तिहारी॥
सँग की सखी देति मोहि धीरज, बचन कहति हितकारी।
एक न लगति कही[1] काहू की, कहति-कहति सब हारी॥
रही न लाज, सकुच गुरुजन की, तन-मन-सुरति बिसारी।
'नारायन' मोहि समुझि बावरी, हँसत सकल नर-नारी॥१६॥

कालिङ्गड़ा

मूरख, छाँड़ि वृथा अभिमान।
औसर बीत चल्यौ है तेरो, दो दिन कौ महमान॥
भूप अनेक भये पृथिवी पर, रूप-तेज-बलवान।
कौन बच्यौ या काल-ब्याल तें, मिटि गये नाम-निसान॥
धवल, धाम, धन, गज, रथ, सेना, नारी चंद्र-समान।
अंत समय सबहीं कों तजिकैं, जाय बसे समसान॥
तजि सतसंग भ्रमत बिषयन में, जा बिधि मरकट[2], स्वान।
छिनभरि बैठि न सुमिरन कीन्हों जासों होय कल्यान[3]॥
रे मन मूढ़, अनत जनि भटकै, मेरो कह्यौ अब मान।
'नारायन' ब्रजराज-कुँवर सों, बेगहिं करि पहिचान॥१७॥

———

१ उपदेश। २ बंदर, पशुओं में यह बड़ा कामी माना गया है। ३ श्रेय, मोक्ष।

ललितकिशोरी

छप्पय

प्रथम लखनऊ बस श्रीवन सौं नेह बढ़ायौ ।
तहँ श्रीजुगल-सुरूप थापि मन्दिर बनवायौ ॥
द्वापर कौ सुखरास रास कलियुग में कीनौं ।
सोइ भजन-आनन्द-भाव- सहचरि-रँग-भीनौं ।
लाखन पद ललितकिसोरिका नाम प्रगटि बिरचे नये ।
कुल अग्रवाल-पावन करन कुन्दनलाल प्रगट भये ॥

—भारतेंदु हरिश्चन्द्र

लखनऊ में साह बिहारीलालजी अग्रवाल नवाब के जौहरी थे ; इनके पुत्र साह गोबिंदलालजी थे । इनकी दो स्त्रियाँ थीं । पहली स्त्री के साह रघुवरदयालुजी और साह मक्खनलालजी नाम के दो पुत्र हुए, और दूसरी स्त्री के साह कुंदनलालजी और साह फुंदनलाल-जी ।[1] इन दोनों भ्राताओं का पारस्परिक प्रेम अति प्रशंसनीय था । भारतेंदुजी ने तो यहाँ-तक लिखा है, कि :

त्रेता में जो लछमन करी, सो इन कलियुग माहिं किय ।

कौटुंबिक कलह अथवा किसी गर्हित विवाद के कारण ये दोनों भ्राता संवत् १९१२ में लखनऊ छोड़कर वृन्दावन चले गये । गोस्वामी

[1] इन भक्त भ्राताओं के संबंध में गोस्वामी श्रीराधाचरणजी लिखते हैं : छाँड़ि बादशाही बैभव लछमणपुर त्याग्यौ । श्रीवृन्दावन वास दृढ़ मन, अति अनुराग्यौ ॥ "ललित-निकुञ्ज' बनाय राधिका-रमन बिराजे । रास-विलास-प्रकास छन्द पद रचना भ्राजे ॥ ब्रजराज मध्य समाधि लिय, जुगलज्ञान निर्णय निपुन । ललित-किशोरी, ललितमाधुरी प्रेममूर्ति वृन्दाविपिन ।" (नवभक्तमाल)

राधाचरणजी के शब्दों में—'वृन्दावन उस समय प्रेमी रसिकों का 'मीना बाज़ार'' था।' साह कुन्दनलालजी 'ललितकिशोरी' की छाप से और साह फुंदनलालजी 'ललितमाधुरी' के नाम से भगवल्लीला-संबन्धी सरस पदों की रचना करने लगे। पद दस हज़ार से कम न होंगे। संवत् १६१७ में इन्होंने संगमरमर का अति विचित्र मंदिर बनवाना आरम्भ किया और संवत् १६१५ में उसमें श्रीठाकुरजी विराजमान कराये। मंदिर की नक़्क़ाशी और संगतराशी बड़ी ही सुन्दर है। इस मंदिर का नाम 'ललितनिकुञ्ज' रखा गया। कार्तिक शुक्ल २, संवत् १६३० को ललितकिशोरीजी शरीर-सहित श्रीवृन्दावन की रज में लीन हो गये। ललितकिशोरीजी ने रास-विलास, अध्यास और समय प्रबन्ध संबन्धी बड़े ही अनूठे पद लिखे हैं। छद्मलीला लिखने में तो आप सबसे बढ़े-चढ़े थे। इन्होंने ब्रज-भाषा के साथ ही साथ कहीं कहीं पर उर्दू, खड़ी बोली और मारवाड़ी भाषा का प्रयोग किया है। इनकी खड़ी बोली की रेखता रास धारियों में खूब प्रचलित है। इन्होंने प्रेम का चित्रण बड़ा ही सुन्दर और सजीव किया है।

ललितकिशोरीजी संस्कृत के भी अच्छे ज्ञाता थे। लखनऊ-निवासी होकर भी इन्होंने ब्रजभाषा में पद्य ही नहीं, वरन् विशुद्ध गद्य भी लिखा है। इनके फुटकर पदों के अतिरिक्त 'वृहत् रसकलिका' और लघु रस-कलिका' नाम के दो ग्रंथ मथुरा में छपे थे, जो अब अप्राप्य हैं। मिश्र-बन्धु विनोद में बेचारे ललितकिशोरीजी 'दास' की श्रेणी में रखे गये हैं। इसपर क्या कहें—अपनी-अपनी सूझ ही तो है।

इनके गुरु श्रीराधारमणीय गोस्वामी राधागोविन्दजी थे।

अलहैया

मैं तुव पदतर-रेनु, रसीली।
तेरी सरवरि१ कौन करि सकै, प्रेममई मूरति गरबीली॥

१बराबरी।

कोटिहुँ प्रान वारनैं करिकैं, उरिन[1] न तोसों प्रीति-रँगीली।
अपनी प्रेम-छटा करुना करि, दीजै दान, दयाल छबीली॥
का मुख करौं बड़ाई राई[2], 'ललितकिसोरी' केलि-हठीली[3]।
प्रीति दसांस सतांस तिहारी, मो मैं नाहिंन नेह-नसीली[4]॥१॥

प्रभाती

कमलमुख खोलौ आजु, पियारे।
विकसित कमल, कुमोदिनि मुकुलित, अलि गन मत्त गुँजारे।
प्राची[5] दिसि रविथार-आरती लियें ठनी निवछारे॥
'ललितकिसोरी' सुनि यह बानी, कुरकुट[6] विसद पुकारे।
रजनीराज[7] विदा माँगै, वलि, निरखौ पलक उघारे॥२॥

भैरवी

केकी कीर कोकिला कोयल सामुहि करैं जुहार।
परसन दृगन कंज हित बोलैं भृंगी जै-जैकार॥
मूंदौ रंध्र[8] वेगि प्राची दिसि, इत अब कहत पुकार।
'ललितकिसोरी,' निरख्यौ चाहत, रवि नव कुंज-विहार॥३॥

झूलना

दुनिया के परपंचों में हम मजा नहीं कुछ पाया, जी।
भाई-बंद, पिता-माता, पति सब सों चित अकुलाया, जी॥
छोड़-छोड़ घर, गाँव, नाँव, कुल यही पंथ मनभाया, जी।
'ललितकिसोरी' आनँदघन सों अब हठि नेह लगाया, जी॥४॥
क्या करना है संतति-संपति, मिथ्या सब जग-माया है।
शाल-दुशाले, हीरा-मोती में मन क्यों भरमाया है॥
माता-पिता, पती, बंधू सब गोरखधंध[9] बनाया है।

१उऋण। २श्रेष्ठ। ३मानिनी। ४प्रेम में मतवाली। ५पूर्व दिशा सुनहरी थाली में आरती लिये खड़ी हुई है। ६कुक्कुट, मुरगा। ७चंद्रमा। ८छेद, झरोखा। ९जगत-जंजाल।

'ललितकिसोरी' आनंदघन हरि हिरदै-कमल बसाया है ॥५॥
अष्ट सिद्धि, नव निद्धि हमारी मुट्ठी में हरदम रहतीं।
नहीं जवाहिर सोना चाँदी त्रिभुवन की संपति चहतीं॥
भावै ना दुनिया की बातें, दिलवर की चरचा महती[1]।
'ललितकिसोरी' पार लगावै माया की सरिता बहती॥६॥
तरह-तरह के आसन करके दिलवर-ध्यान लगावैं हैं।
भेदि सुषुम्ना[2] नाड़ी-मारग माथे[3] प्रान चढ़ावैं हैं॥
तुरत खेचरी[4] मुद्रा के बल तन-समेत उड़ि जावैं हैं।
'ललितकिसोरी' निरंजन वन में जोगी जुगुति[5] जगावैं हैं॥७॥
तजि दीनी जब दुनिया दौलत, फिर कोइ के घर जाना क्या।
कंद मूल फल पाय रहैं अब, खट्टा-मीठा खाना क्या॥
छिन में साही बकसै हमको, मोती माल खजाना क्या।
'ललितकिसोरी' रूप हमारा जानै ना तहँ आना क्या॥८॥
हम मौजी हैं अपने मन के, मनचाहे तहँ जावैं हैं।
बैठि इकंत ध्यान धरि दिलवर कंद-मूल-फल खावैं हैं॥
बसैं कंदरा वन में डोलैं, मानुष पास न आवैं हैं।
'ललितकिसोरी' भजन-अहारी, भीर-भार घबरावैं हैं॥९॥
छोड़ दिया सब माल-खजाना, हीरा मोती लुटाया है।
फूँक-फाँककर शाल-दुशाले, जग से चित्त उठाया है॥
'ललितकिसोरी' छोड़ि कानि-कुल, मन-माशूक[6] लुभाया है।
धीरज धरम सभी छोड़ा, तब मज़ा फ़कीरी पाया है॥१०॥
जंगल में अब रमते[7] हैं, दिल बस्ती से घबराता है।

१महत्वपूर्ण। २इडा (चंद्र) और पिंगला (सूर्य) नाम की बाईं और दाहिनी स्वर-वाहिनी नाड़ियों के बीच की नाड़ी। योगी-जन इसी नाड़ी के द्वारा आत्मज्योति के दर्शन पाते हैं। ३माथे...हैं—प्राणों को ब्रह्मांड में चढ़ा लेते हैं। ४योग-शास्त्रानुसार एक मुद्रा-विशेष। ५योग-युक्ति। ६प्यारा। ७ बसते।

मानुस-गंध न भाती है, सँग मरकट, मोर सुहाता है ॥
चाक गरेबां करके दम-दम आहैं भरना आता है।
'ललितकिसोरी' इश्क रैन-दिन ये सब खेल खिलाता है ॥११॥

अब विलंब जिनि करौ लाड़िले, कृपा-दृष्टि तुक हेरो।
जमुना-पुलन, गलिन गहवर[1], की बिचरूँ साँझ-सवेरो ॥
निसिदिन निरखौं जुगुल-माधुरी[2], रसिकन तें भटभेरो[3]।
'ललितकिसोरी' तन-मन, आकुल, श्रीवन[4] चहत वसेरो ॥१२॥

जमुना-पुलिन कुंज गहवर की कोकिल ह्वै द्रुम कूक मचाऊँ।
पद-पंकज प्रिय लाल-मधुप ह्वै मधुरे मधुरे गुञ्ज सुनाऊँ ॥
कूकर ह्वै बन-बीथिनि डोलौं, बचे सीथ रसिकन के खाऊँ।
'ललितकिसोरी'आस यही मम ब्रजरज तजि छिन अनत न जाऊँ॥१३

श्री बृन्दावन-वास दीजिये, यही हमारी आसा है।
जमुना-तीर सुछाय माधुरी, जहँ रसिकों का वासा है ॥
सेवाकुंज[5] मनोहर सुन्दर, इकरस बारौमासा है।
'ललितकिसोरी' का दिल बेकल जुगुल-रूप-रस प्यासा है ॥१४॥

राधारमन मनोहर सुन्दर तिनके सँग नित रहते हैं।
छके रहत छवि ललित माधुरी, और नहीं कुछ चहते हैं।
चितवन हँसन चोट मोहन की निसि दिन हिय पर सहते हैं।
'ललितकिसोरी, करैं न ओटैं[6] फरी[7] नहीं कर गहते हैं ॥१५॥

श्रीबृन्दावन - रज दरसावै, सोई हितू हमारा है।
राधामोहन - छवी छकावै, सोई प्रीतम प्यारा है ॥

१घना जंगल। २छवि। ३आकस्मिक मिलाप। ४वृन्दावन। ५वृन्दावन में एक कुंज का नाम। श्रीहितहरिवंशजी प्रायः इसी कुंज में भजन किया करते थे। ६चोटों से बचने के लिए जान-मानकर किनारा नहीं करते। ७फरी; अपने को चोटों से बचाने का डंडा।

कालिंदी-जलपान करावै, सो उपकारी सारा[1] है।
'ललितकिसोरी' जुगुल[2] मिलावै, सो अँखियों का तारा है ॥१६॥
वन-वन फिरना विहतर हमको रतन, भवन नहिं भावै है।
लता-तरे पड़ रहने में सुख, नाहिन सेज सुहावै है॥
सोना कर[3] धरि सीस भला अति, तकिया ख्याल न आवै है।
'ललितकिसोरी' नाम हरी का, जपि-जपि मन सचु पावै है ॥१७॥
पवन-पान[4] करि रहैं महीनों, अली, अन्न नहिं भावैं हैं।
पानी पियें न सोवैं निसि-दिन, बैठि समाधि लगावैं हैं॥
खुल गई पलक कभी छिनभर, तौ कर लै बीन बजावैं हैं।
जमुना कूलैं,[5] 'ललितकिसोरी' हरी-नाम-गुन गावैं हैं ॥१८॥

पीलू

लटकि-लटकि मनमोहन-आवनि।
भूमि-भूमि पग धरत भूमि पर, गति मातंग लजावनि॥
गोखुर-रेनु अँग-अँग मंडित, उपमा दृग सकुचावनि।
नव-घन पै मनु भीन बदरिया, सोभारस — बरसावनि॥
बिगसनि मुखलौं कांति दामिनी, दसनावलि दमकावनि।
बीच-बीच घन-घोर माधुरी, मधुरी वेनु-बजावनि॥
मुक्तमाल उर लसी छबीली, मनु बग-पाँति सुहावनि।
बिंदु गुलाल गुपाल कपोलनि, इन्द्र-वधू - छवि - छावनि॥
रुनन-झुनन किंकिनि-धुनि मानों, हँसनि की चुहचावनि[6]।
बिलुलित[7] अलक धूरि-धूसर तन, गमन लांटि भुव आवनि॥
जँघिया लसनि, कनक कछनी पै, पटुका[8] ऐंचि बँधावनि।
पीतांबर-फहरानि मुकुट-छवि, नटवर - बेस-बनावनि॥
हलनि झुलाक, अधर तिरछौंही, बीरी[9] सुरँगरचावनि।

१पूरा। २श्री राधाकृष्ण। ३हाथ के सहारे सिर रखकर। ४प्राणायाम साध कर। ५किनारों पर। ६शब्दविशेष। ७बिथुरी हुई। ८दोपट्टा। ९पान का बीड़ा।

'ललितकिसोरी' फूल झरनि या मधुर मधुर बतरावनि[1] ॥१६॥

सारंग

मुरकि-मुरकि[2] चितवनि चित चोरै ।
ठुमकि चलनि, हेरा[3] दै बोलनि, पुलकनि नंदकिसोरै ॥
सहरावनि[4] गैयानु चौंकनी, थपकनि[5] कर बनमाली ।
गुहरावनि[6] लै नाम सबनि कौ, धौरी धूमरि[7] आली ॥
चुचुकारनि चट झपटि निचुकनी[8], हूँ हूँ रह्यौ रँगीली ।
नियरावनि चोखनि[9] मगही में, झुकि बछियान छबीली ॥
फिरकैया[10] लै निर्त्त अलापन, बिच-बिच तान रसीली ।
चितवनि ठिठुकि उढ़कि गैया सों, सींटी भरनि रसीली ॥२०॥

झंझौटी

मन, पछितैहौ भजन बिन कीने ।
धन-दौलत कछु काम न आवै, कमलनयन[11]-गुन चित बिनु दीने ॥
देखत कौ यह जगत सँगाती[12], तात-मात अपने सुख-भीने[13] ।
'ललितकिसोरी' दुंद[14] मिटै ना, आनँदकंद बिना हरि चीने[15] ॥२१॥

गौरी

मुसाफिर, रैन रही थोरी ।
जागु-जागु, सुख नींद त्यागि दै, होति वस्तु[16] की चोरी ॥
मंजिल दूरि, भूरि भवसागर, मान कूरमति मोरी ।
'ललितकिसोरी' हाकिम[17] सों डरु, करै जोर बरजोरी ॥२२॥

१बातचीत । २मुड़-मुड़कर । ३गाय को बुलाने की आवाज । ४बुलाना । ५प्यार से थपथपाना । ६बुलाना । ७गौओं के नाम । ८चौंककर भागने वाली गाय । ९थन से मुँह लगाकर दूध पीना । १०चक्कर । ११श्री कृष्ण । १२साथी । १३अपने स्वार्थ में सने हुए । १४द्वंद्व; सांसारिक झंझट । १५पहचाने । १६आत्म-ज्ञान । १७यमराज ।

विहार

लाभ कहा कंचन तन पाये ।
भजे न मृदुल कमल-दललोचन, दुख-मोचन हरि हरखि न ध्याये ॥
तन-मन-धन अरपन ना कीन्हें, प्रान प्रानपति-गुननि न गाये ।
जोवन, धन, कलधौत[1] धाम सब, मिथ्या आयु गँवाय गँवाये ॥
गुरुजन गर्व, विमुख-रँग[2] राते, डोलत सुख-संपति[3] विसराये ।
'ललितकिसोरी'[4] मिटै ताप ना, विन दृढ़ चिंतामनि उर लाये ॥२३॥

गिरनारी

कोई दिलवर की डगर बता दे, रे ।
लोचन कंज, कुटिल भृकुटी कच, कानन कथा सुनादे, रे ॥
'ललितकिसोरी' मेरी वाकी, चित की साँट[5] मिलादे, रे ।
जाके रंग रँग्यो सब तन-मन, ताकी झलक दिखादे, रे ॥२४॥

ईमन

दंपति, इतनी विनय हमारी ।
मंद-मंद चलिए इन वीथिनि, विगसित मल्ली जुहीं निवारी ॥
निकट[6] रावरे रूप उपासक, नव निकुंज-द्रुमचारी ।
याही छिन छवि वसिए वाके, हिये-कमल वलिहारी ॥२५॥

ईमन

मोहन, क्यों वैराग लियौ ।
नासा मूँदि हाथ माला लै, नीकौ ध्यान कियौ ॥

१सुन्दर, सफेद । २हरि-विमुख संसारी जीवों के कुसंग में पड़े हुए । ३आत्मानंद-रूपी धन । ४ललितकिशोरी...लाये—यह चरण गोस्वामी तुलसी दास जी के इस पद्य का प्रतिबिंब-सा जान पड़ता है : तुलसी चित चिंता न मिटै, बिनु चिंतामनि पहिचाने' ५समानता, लगन । ६निकट...चारी—ये वृक्ष आपके रूप-रस-उपासक हैं । भक्ति-पक्ष में श्रीवृन्दावन की गुल्म-लताएँ और वृक्ष दिव्यरूप माने जाते हैं । ये सभी भक्ति-भावना-पूरित कहे गये हैं ।

भली करी भिच्छा जोगी बनि, भलो प्रसाद दियौ।
'ललितकिसोरी' कौन काज यह, कंथा[1] कपट सियौ ॥२६॥

बिलावल

स्याम-रूप में तेज, अधर-रस जलहिं मिलाऊँ।
मुरलि[2] अकास मिलाय, प्रान[3] में प्राननि छाऊँ ॥
मुख-मंडित गोधूलि, अली, टुक देखन पाऊँ।
पृथिवी-अंस मिलाय, तासु में प्रियतम ध्याऊँ ॥२७॥

ईमन

मैं तेरे सँग मुरली स्याम बजाऊँ।
ऐसेई पिय सब छेदनि पै, अँगुरी चपल चलाऊँ ॥
पंचम[4] रिषभ[5] निषाद[6] सुरनि लौं, संग-सँग टीप लगाऊँ।
'ललितकिसोरी' ईमन, काफी, सोरठ गाय सुनाऊँ ॥२८॥

खेमटा

रे निरमोही, छवि दरसाय जा।
कान-चातकी स्याम-विरह-घन, मुरली मधुर सुनाय जा ॥
'ललितकिसोरी' नैन-चकोरनि, दुति मुख-चंद दिखाय जा।
भयौ चहत यह प्रान बटोही, रूसे[7] पथिक मनाय जा ॥२९॥

सांझ देश

बलि-बलि, सखी वृन्दाविपिन जुग-चंद-दरसन कीजिए।
ललित लखि अरविंद-मुख-रस-रूप नैननि पीजिए ॥
कलित कोमल माधवी पर, लता झुकि झूमीं जहाँ।
कुञ्ज-बिच गुञ्जैं अली, छवि-पुंज निरवारत तहाँ ॥

१गूदर; फटे-पुराने कपड़ों की झोली। यह पद जोगिनी के रूप के समय का है। २मुरलि...मिलाय—मेरी बाँसुरी में अपना आकाश तत्व मिलाकर। ३प्रान...छाऊँ—मेरे के नाड़ों में अपने प्राण अर्थात् वायु-तत्व मिला दूँ। ४पाँचवाँ स्वर। ५दूसरा स्वर। ६सातवाँ स्वर। ७रूठे हुए।

नवनि कुसुमित सुमन चित्रित विविध बेली राजहीं।
रटत दंपति-नाम पंछी, पत्र-पुष्पनि भ्राजहीं॥
विमल जमुना-जल-हिलोरैं, पुलिन मन-रमनी[१] बनी।
चलत मन्द-सुगन्ध-सीतल पवन, सोभा अति घनी॥
घनघोर घेरी घटा बहु, चपला चहूँ दिसि चमकहीं।
द्रुमन-तर नव नागरी मुखचंद, चंचल दमकहीं॥
तिन मध्य सुंदर जुगुल स्यामा, नवल गल-बहियाँ दिये।
झुकत झूमत मत्त नैना, माधुरी अँग-अँग पिये॥
नटत[२] निरतत[३] नवल, नागर-नागरी दृग-जोरिकै[४]।
सैन नाना भाव दोऊ, लेत गति अँग मोरिकैं॥
झरत कवरी[५]-सुमन, मानों होत दंपति-वारने[६]।
तात-ताता[७], थेई थेई, घूँघरू झनकारने॥
अधर धरि मुरली मनोहर, मधुर मन्द बजावहीं।
मोहिनी गन मिलि मलारहिं[८], झीन[९] सुर सों गावहीं॥
देत ताल रसाल[१०] वाला, बीन मधुरी धुनि बजैं।
किंकिनी-कल-घोर सुनि, मन हंस के छौना लजैं॥
जोरि[११] कर मण्डल[१२] रच्यो नवतरुनि सुन्दर भामिनी।
भानुजा[१३] ब्रजचंद निरतैं मध्य, धनि यह जामिनी॥
चाँदनी मुखचंद दस दिसि, ससि-प्रभा मनि उर लसै।
निरखि रंध्रनि[१४] छबी 'ललितकिसोरि' नित नैननि बसै॥२०॥

दोहा

कदम-कुञ्ज ह्वै हौं कबै, श्रीवृन्दावन माहिं

१रमणीय। २हाव-भाव बताते हैं। ३नाचते हैं। ४आँख से आँख लड़ाकर। ५वेनी। ६निछावर होते हैं। ७तात...थेई—नृत्य की गति के शब्द-विशेष। ८वर्षा का राग। ९मंद-मंद। १०सुन्दरी स्त्रियाँ। ११हाथ से हाथ मिलाकर। १२चक्राकार मंडल। १३श्रीराधिका। १४झरोखों में होकर।

'ललितकिसोरी' लाड़िले, विहरैंगे तिहिं छाहिँ ॥३१॥
सुमन-बाटिका-विपिन में, ह्वै हौं कब मैं फूल।
कोमल कर दोउ भावते, धरिहैं बीनि दुकूल[1] ॥३२॥
कब कालीदह[2]-कूल की, ह्वै हौं त्रिविध समीर।
जुगुल-अंग-अँग लागिहौं, उड़िहै नूतन चीर ॥३३॥
मिलिहैं कब अँग छार ह्वै, श्रीवन-वीथिन धूरि।
परिहैं पद-पंकज जुगुल, मेरी जीवन-मूरि ॥३४॥
कब गहवर की गलिन में, फिरिहौं होइ चकोर।
जुगुलचंद-मुख निरखिहौं, नागरि—नवलकिसोर ॥३५॥
कब कालिंदी-कूल की, ह्वै हौं तरुवर डारि[3]।
'ललितकिसोरी' लाड़िले झूलैं झूला डारि ॥३६॥
स्यामा[4]-पद दृढ़ गहि सखी, मिलिहैं निहचै स्याम।
ना मानै दृग देखिलै, स्यामा-पद बिच स्याम ॥३७॥
ललित हरित अवनी सुखद, ललित लता नवकुञ्ज।
ललित विहंगम बोलहीं, ललित मधुर अलिगुंज ॥३८॥
ललित बेलि, कलिका, सुमन, तिनहीं ललित सुवास[5]।
पिक, कोकिल, सुक ललित सुर[6], गावत जुगुल-विलास[7] ॥३९॥
ललित मृदुल बहु पुलिन-रज, ललित निकुञ्ज-कुटीर।
ललित हिलोरनि रवि-सुता, ललित सुत्रिविध समीर ॥४०॥

अब हम यहाँ कुछ पद ललितकिशोरीजी के अनुज ललित माधुरीजी (साह फुंदनलाल) के उद्धृत करते हैं।

१ वस्त्र। २ यमुना का वह घाट, जहाँ काली नाग नाथा गया था। ३(१) शाखा (२) डाल कर। ४स्यामा—स्याम 'स्यामा' शब्द के मकार का 'आकार यदि निकाल दिया जाय' तब भी 'स्याम' रहता है। 'स्यामा' पद के अधीन ही स्याम हैं राधिकाजी की आराधना से 'नन्दकुमार' मिल सकते हैं क्योंकि वह उनके प्रेम के आधीन हैं। ५सुगन्ध। ६स्वर। ७आनन्द-रस।

यह भ्रातृस्नेहवश सदा अपने ज्येष्ठ भ्राता के साथ रहे और इन्हीं के भक्ति-भाव के पूरे अनुगामी हुये। अतएव हम, इनके नाम का भिन्न शीर्षक देकर इन्हें श्री ललितकिशोरीजी से पृथक नहीं करना चाहते।

इन्होंने भी अपने अग्रज की भाँति भगवद्गुणानुवाद ललित पदों के ही द्वारा किया है। किसी-किसी का कहना है, कि ललितकिशोरीजी के स्वर्गस्थ हो जाने के अनंतर इन्होंने जितने पद बनाये, उन सबमें अपना नाम न रख कर ललितकिशोरी की ही छाप दी है। धन्य इस आत्मत्याग और भ्रातृ-भक्ति को!

इनकी कविता रसप्याली, और चुटीली होती थी। इनका कोई अलग संग्रह नहीं है। श्रीललितकिशोरीजी के पद-समुच्चय में कहीं-कहीं पर इनके नाम के पद मिलते हैं।

दोहा

श्रीवृन्दावन सहज ही, ललितमाधुरी रूप।
ललित त्रिभंगी भामिनी, नित्यविहार अनूप॥१॥

विहाग

कहौ चंद, दंपति कुसलात[१]।
मम जीवनधन प्रानपियारे, दंपति कौन कुंज बिलसात[२]॥
तू छिन भले निहारे नख-सिख, लली-लाल सुकुमारे गात॥
तो तन-दुति अति बदन बिफुलता[३], कहैं देति छवि निरखत बात॥
धन्य-धन्य तू, धनि तो जीवन कछु तौ करि[४] बचनामृत-पात।
'ललितमाधुरी' अरे निरदई, कत[५] अबोल द्रुम-ओटनि जात॥२॥

१'कुशलात' शब्द केवल पद्य में ही प्रयुक्त हुआ है। २केलि करते हैं। ३प्रफुल्लता। ४करि पान अमृतरूपी वचन बोल। ५'कैसा' क्यों।

बिहार

हाय ! कहा बिपरीति[१] भई ।
जुगुलचंद-मुखचंद बिलोकन. डसीं भुजंगिनि बिन रदई[२] ॥
'ललितमाधुरी' बिरह-बिथित[३] अति, कढ़त न प्रानहुँ कठिन दई[४] ।
मो अभाग के उदै भये कोउ, दंपति[५]-पीति की रीति नई ॥३॥

सोरठ

बाँकी[६] अदा पै मैं बलिहारी ।
बाँकी पाग, केस लट बाँकी, बाँकि मुकुट-छवि प्यारी ॥
बाँकी चाल, बाँकिही चितवनि, बाँकि मुरलिका धारी ।
कहँलौं 'ललितमाधुरी' बरनौं, आपुहिं बाँकेविहारी ॥४॥

जिला

मोहन चोर पकरि कैसैं पाऊँ ।
देखत हौं दृग भरि-भरि सजनी, परसन[७] कों रहि-रहि ललचाऊँ ॥
दुरयौ निकुञ्ज-लता बन-बीथिनि, निपट निकट मैं तोहि बताऊँ ।
'ललितमाधुरी' ही[८] में जी[९] सँग, चित चोरै हौं आनि मिलाऊँ ॥५॥

१अनचाही बात । २दांत । ३व्यथाभरी । ४दैव । ५श्रीराधाकृष्ण । ६टेढ़ी, अनोखी । ७छूने को । ८हृदय । ९प्राणों के साथ ।

दूसरा खंड

बिहारीलाल

छप्पय

रससिंगार-आगार, अलंकारनि-सुअलंकृत।
धुनि-व्यंजना, अनूप लच्छना-लच्छन-लच्छित ॥
एक-एक पर बहुर महुर जयसिंह नृप दीनी।
कृष्ण-केलि-रस सरस बढ़त हिय भाव नवीनी ॥
सोइ दिव्य सु दोहा 'सतसई' भई न ऐसी होय अनु।
भाषाकवि नृप-चक्रराट् बिहारीलाल जयदेव जनु ॥

—गोस्वामी राधाचरण

महाकवि बिहारीलाल का जन्म संवत १६६० के लगभग ग्वालियर के समीप वसुवा गोविंदपुर में हुआ था। यह माथुर चौबे थे। इनकी बाल्यावस्था अधिकतर बुन्देलखंड में बीती। तरुणावस्था में यह अपनी ससुराल मथुरा चले आये। स्वर्गीय श्रीराधाकृष्णदासजी ने इन्हें कविवर केशवदास का पुत्र माना है। किंतु 'सतसई' में कहीं-कहीं एकाध बुन्देलखंडी शब्द के प्रयोग अथवा एक दोहे में "केशव केशवराय" के उल्लेख मात्र से यह कदापि सिद्ध नहीं हो सकता, कि यह केशवदास के पुत्र थे। मथुरा से यह तत्कालीन जयपुर-नरेश मिरजा महाराजा जयसिंह के पास चले गये। वहाँ पर इन्होंने जयसिंह के आनंदार्थ 'सतसई' का निर्माण किया। जयपुर-नरेश के आदेश

इन्होंने 'सतसई' अवश्य बनायी, किंतु उसकी रचना का एकमात्र ध्येय उनको प्रसन्न करना था, इसमें हमें संदेह है। बिहारीलाल स्वयं लिखते हैं :—

हुकुम पाय जयसिंह कौ, हरि-राधिका प्रसाद।
करी बिहारी सतसई, भरी अनेक संवाद ॥

बिहारीलालजी स्वतंत्र स्वभाव के कवि थे। राजामहाराजाओं को

अपनी कविता से प्रसन्न रखना इनका एकमात्र ध्येय नहीं था। इन्होंने कविता रची, और वह कविता के लिए बनायी। सतसई के सूक्ष्म परिशीलन-द्वारा यह पता चलता है, कि उसके निर्माण-काल में कवि के जीवन में कितने क्या क्या परिवर्तन हुये। यह जयपुर-नरेश के आश्रय में रहे। कुछ दिनों बाद वहां से उनका जी ऊब गया। राजा-महाराजाओं के अहंकार के आगे इनके स्वतन्त्र चिंतन में बाधा पड़ने लगी। परिणामतः विवेक और वैराग्य का उदय हुआ। कलियुगी दानियों की ओर से इनका मन फिर चला। लिखते हैं:

कब कौ टेरत दीन ह्वै, होत न स्याम सहाय।
तुमहूँ लागी जगतगुरु, जगनायक जग-बाय॥
थोरेई गुन-रीझते, बिसराई वह बानि।
तुमहूँ कान्ह भये मनौं आज-काल्हि के दानि॥

इस समय इन्हें सांसारिक सम्मान से घृणा हो चली थी। दुनियादारी को परख चुके थे। अतः अब केवल भगवत् संबन्धी कविता लिखने लगे। कहना न होगा कि इनकी यह रचना कितनी भव्य और ऊँची हुई है। निम्न लिखित सोरठा शुद्धभक्ति भावना का परिचय देता है।

मोहूँ दीजै मोष, जो अनेक पतितनि दियो।
जो बाँधै हीं तोष, तौ बाँधौ अपने गुननि॥

सतसई के संबन्ध मे अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। साहित्य में इसका कितना ऊँचा आसन है, इसे भाषा और भाव के जौहरी भली-भांति जानते हैं। श्री राधाचरण गोस्वामी ने तो बिहारी "पीयूषवर्षी मेघ', की उपमा दी है। सतसई पर बीसों टीकाएँ लिखी जा चुकी हैं। स्वर्गीय पंडित पद्मसिंहजी शर्मा ने 'संजीवनभाष्य' लिखकर वास्तव में म्रियमाण ब्रजभाषा साहित्य में संजीवन-मंत्र फूंक दिया है। कविवर रत्नाकर जी ने भी सतसई के अनमोल जवाहरों का जौहर साहित्य संसार में दिखाया है।

हमने 'ब्रजमाधुरीसार' में प्रथमतः उन्हीं कवियों को स्थान दिया है

जिनका ब्रज अथवा ब्रजभाषा से संबन्ध रहा हो, जो भगवद्-रस-माधुरी के मधुव्रत् रहे हों, जो स्वाधीनचेता हों और जिन्होंने केवल कोरे शब्दा-डंबर से दूर रहकर हृदय के गहरे भावों का यथेष्ट चित्रांकण किया हो। बहुत संभव है कि ये सभी सद्गुण सभी कवियों में एक साथ न मिलें। बिहारी में भी, एक प्रकार से, इनमें से किसी-किसी गुण का अभाव हो सकता है, किंतु अन्य गुणों के बाहुल्य से उसकी पूर्ति हो जाती है। यह महाराज जयपुर नरेश के आश्रित अवश्य थे, किंतु और कवियों की तरह उनके आश्रय-दाता के हाथ बिक नहीं गये थे। यह कोई साम्प्रदायिक संत-महात्मा नहीं थे, पर साथ ही हरि-विमुख या केवल अर्थ-लोलुप संसारी कवि भी नहीं थे। इनका संबन्ध श्रीहितकुल से था। ब्रज और ब्रजभाषा के साथ तो इनका अभिन्न सम्बन्ध था। सतसई के पद्य-टीकाकार कृष्ण कवि क्या ही अच्छा लिख गए हैं :

ब्रजभाषा बरनी कविन बहु विधि बुद्धि-विलास।
सब कौ भूषन सतसई, करी बिहारीदास॥

इन सब बातों पर विचार करके हम प्रस्तुत ग्रंथ में बिहारीलाल, देव, हरिश्चंद्र आदि महाकवियों के स्थान देने का लोभ संवरण नहीं कर सके। सतसई के कुछ रत्नोपम सरल दोहे नीचे लिखे जाते हैं :

दोहा

मेरी भव-बाधा[1] हरौ, राधा नागरि[2] सोय[3]।
जा तन की झाईं[4] परैं, स्याम हरित[5] दुति होय॥१॥
सीस मुकुट, कटि काछनी, कर मुरली, उर माल।
यह बानिक[6] मो मन बसौ, सदा 'बिहारीलाल'[7]॥२॥

१ऐहिक दुःख, जन्म-मरण का चक्र। २चतुर। ३वही। ४झलक, छाया। ५हरे रंग की शोभा, फीके अर्थात् जिनकी छवि हरण कर ली गयी हो। इसी आशय का एक दोहा महाराज नागरीदासजी का भी है, 'जामें रस कछु है हरी, यह जानत सब कोय। स्याम गौर है रंग मिलु, हरो रंग नहिं होय॥'

मोहन मूरति स्याम की, अति अद्भुत गति[1] जोय[2]।
बसति सुचित्त अंतर तऊ, प्रतिबिंबित[3] जग होय ॥३॥
सखि. सोहति गोपाल के, उर गुंजन[4] की माल।
बाहर लसति[5] मनों पिये, दावानल[6] की ज्वाल ॥४॥
मोर-मुकुट की चंद्रिकनि, यौं राजत नँद-नंद।
मनु ससि-सेखर[7] के अकस[8], किय सेखर[9] सत चंद ॥५॥
नाचि अचानक हूँ उठे, बिन पावस बन मोर।
जानति हौं नंदित[10] करी, इहि दिसि नंद-किसोर ॥६॥
जहाँ-जहाँ ठाढ़ो लख्यौ, स्याम सुभग सिरमौर।
उनहूँ बिन छिन-गहि[11] रहत, दृगनि अजौं वह ठौर ॥७॥
मकराकृत[12] गोपाल के, कुंडल सोहत कान।
धँस्यौ समर[13] हिय-गढ़ मनहुँ, ड्योढ़ी लसत निसान ॥८॥

६छटा। ७बिहारी (कवि) के प्यारे, श्रीकृष्ण।

१हाल। २देखो। ३संसार भर में प्रकाशित हो रही है; घट-घट में व्यापक है। ४घुघची। ५झलकती है। ६वन में लगी हुई आग। एक बार ब्रज के एक बन में, जहाँ ग्वाल गाएं चरा रहे थे, बड़ी ही प्रचंड आग लग गयी। आर्त ग्वाल और गौओं को देखकर श्रीकृष्ण उस दावानल को देखते-देखते पान कर गये। यहाँ पर गुंजाओं की लाल माला दावानल की लपट के समान दिखाई देती है। ७शिवजी। ८द्वेष, होड़। ९सिर। १०आनंदित। ११पकड़ लेती है, खींच लेती है। १२मछली के आकार वाले। १३समर, कामदेव।

⊛इस दोहे में दार्शनिक चमत्कार है। ब्रह्म स्वतः प्रकाशरूप होने के कारण, माया से आच्छादित होने पर भी सर्वत्र दैदीप्यमान हो रहा है।

§नीले मेघ के समान श्रीकृष्ण को देख कर मोरों को घन-घटा का भ्रम हो गया है।

§श्रीकृष्ण का हृदय किला है, उसमें कामदेव प्रवेश कर गया है। किले

तजि तीरथ, हरि-राधिका-तन-दुति करि अनुराग।
जिहिं ब्रज-केलि[1]-निकुञ्ज-मग, पग-पग होत प्रयाग[2] ॥९॥
नितप्रति एकत हीं रहत, बैस बरन मन एक।
चहियतु जुगुलकिसोर लखि, लोचन जुगुल अनेक ॥१०॥
चिरजीवौ जोरी, जुरै, क्यौं न सनेह गँभीर।
को घटि ए वृषभानुजा[3] वै हलधर[4] के बीर[5] ॥११॥
प्रलयकरन बरसन लगे, जुरि[6] जलधर इक साथ।
सुरपति गर्व हर्‌यौ हरषि, गिरिधर गिरि धर हाथ ॥१२॥
सोहत ओढ़े पीत पट, स्याम सलोने[7] गात।
मनौं नीलमनि-सैल पर, आतप[8] पर्‌यौ प्रभात ॥१३॥
अधर धरत हरि कै परत, ओंठ दीठि[9] पट[10] जोति[11]।
हरे बाँस की बाँसुरी, इन्द्र-धनुष-सी होति ॥१४॥

के द्वार पर किलेदार कामदेव की कुण्डल-रूपी ध्वजाएं शोभित हो रही हैं।

१रास। २तीर्थराज' वह स्थान जहां बड़ा भारी यज्ञ हुआ हो। ३महाराज वृषभानु की कन्या; वृषभ अर्थात् बैल की अनुजा (बहिन)। ४बलराम; बैल। ५भाई। ६इकट्ठे होकर। ७सुन्दर। ८धूप। ९दृष्टि। १०पीतांबर। ११झलक।

*प्रयाग में गंगा-यमुना-सरस्वती का संगम हुआ है, तीनों का रंग क्रमशः सफेद, काला और लाल है। यहाँ श्रीराधाकृष्ण के शरीर की झलक ही त्रिवेणी हो जाती है।

§जाति-जाति में ही गहरा प्रेम होता है। यहाँ श्रीकृष्ण और राधिका दोनों ही राजकुल के हैं। अथवा, श्लेषार्थ से, राधिका बैल की बहिन है, तो कृष्ण बैल के भाई।

§प्रातःकालीन धूप का रंग पीला होता है। यहां श्रीकृष्ण का पीतांबर धूप के समान है।

§वंशी पर इन रंगों की झलक पड़ने से इन्द्रधनुष की-सी छटा दिखाई देती

कहत सबै बेंदी[1] दियें आँक[2] दसगुनो होत।
तिय लिलार बेंदी दिये, अगनित बढ़त उदोत[3] ॥१५॥
पत्रा ही तिथि पाइए, वा घर के चहुँ पास।
नित प्रति पून्यौ[4] ही रहति, आनन-ओप[5] उजास ॥१६॥
अजौं तरयौना[6] ही रह्यौ, स्रुति[8] सेवत इक अंग।
नाक[9] वास बेसर लह्यौ, बसि मुकुतन[10] के संग ॥१७॥

सोरठ

मंगल बिंदु सुरंग[11] मुख ससि केसर आड़[12] गुरु[13]।
इक नारी[14] लहि संग, रस[15] मय किय लोचन जगत ॥१८॥

दोहा

लिखन बैठि जाकी सबी[16], गहि-गहि गरब-गरूर[17]।
भये न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर[18] ॥१९॥

* (ओठ = लाल; पट = पीला; दीठ—श्वेत श्याम और लाल; बंशी—हरी)

§(१) बिंदु, शून्य; (२) बिंदी। २अंक। ३सुन्दरता। ४पंचांग। ५पूर्णमासी। ६चमक। ७(१) कर्णफूल; (२(तरा नहीं; मुक्त नहीं हुआ। ८(१) कान; (२) बेद ९(१)नासिका; (२) स्वर्ग। १०(१) मोतियों के; (२) जीवन्मुक्तों के साथ। ११लाल। १२आड़ा टीका। १३बृहस्पति, जिनका रंग पीला है। १४(१) स्त्री; (२) राशि। १५ (१) आनंद; (२) जल। १६चित्र। १७घमंड। १८मूर्ख।

§इस दोहे में श्लेषार्थ से सत्संग का लाभ वर्णन किया गया है। वेदाध्ययन आदि से सत्संग कहीं अधिक श्रेयस्कर है।

*इस श्लिष्ट सोरठे में ज्योतिष-संबंधी चमत्कार है। जब चंद्र, मंगल और बृहस्पति एक ही राशि पर स्थित होते हैं, तब महावृष्टि-योग होता है। यहां एक ही स्त्री में चंद्र जैसा मुख, मंगल जैसा लाल बिंदु और बृहस्पति जैसा पीला टीका देखने से संसारभर रसमय अर्थात् आनंदित हो जाता है।

•प्रतिक्षण सुन्दरता बढ़ती रहने से कोई भी चित्र यथार्थ नहीं खिंच सका।

नेह न नैननि कौं कछू, उपजी बड़ी बलाय[1] ।
नीर[2] भरे नितप्रति रहैं, तऊ न प्यास बुझाय ॥२०॥

या अनुरागी चित्त की, गति[3] समुझै नहिं कोय ।
ज्यों-ज्यों बूड़ै स्याम[4]-रँग, त्यों-त्यों उज्जल होय ॥२१॥

जो न जुगुति पिय-मिलन की धूरि मुकुति[5]-मुख दीन ।
जो लहिए सँग सजन[6] तौ, धरक नरक हूँ कौन ॥२२॥*

लई सौंह-सी सुनन की, तजि मुरली-धुन आन ।
किये रहति रति[7] रात-दिन, कानन[8] लाये कान ॥२३॥

लोभ लगे हरि-रूप के, करी साँठ[9] जुरि[10] जाइ ।
हौं इन बेंचो बीच[11] हीं, लोयन[12] बड़ी बलाइ ॥२४॥§

लाल तिहारे रूप की, कहौ, रीति यह कौन ।
जासों लागैं पलक[13] दृग, लागैं पलक[14] पलौ[15] न ॥२५॥

अथवा, सात्विकभाव (पसीना, कंप आदि) आ जाने से चित्र ठीक-ठीक नहीं उतर सका। अथवा सौंदर्य में निमग्न हो जाने से, मन हाथ में न रहा और इसी से चित्र खींचते समय बुद्धि नष्ट हो गयी। यह दोहा दार्शनिक दृष्टि से परमात्मा पर तथा शृंगार-दृष्टि से नायिका पर घटता है।

१बला, रोग। २जल, आँसू। ३अवस्था। ४काला, श्रीकृष्ण का रंग (भक्ति)। ५मुक्ति। ६प्यारा। ७प्रेम, लगन। ८वन, वृन्दावन से तात्पर्य है। ९ओट कर करने की (दलालों की) गुप्त बातचीत। १०मिलकर। ११बिना कुछ कहे-सुने ही। १२नेत्र। १३क्षण मात्र के लिए। १४पलक लगता है, नींद आती है। १५एक पल को भी।

* [illegible] प्रेम की पराकाष्ठा व्यक्त की गयी है। इसी प्रकार का एक दोहा कविवर [illegible] का भी है। '[illegible] कहाँ बैकुण्ठ है, [illegible] की छाँह। [illegible] जहाँ बराबिये, सो [illegible] ॥'

§ [illegible]

लाल, सलौने[१] अरु रहे, अति सनेह[२] सों पागि।
तनक कचाई[३] देत दुख, सूरन[४] लौं मुँह लागि[५] ॥२६॥=

कहा भयौ जो बीछुरे, मो मन तो मन साथ।
उड़ी जाति कितहूँ गुड़ी[६], तऊ उड़ायक[७] हाथ ॥२७॥>

हौंही बौरी बिरह-बस, कै बौरी सब गाँव।
कहा जानिये कहत हैं, ससिहिं सीतकर[८] नाँव ॥२८॥+

कहलाने[९] एकत[१०] बसत, अहि मयूर मृग बाघ।
जगत तपोवन-सौ कियौ, दीरघ दाघ निदाघ[११] ॥२९॥×

दुसह दुराज[१२] प्रजानिकौ, क्यों न बढ़ै अति दंद[१३]।
अधिक अँधेरो जग करैं, मिलि मावस[१४] रवि-चंद ॥३०॥§

१ (१)सुन्दर; (२) नमक-सहित। २ (१)प्रेम; (२)तेल। ३(१)कच्चापन; (२)कपट। ४जमीकंद। ५काटना; खुजलाहट पैदा करना। ६पतंग। ७पतङ्ग चढ़ाने वाला। ८शीतल किरण वाला। ९घबराये हुए; बुन्देलखंडी बोली में 'कहल' गर्मी को कहते हैं। १०एकत्र। ११ग्रीष्म। १२दो राजाओं की एक साथ हुकूमत। १३दुःख। १४अमावस।

=जैसे तेल और नमक डाल कर भूनने पर भी कुछ कच्चा रह जाने से सूरन मुँह में खुजली पैदा करता है, उसी प्रकार, प्यारे यद्यपि तुम सुन्दर और प्रेमी हो, किंतु तुम्हारा यह जरा-सा कपट भी दुःख देता है।

>यह दोहा अध्यात्मभाव पर भी घटता है। गुड़ीजीव। उड़ायक-प्रेरक; सूत्रधार परमात्मा।

+विरहिणी नायिका को चंद्रमा की किरणें दाहक जान पड़ती हैं। उसकी राय में चंद्रमा का 'शीतकर' नाम न होना चाहिए था।

×तपोवन में हिंसक जीव भी हिंसा-भाव छोड़कर परस्पर प्रेम-पूर्वक रहते हैं। यहां, मारे गर्मी के, मोर और सांप, मृग और सिंह-अहिंसा-व्रत लिये हुए एक साथ बैठे हैं।

§अमावस की रात में चंद्र और सूर्य एक ही राशि पर स्थित होकर संसार

कहैं यहै सब स्रुति सुमृति[1], यहै सयाने लोग।
तीन दबावत निसक[2] हीं, पातक, राजा, रोग ॥३१॥
सबै हँसत करतारि[3] दै, नागरता[4] कै नाँव।
गयौ गरब गुन कौ सबै, बसे गँवारे गाँव ॥३२॥
जो चाहौ चटक[5] न घटै, मैलो होय न मित्त[6]।
रज-राजस[7] न छुवाइए, नेह[8]-चीकने चित्त ॥३३॥*
नल की अरु नल-नीर की, गति एकै करि जोइ।
जेतो नीचो ह्वै चलै, तेतो ऊँचो होइ ॥३४॥
मीत, न नीत[9] गलीत[10] ह्वै, जो धन धरिए जोरि।
खाये खरचे जो बचै, तो जोरिए करोरि[11] ॥३५॥
इहिं आसा अटक्यौ रहै, अलि गुलाब के मूल।
ऐहैं बहुरि बसंत रितु[12], इन डारनि वै फूल[13] ॥३६॥
कनक[14] कनक तें सौगुनी, मादकता अधिकाय।
वा खायें बौरात है, या पायें बौराय ॥३७॥
को छूट्यौ इहिं जाल परि, कत कुरंग अकुलात।

भर में घोर अंधकार छा देते हैं। इसी प्रकार एक साथ दो राजाओं का द्वैध-शासन प्रजा में अंधेर मचा देता है।

१स्मृति, धर्मशास्त्र-संबंधी पुस्तकें। २निःशक्त, कमजोर। ३ताली पीटकर ४शिष्टता, चतुराई। ५चमक, गहरा प्रेम। ६मित्र। ७आसन। ८प्रेम; तेल। ९नीति; 'मीत-गनीत' के अनुप्रास के लिए 'नीत' कर दिया गया है। १०गलित, दुर्दशा-ग्रस्त। ११करोड़। १२ऋतु। १३वे रसीले फूल जिनका पहले (भ्रमर) पराग पान कर चुका है। १४कनक सोने को भी कहते हैं और धतूरे को भी। धतूरे के खाने से पागल बनना पड़ता है पर सुवर्ण के पाने से ही मनुष्य मदांध हो जाता है। धन का नशा सब से बुरा है।

*किसी चीज पर यदि तेल लगाया गया है और उसे चिकना रखना है तो उस पर धूल न पड़ने दो। इसी प्रकार प्रेम-पात्र के चित्त पर किसी प्रकार की

सोरठा

हौं समुझ्यौ निरधार[1], यह जग कांचौ[2] काँच-सौ।
एकै रूप अपार, प्रतिबिंबित लखियतु जहाँ ॥५५॥*

दोहा

जगत जनायौ[3] जेहिं सकल, सो हरि जान्यौ नाहिं।
ज्यौं आँखिन सब देखिए, आँखि न देखी जाहिं ॥५६॥+
जप माला छापा तिलक, सरै[4] न एकौ काम।
मन काँचै[5] नाचै वृथा, साँचै राँचै[6] राम ॥५७॥=
तौलगि या मन-सदन में, हरि आवैं किहिँ बाट।
विकट जरे जौलगि निपट, खुलैं न कपट-कपाट ॥५८॥
यह बिरियाँ नहिं और की, तू करिया[7] वह सोधि[8]।
पाहन-नाव चढ़ाय जिन, कीन्हे पार पयोधि[9] ॥५९॥×
भजन[10] कह्यौ तासौं[11] भज्यौ[12], भज्यौ न एकौ बार।
दूर भजन जासों[13] कह्यौ, सो तूँ भज्यौ गँवार ॥६०॥
दूरि भजत[14] प्रभु पीठि दै, गुन बिस्तारन[15]-काल।

१निश्चय-पूर्वक। २कच्चा, नश्वर। ३ज्ञान दिया। ४काम नहीं आते ५कपटी। ६प्रसन्न। ७केवट, मल्लाह। ८खोज ले। ९समुद्र। १०(१) भजन करना (२) भागना। ११परमेश्वर के नाम से। १२ (१) भजन किया, (२) भागा। १३संसारी विषय-वासनाओं से। १४भागते हैं। १५दिखावा करने के समय, अभिमान-पूर्वक साधन-बल बतलाने के समय।

*इस सोरठे में भी दार्शनिक चमत्कार है। इसमें अद्वैतवाद का प्रतिपादन किया गया है। जितना 'नानात्व' दिखायी देता है, वह सब परमात्मा का ही प्रतिबिंब-स्वरूप है।

+यह दोहा भी दार्शनिक सिद्धांत से शून्य नहीं है।

=यदि कपट के साथ माला जपी जाय या तिलक लगाया जाय, तो अंत समय पर यह दंभ काम न आयेगा, क्योंकि राम तो सच्चों के साथी हैं; किन्तु यदि निष्कपट भाव से माला और तिलक धारण किये जांय तो कोई बुराई नहीं।

×यहाँ मल्लाह से आशय श्रीरामचन्द्रजी से है, जिन्होंने बंदरों की सेना पत्थर

प्रगटत निरगुन[1] निकट हीं, चंग[2] - रंग गोपाल ॥६१॥*
पतवारी[3] माला पकरि, और न आन उपाव।
तरि[4] संसार-पयोधि कौं, हरि-नामहिं करि नाव ॥६२॥+
मन, मोहनसों मोह करि तूँ घनस्याम निहारि।
कुञ्जबिहारी सों बिहरि, गिरिधारी उर धारि ॥६३॥
नीकी दई अनाकनी, फीकी परी गुहारि।
मनौं तज्यौ तारन-बिरद, बारक[5] नारन[6] तारि ॥६४॥
दीरघ साँस[7] न लेहु दुख, सुख साईं[8] नहिं भूल।

के पुल पर से समुद्र-पार कर दी थी। वही कृपालु रामचन्द्रजी अपनी कृपा से जीवन-नौका खेकर संसार-सागर से किनारे लगा देंगे।

१गुणहीन; अहंकारशून्य। २पतङ्ग के समान। ३करिया। ४पार करना। ५एक बार। ६गजेन्द्र। ७ग्राह। ८स्वामी, ईश्वर।

*पतङ्ग चढ़ाते समय ज्यों-ज्यों डोरी बढ़ाओगे, त्यों-त्यों पतङ्ग दूर ही होती जायगी। यदि उसे अपने पास खींचना है, तो डोरी खींच लो। इसी प्रकार, जिन लोगों को अपने गुणों का अभिमान है, उनसे भगवान् सदा दूर रहते हैं। वह उन्ही के पास आने को तैयार रहते हैं जिनकी यह चाहना है कि हम लोग न विद्वान हैं, न कुलीन; केवल प्रभुके दास हैं। निराकारवादी इस दोहे का यह अर्थ लगाते हैं कि परमात्मा सगुण-उपासना करने वालों से दूर भागता है, वह निर्गुण उपासकों के ही आगे प्रत्यक्ष प्रकट होता है। हमारी समझ में यह अर्थ उपयुक्त नहीं है। यहाँ 'सगुण और निर्गुण' -पद ब्रह्म-वाची नहीं है। भक्तवर बिहारी ने भक्त की निरहंकारिता और भगवान् की दयालुता दरसाने की चेष्टा की है।

+इस दोहे में भक्त अपने मन को समझा रहा है। कहता है, यदि तू मोही ही है तो मोहन से मोह लगा, यदि सौन्दर्य ही देखना चाहता है तो घनश्याम की ओर टक लगा कर देखा कर जो इधर-उधर भटकना ही है, तो कुंजबिहारी कृष्ण के साथ विहार क्यों नहीं करता ? अरे, अपने को बड़ा भारी बली ही समझता है, तो चक्र

दई-दई[1] क्यों करत है, दई दई[2] सु[3] कबूल ॥६५॥
ब्रजवासिन कौ उचित धन, जो धन रुचित न कोइ।
सुचित न आयौ[4] सुचितई[5], कहौ कहाँ तैं होइ ॥६६॥
कीजै चित सोई तिरौं[6], जिहिं पतितन के साथ।
मेरे गुन-औगुन-गननि[7], गिनौ न गोपीनाथ ॥६७॥
थोरेई[8] गुन रीझते, बिसराई वह बानि[9]।
तुमहूँ कान्ह भये मनौं, आज-कालि[10] के दाँनि ॥६८॥*
कबकौ टेरत दीन ह्वै, होत न स्याम सहाय।
तुमहूँ लागी जगतगुरु, जगनायक जग-बाय[11] ॥६९॥ +
कोऊ कोरिक[12] संग्रहौ, कोऊ लाख हजार।
मो संपति जदुपति सदा, विपत-बिदारनहार[13] ॥७०॥
ज्यौं ह्वै हौं त्यौं होंहुगो, हौं हरि अपनी चाल[14]।
हठ न करौ अति कठिन है, मो तारिबो गुपाल ॥७१॥
मोहिं-तुम्हैं बाढ़ी बहस, को जीते जदुराज।
अपने-अपने बिरद[15]-की, दुहुँन निबाहन लाज ॥७२॥

*गिरिधारी नंदनंदन को अपने हृदय मे धारण करले।

१हाय राम, हाय राम। २जो ईश्वर ने दिया है। ३वही एक। ४मन में नही बसा। ५निर्मलता, शांति। उचित धन से अभिप्राय इष्टदेव से है ही। ६संसार से तर जाऊँ, मुक्त हो जाऊं। ७समूहों का। ८जरा से ही। ९स्वभाव। १०कलियुगी, स्वार्थी। ११दुनयावी हवा; स्वार्थभाव। १२करोड़ों। १३नाश करने वाले। १४करनी। १५गोपाल, श्रीकृष्ण। १६बाना: भक्त का पापो का बढ़ाना और परमेश्वर का पापों का नाश करना महात्मा सूरदास कहते हैं :

'आजु हौं एक एक करि टरिहौं कै हमहीं कै तुमही माधव: अपुन भरोसे लरिहौं॥'

+उपर्युक्त दोनों दोहों में कलियुगी स्वार्थी दानियो की निंदा की गयी है। संभव है: महाकवि बिहारी का किसी राजा-रईस ने अनादर किया हो; और उसी को लक्ष्य करके ये दोहे रचे गये हों।

करौ कुबत[1] जग, कुटिलता[2], तजौं न दीनदयाल ।
दुखी होहुगे सरल चित, बसत त्रिभंगीलाल[3] ॥७३॥

सोरठा

मोहूँ दीजै मोष[4], जो अनेक पतितनि दियौ ।
जो बाँधे ही तोष[5], तौ बाँधौ अपने गुननि[6] ॥७४॥

दोहा

हरि, कीजत[7] तुमसौं यहै, बिनती बार हजार ।
जेहिं तेहिं भाँति डरौ[8] रहौं, परौ रहौं दरबार ॥७५॥
तौ बलियै[9] भलियै बनी, नागर नन्दकिसोर ।
जो तुम नीके[10] कै लखौ, मो करनी की ओर ॥७६॥*
जात-जात[11] बित[12] होत है, ज्यौं जिय में संतोष ।
होत-होत[13] त्यौं होय तौ, होय घरी[14] में मोष[15] ॥७७॥

१बुरी बात; निंदा । २टेढ़ापन; बुराई । ३बांकेबिहारी । जैसे के लिए तैसे की जरूरत है । त्रिभङ्गीलाल के भक्त भी टेढ़े ही होने चाहिए; सीधे-सादे नहीं । ४मोक्ष । ५संतोष; प्रसन्नता । ६गुणों से; रस्सियों से । ७करता हूँ । ८पड़ा रहूँ (कुन्देनज़रटी) । ९बलिहारी है । १०बारीकी से; इन्साफ करके । ११नष्ट होते-होते । १२धन । १३आते-आते । १४एक घड़ी में । १५मोक्ष । सारांश यह कि लोभ ही न धन है; और संतोष ही मोक्ष ।

*मेरी ओर; हे नंद-नंदन भगवान् [illegible] न्याय-दृष्टि से न देखो; क्योंकि ऐसा करने से मेरा बचाव होने का नहीं, एक जन्म तो है ही क्या; करोड़ों जन्म तक का [illegible] नहीं ।

देव

छप्पय

ब्रज-साहित्य-सिँगार, सरस रचना में नागर।
उक्त अनूठी, भव्य काव्य-गरिमा-गुन-आगर॥
कृष्ण-केलि-रस-मधुर-माधुरी-मत्त - रँगीलौ।
प्रेम-भाव कौ रूप, रसिक-सरवस, गरवीलौ॥
श्रीहित-कुल-आश्रित, अनुभवी, रह्यौ इटाये प्रेममय।
जेहि ग्रंथ-कदंब रचे सुभग, कवि-चूड़ामनि देव जय॥

—वियोगी हरि

महाकवि देवदत्त, उपनाम देव, इटावा के निवासी थे। इनका जन्म सं १७३० में हुआ था। इन्होंने १६ वर्ष की अवस्था से ही कविता लिखना आरम्भ कर दिया था, जैसा 'भाव-विलास' नामक ग्रंथ से पता चलता है :

सुभ सत्रह सौ छियालिस, चढ़त सोरहीं वर्ष।
कढ़ी देव मुख देवता, भाव-विलास सहर्ष॥

'सुखसागर-तरङ्ग' की भूमिका में श्रद्धेय मिश्रबन्धुओं के पूज्य पिता पंडित बालदत्तजी मिश्र ने इनके सम्बन्ध में लिखा है :

"इनके गुरु स्वामी हितहरिवंशजी थे। श्रीस्वामी हितहरिवंशजी की अष्टछाप (!) अर्थात् ब्रज के प्रसिद्ध आठ कवियों में गणना है और इनके पद बहुत अनूठे व सूरदासजी के पदों से समानता करते हैं। इन महाराज के १२ शिष्य थे और इन बारह में से देवजी मुख्य थे।" यह तो स्पष्ट ही है कि स्वामी हितहरिवंशजी महराज का जन्म सोलहवीं शताब्दी में हुआ था, और उनकी गणना 'अष्टछाप' में नहीं की जाती

है। देवजी उनके शिष्य कैसे हो सकते हैं? हाँ यह हितकुलावलंबी अवश्य थे, किंतु इनके गुरु का क्या नाम था, इसका ठीक-ठीक पता नहीं चलता। इन्होंने सब से पहले १६ वर्ष के आरम्भ में 'भावविलास' बनाकर औरङ्गजेब के बड़े पुत्र काव्य-रसिक आज़मशाह को सुनाया। इसके बाद 'अष्टयाम' की रचना की। देवजी भवानीदत्त वैश्य कुशल-सिंह (फफूँद, इटावा निवासी) राजा उद्योतसिंह, भोगीलाल पिहानी-वाले, अकबरअलीखाँ आदि के आश्रय में रहे; पर इनके मन का, भोगीलाल के अतिरिक्त, कोई भी आश्रयदाता न मिला। प्रांत-प्रांत में घूमने से इन्हें बड़ा अनुभव प्राप्त हो गया। इसी अनुभव के फलस्वरूप इन्होंने 'जाति-विलास' जैसे ग्रंथ की रचना की। आश्रयदाताओं के प्रति असंतुष्ट रहने के कारण अंत में इन्हें कुछ विरक्ति-सी हो गई और यह शृङ्गार रस से शांत रस में उतर आये। इन्होंने शांत रस का भी अच्छा वर्णन किया। 'देवमाया-प्रपंच-नाटक', 'वैराग्य-शतक', 'तत्वदर्शन-पच्चीसी', 'आत्मदर्शन-पचीसी', 'जगदर्शन पच्चीसी', 'ब्रह्मदर्शन-पच्ची-सी', एवं 'नीतिशतक' आदि शांतरस-प्रधान ग्रंथों को लिख कर यह सिद्ध कर दिया, कि विशुद्ध शृङ्गार के उपासक शांत रस को भी किस सफलता के साथ अंकित कर सकते हैं। किसी के मत से इनके ७२ और किसी के मत से ५२ ग्रंथों का उल्लेख पाया जाता है। अबतक इनके निम्नलिखित २७ ग्रंथों का पता चला है।

१. भाव-विलास; २. भवानी-विलास; ३. कुशल-विलास; ४. जाति-विलास; ५. रस विलास; ६ राधिका-विलास ७. पावस-विलास; ८. वृक्ष-विलास; ९. अष्टयाम; १० सुंदरी-सिंदूर; (संग्रह) ११. सुजान-विनोद; १२. प्रेम-तरङ्ग; १३. राग-रत्नाकर; १४. देव-चरित्र; १५. प्रेम-चंद्रिका; १६. काव्य-रसायन; १७. सुखसागर तरङ्ग (संग्रह) १८. देवमाया-प्रपंच (नाटक) १९. ब्रह्मदर्शन-पचीसी; २०. आत्मदर्शन-पचीसी; २१ तत्वदर्शन-पचीसी; २२. जगदर्शन पचीसी; २३. नीति-शतक; २४. नख-शिख; २५. रसानंद लहरी; २६. प्रेमदीपिका; २७. सुमिल-विनोद।

देव की कविता की भाषा शुद्ध व्रज की है, पर कहीं-कहीं इन्होंने शब्दों का तोड़-मरोड़ बुरी तरह से किया है। इनकी कविता में ओज, प्रसाद और माधुर्य तीनों गुण पाये जाते हैं। उक्तियाँ तो इनकी बड़ी ही अनूठी हैं। महाकवि बिहारीलाल के बाद भाव-व्यक्तीकरण में इन्हीं का स्थान है। स्वर्गीय पं० बालदत्तजी मिश्र तो इनको सर्वश्रेष्ठ कवि मानते थे। इस संबन्ध का उन्होंने यह कवित्त भी 'सुखसागर-तरङ्ग' के आदि में लिखा है :

सूर सूर, तुलसी सुधाकर, नक्षत्र केशव,
सेष कविराजन कों जुगुनू जनायकैं।
दोऊ परिपूरन भगति दरसायो अब,
काव्यरीति मोसन सुनहु चित लायकैं॥
देव नभमंडल समान हैं कवीन-मध्य,
जामें भानु सितभानु तारागन आयकैं।
उदय होत अथवत, चारों ओर भ्रमत पै,
जाको ओरछोर नहिं परत लखायकैं॥

मिश्रजी ने इस कथन की पुष्टि भी यथाशक्ति खूब की है। आपने देव के आगे तुलसी-सूर को भी निस्तेज-सा दिखाया है। और कबीर को कोई कवि ही नहीं माना! 'हिन्दी नवरत्न' और 'मिश्र बन्धु-विनोद' के सुबुध रचयिताओं की भी कुछ ऐसी ही राय है। हमारी तुच्छ सम्मति में देव की इस प्रशंसा में निश्चय अत्युक्ति है। माना, कि इनकी कविता बड़ी सरस, भाव पूर्ण, ओजस्विनी और अनोखी है, पर सूर और तुलसी को तो जाने दीजिए, वह केशव और बिहारी की रचनाओं से भी आगे नहीं बढ़ सकती। कुछ दिनों हिंदी-साहित्य-संसार में इस विषय पर भारी हलचल मची थी। कोई देव को सातवें स्वर्ग पर चढ़ा देता था। तो कोई उन्हें बिहारी के मुकाबले बिलकुल नीचे गिरा देता था। देव बिहारी, केशव-देव, दास-देव आदि तुलनात्मक आलोचनाओं से वृथा पक्षपात के कारण एक प्रकार से साहित्य-हत्या ही हुई

है। साहित्यिक महारथियों को इस पर निष्पक्ष रीति से विचार करना चाहिए था, वह नहीं हुआ। देव ने अपनी प्रखर प्रतिभा के प्रताप से पूर्ववर्ती सुकवियों के कई भाव ज्यों-के त्यों उठाकर अपनी रचनाओं में रख दिये हैं। यह भी नहीं कहा जा सकता, कि इनके ग्रंथ बिलकुल निर्दोष हैं, या देव के आगे कोई कवि 'न भूतो न भविष्यति' ही हम कह सकते हैं। तुलना का काम बड़ा-कठिन काम है। सहसा किसी को बहुत ऊँचाई पर चढ़ा देना, या एक दम नीचे गिरा देना न्यायसंगत नहीं। ऐसी एकपक्षीय आलोचनाओं से भ्रम और द्वेष के प्रचार के अतिरिक्त और कोई लाभ नहीं होता।

इसमें संदेह नहीं, कि देव ब्रजभाषा-साहित्य के इने-गिने महाकवियों में से थे। पर प्रश्न यह उठता है कि इनकी कविता का प्रचार अधिक क्यों नहीं हुआ। एक बात तो यह है कि इनके पद्य प्रायः जटिल-से हैं और दूसरे, गूढ़ोक्तियों के कारण, वे कुछ दुर्बोध-से हो गये हैं। शृंगार का बाहुल्य भी इसका एक कारण हो सकता है किन्तु प्रचाराधिक्य के अभाव से यह नहीं कहा जा सकता कि इनकी कविता उत्तमता की दृष्टि से हीन है। लोक-प्रियता ही सत्कविता की एकमात्र कसौटी नहीं। प्रायः देखा गया है कि रद्दी पुस्तकों का खूब प्रचार है। तो क्या इस प्रचार से उनका महत्व बढ़ जाता है? देव की कविता लोकप्रिय न हो, पर पंडित-प्रिय तो वह अवश्य है। वास्तव में, देव-जैसे महाकवियों के कारण हमारे प्राचीन बृज-भाषा-साहित्य का मस्तक सदा ऊँचा रहेगा। देव-सदृश सर्वव्यापिनी दृष्टिवाले कवि-रत्नों के प्रकाश से साहित्य-संसार सदा जगमगाता रहेगा इसमें संदेह नहीं।

अभी तक इनके चार-पाँच ग्रंथ ही प्रकाशित हुए हैं। महाकवि देव के कतिपय ग्रंथों से कुछ उत्तम पद्य यहाँ उद्धृत किये जाते हैं :

सवैया

पायन नूपुर मंजु बजैं, कटि किंकिनि में धुनि की मधुराई।
साँवरे अंग लसै पटपीत, हिये हुलसै बनमाल सुहाई॥

माथे किरीट[१], बड़े दृग चंचल, मंद हँसी मुखचंद-जुन्हाई।
जै जग-मंदिर-दीपक सुन्दर, श्री ब्रजदूलह[२] देव-सहाई ॥१॥

कवित्त

सूनो कै परम-पदु[३], ऊनो[४] कै अनंत मदु,
दूनो कै नदीस नदु इन्दिरा[५] फुरै परी।
महिमा मुनीसन की, संपति दिगीसन की,
ईसन[६] की सिद्ध ब्रज-वीथी बिथुरै[७] परी॥
भादौं की अँधेरी अधराति, मथुरा के पथ,
आई मनोरथ, देव देवकी दुरै परी।
पारावार पूरन, अपार, परब्रह्म, रासि,
जसुदा के कोरे[८] एक वारक कुरै[९] परी ॥२॥

धाये फिरौ ब्रज में, बधाये नित नंदजू के,
गोपिन सधाये, नाचौ गोपन की भीर[१०] में।
देव मतिमूढ़ै तुम्हें, ढूँढ़ै, कहाँ पावै, चढ़े
पारथ[११] के रथ, पैठे[१२] जमुना के नीर में॥
आँकुस ह्वै दौरि हरनाकुस कौ फार्‍यौ उर,
साथी न पुकारयौ, हते हाथी हिय तीर में।
विदुर[१३] की भाजी, बेर भीलनी[१४] के खाय,
विप्र चाउर[१५] चवाय, दुरे द्रौपदी के चीर में ॥३॥

१मुकुट। २ब्रज के शृङ्गार; श्रीकृष्ण। ३मोक्ष। ४कम करके। ५लक्ष्मी। ६ऐश्वर्यशाली। ७बिखेर दी गई। ८गोद में। ९डाल दी; भर दो; 'कुरैना' बुन्देलखंडी शब्द है। १०मंडली। ११पार्थ' अर्जुन। १२प्रवेश कर गये। १३दासी के गर्भ से उत्पन्न धृतराष्ट्र के भाई। १४शवरी। १५सुदामा के चावल।

'देव' नभ-मन्दिर में बैठार्‌यौ पुहुमि-पीठ[१]
सिगरे सलिल अन्हवाये उमहत[२] हौं।
सकल महीतल के मूल, फल, फूल, दल,
सहित सुगन्धन चढ़ावन चहत हौं॥
अगिनि अनन्त धूप, दीपक अखंड[३] जोति,
जल, थल, अन्न दै प्रसन्नता लहत हौं।
ढारत[४] समीर चौर, कामना न मेरे और,
आठौ जाम, राम, तुम्हें पूजत रहत हौं॥४॥

नाक,[५] भू, पताल, नाक-सूची[६] तें निकसि आये,
चौदहौं भुवन भूखे, भुनगा[७] को भयो हेत।
चींटी-अंड-भंड[८] में समान्यौ, ब्रह्मंड सब,
सपत[९] समुद्र बारि बुंद में हिलोरैं लेत॥
मिलि गयौ मूल थूल[१०], सूच्छम समूल कुल,
पंचभूतगन अनुकन में कियौ निकेत।
आप ही तें आपही सुमति-सिखराई[११], 'देव',
नखसिख[१२] राई में सुमेरु देखराई देत॥५॥*

तुहीं पंचतत्व, तुहीं सत्व रज, तम तुहीं,
थावर[१३] औ जंगम जितेक[१४] भयौ, भव में।
तेरे ये बिलास[१५] लौटि, तोहीं में समान्यौ, कछू,
जान्यौ न परत पहिचान्यौ जब जब में॥

१पृथिवी-रूपी आसन २प्रसन्न होता हूँ। ३अखंड ज्योति से दीपार्चन की जाती है। ४झलता है। ५स्वर्ग। ६सुई का छेद। ७छोटा-सा कीड़ा। ८पात्र। ९सप्त सात। १०स्थूल। ११सिखा दी। १२नख का अग्र भाग अथवा राई के दाने। नख-शिख अर्थात् पूरा अंग। १३स्थावर जड़। १४जितना। १५विभूति।

*आश्चर्य का कुछ ठिकाना! यह सब आत्मा की ही करामात है।

देख्यौ नहीं जात, तुहीं देखियतु जहाँ-तहाँ,
दूसरो न देख्यौ 'देव' तुहीं देख्यौ अब में ।
सब की अमरमूरि[1], मारि सब धूरि कहै,
दूरि सबही तें भरि पूरि रह्यौ सब में ॥६॥
मूढ़ ह्वै रह्यौ है, गूढ़ गति क्यों न ढूँढत है,
गूढ़चर[2] इन्द्रिय अगूढ़ चोर मारि दै ।
बाहर हूँ भीतर निकारि अंधकार सब,
ग्यान की अगिनि सों अयान[3]-बन बारि[4] दै ॥
नेहभरे भाजन में कोमल अमल जोति,
ताकौ हू प्रकास चहुँ पुंजन पसारि दै ।
आवै उमड़ा-सो मोह-मेह घुमड़ा-सो 'देव',
माया कौ मढ़ा[5]-सो अँखियन तें उघारि[6] दै ॥७॥
अँग[7], नग[8], नाग, नर, किन्नर, असुर, सुर,
प्रेत, पसु, पच्छी, कोटि-कोटिन कढ्यौ फिरै ।
माया-गुन[9] तत्व उपजत, बिनसत सत्व,
काल की कला कौ ख्याल खाल[10] में मढ्यौ फिरै ॥
आपहीं भखत, भख[11], आपही अलख[12]-लख,
'देव' कहूँ मूढ़, कहूँ पंडित पढ्यौ फिरै ।
आपहीं हथ्यार, आप मारत, मरत आप,
आपहीं कहार, आप पालकी चढ्यौ फिरै ॥८॥
तेरो घर घेरे आठो जाम रहैं आठो सिद्धि,
नवों निधि तेरे बिधि लिखिए ललाट हैं ।

१संजीवनी बूटी । २गुप्तचर । ३अज्ञान अविद्या । ४जला दे । ५माढ़ा । ६छाट डाल । ७जड़ । ८पहाड़ । ९मायिक त्रिगुण; सत्व रज और तम । १०पांचभौतिक शरीर । ११भक्ष्य । १२ अलक्ष्य; अदृश्य-दृश्य—अव्यक्त-व्यक्त इसे "एकमेवाद्वितीय ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन" का ही सरस भाष्य कहना चाहिए ।

'देव' सुख-साजमहराजनि कौ राज तुही,
सुमति सु सो ये तेरी कीरति के भाट हैं ॥
तेरे ही अधीन अधिकार तीन लोक कौ सु,
दीन भयौ क्यों फिरै मलीन घाट[1]-बाट हैं।
ता में जो उठत बोलि[2], ताहि क्यों न मिलै डोलि[3],
खोलिए हिये में दिये कपट-कपाट हैं ॥९॥*

हौं ही ब्रज, बृन्दावन मोहीं में बसत सदा,
जमुना-तरंग स्यामरंग अवलीन की।
चहूँ ओर सुन्दर, सघन बन देखियतु,
कुंजनि में सुनियतु सुगुंजन अलीन[4] की ॥
बंसीवट-तट नटनागर नटतु[5] मो में,
रास के बिलास की मधुर-धुनि बीन की।
भरि रही भनक[6], बनक ताल-तानन की,
तनक-तनक तामें झनक[7] चुरीन[8] की ॥१०॥§

सवैया

को तप कै सुरराज भयौ, जमराज कौ बंधन कौन खुलायौ?
मेरु मही में सही करिकैं, धन[9] ढेर कुबेर कौ कौन तुलायौ?
पाप न, पुन्य न, नर्क न सर्ग[10], मरौ सु मरौ फिरि कौन बुलायौ?
झूठ ही बेद-पुरानन बाँचि, लबारन लोग भले कैं भुलायौ[11] ॥११॥
मूढ़ कहैं मरिकैं फिरि पाइए, ह्याँ जु लुटाइए भौन भरे कौं।

१जहाँ-तहाँ। २शब्द, स्वयंभूत शब्द, जिसे "सोऽहं" कहते हैं। ३प्रयत्न करके। ४भ्रमरों की। ५नाचता है। ६आवाज़। ७झनकार। ८(गोपियों की) चूड़ियों की। ९धन संपत्ति। १०स्वर्ग। ११भ्रम में डाल दिया।

*इसमें अद्वैतवाद के अनुसार जीव-ब्रह्मैक्य का निरूपण किया गया है।

§नादात्मदृष्टि से, इस कवित्त में, रास-विलास का बड़ा ही अनूठा वर्णन किया गया है।

सो खल खोय खिल्यात खरे, अवतार[1] सुन्यौ कहुँ छार परे कौ ॥
जीवत तौ व्रत-भूख सुखौत[2], समीर महा सुर-रूखर[3] हरे कौ।
ऐसे असाधु असाधुन की बुधि, साधन देत सराध[4] मरे कौ ॥१२॥
है उपजे रज-बीज[5] ही तें, बिनसेहूँ सबै छिति छार[6] कै छाँड़े।
एक-से देखु, कछू न बिसेखु ज्यौं एकै उन्हारि[7] कुँभार के भाँड़े[8] ॥
तापर आपुन ऊँच ह्वै, औरन नीच कै पाय पुजावत चाँड़े।
वेदन[9] मूँदि करी इन दूँदि[10], सुसूद अपावन, पावन, पाँड़े[11] ॥१३॥*
साहेब अंध, मुसाहेब मूक, सभा बहिरी, रँग[12] रीझ कौ माच्यौ।
भूल्यौ तहाँ भटक्यौ भट औघट, बूड़िबे[13] कौ कोउ कर्म न बाच्यौ ॥
भेष न सूझ्यौ, कह्यौ समुझ्यो न, बतायौ सुन्यौ न कहा रुचि राच्यौ।
'देव' तहाँ, निबरे नट की, बिगरी मति कौ सिगरी निसि नाच्यौ ॥१४॥ऽ
हाय दई! यहि काल के ख्याल[14] में, फूल-से फूलि सबै कुँभिलाने।
या जग बीच बचे नहिं मीच पै, जे उपजे ते मही में मिलाने ॥
देव - अदेव, बली - बलहीन, चले गये मोह की हौंस हिलाने।
रूप-कुरूप, गुनी-निगुनी, जे जहाँ उपजे ते तहाँ ही बिलाने ॥१५॥§
'देव' जिये जब पूछौ तो पीर को, पार कहूँ लहि आवत नाहीं।

१अवतार...कौ—कहीं जले हुए मुरदे का भी पुनर्जन्म होता है? यह उक्ति चार्वाक के इस कथन से मिलता है "भस्मीभूतस्य देहस्य पुनर्जन्म न विद्यते।" २सुखा रहा है। ३वृक्ष। ४श्राद्ध। ५स्त्री-पुरुष का संयोग। ६भस्म होकर। ७प्रकार। ८मिट्टी के बर्तन। ९वेदन मूँदि—वेदों का अंट-संट अर्थ लगाकर। १०द्वन्द्व; अंधेर। ११ब्राह्मण। १२रँग...माच्यौ—चापलूसी का बाज़ार गर्म है। १३बूड़िबे...बाच्यौ—नरक जाने का कोई भी कर्म नहीं छूटा। १४लीला।

*यह कवित्त कबीरदासजी के 'पांडे बूझ बहति भाई' आदि पदों से मिलता है।

ऽकुपात्र अर्थात् अनाधिकारियों के लिए देवजी की ज्ञान चर्चा किस काम की?

§देव ने इस प्रकार 'जगद्दर्शन' किया है।

सो सब झूठ मतै मत कै वरु, मौन सोऊ सहि आवत नाहीं ॥
ह्वै नद-संग तरंगनि में मन फेन भयौ, गहि आवत नाहीं ।
चाहै कह्यौ बहुतेरौ कछू, पै कहा कहिए, कहि आवत नाहीं ॥१६॥*

'देव' सबै सुखदायक संपति, संपति कौ सुख दंपति जोरी[1] ।
दंपति दीपति प्रेम-प्रतीत, प्रतीति की रीति सनेह-निचोरी ॥
प्रीति तहाँ गुन-रीति विचार, विचार की बानी सुधारस बोरी ।
बानी कौ सार बखान्यौ सिंगार, सिंगार कौ सार किसोर[2]-किसोरी ॥१७॥

कवित्त

फटिक[3] सिलानि सों सुधार्‌यौ सुधा[4]-मंदिर,
उदधि दधि कौ-सो अधिकाई उमँगै अमंद[5] ।
बाहेर तें भीतर लौं भीति[6] न दिखैए 'देव',
दूध कैसौ फेनु फैलो आँगन, फरस बंद ॥
तारा-सी तरुनि तामें ठाढ़ी झिलमिल होति,
मोतिन की जोति मिली मल्लिका कौ मकरंद ।
आरसी से अंबर में आभा-सी उज्यारी लागै,
प्यारी राधिका कौ प्रतिबिंब सो लगत चंद ॥१८॥ऽ

पामरनि पामरे[7] परे हैं पुर पौरि लगि,
धाम-धाम धूपनि कौ धूम धुनियतु[8] है ।

१जोड़ी । २श्रीकृष्ण और राधिका । देवजी ने किशोर-किशोरी अथवा नायक-नायिका को पुरुष और प्रकृति के रूप में माना है : 'माया देवी नायिका, नायका पुरुष आप । सबै दंपतिन में प्रगट, 'देव' करै तिहि जाप' । (प्रेम-चंद्रिका) ३स्फटिक; बिल्लौर पत्थर । ४अमृत, इसका रंग सफेद माना गया है । ५धवल । ६दीवार । ७पाँवड़े । ८धुना जाता है ।

*जगत् और ब्रह्म की अनिर्वचनीयता-संबंधी यह मूक भाव गोसाईं तुलसीदासजी के 'केसव कहि न जाइ का कहिये' आदि पद से मिलता है ।

ऽक्या इससे भी उत्तम कहीं ग्रीष्म की रात्रि का दृश्य देखने में आयेगा ?

अतर, अगर[1], चारु चोवारस, घनसार[2],
दीपक हजारन अँध्यार लुनियतु[3] है ॥
मधुर मृदंग, राग रंगन तरंगन मैं,
अंग-अंग गोपिन के गुन गुनियतु हैं ।
'देव' सुखसाज, महाराज ब्रजराज आज,
राधाजू के सदन सिधारे सुनियतु हैं ॥१९॥

सवैया

वा चकई कौ भयौ चित-चीतौ[4]; चितौति चहूँदिसि चाय[5] सौं नाची ।
ह्वै गई छीन छपाकर[6] की छबि, जामिनि जोन्ह मनौं जम-जाँची[7] ॥
बोलत बैरी बिहंगम, 'देव' सु; बैरिन[8] के घर संपति साँची ।
लोहू पियौ जु बियोगिनी कौ, सु कियौ मुख लाल पिसाचिनि प्राची॥२०॥*

कवित्त

गुरुजन-जावन[9] मिल्यौ न, भयौ दृढ़ दधि,
मथ्यौ न बिबेक-रई[10] 'देव' जो बनायगो ।
माखन-मुकुति कहाँ छाँड्यौ न भुगुति[11] जहाँ,
नेह बिनु सिगरो सवाद खेह[12] नायगो[13] ॥
बिलखत बच्यौ, मूल कच्यौ, सच्यौ लोभ-भाँड़े,
तच्यौ[14] कोध-आँच, पच्यौ मदन सिरायगो[15] ।
पायौ न सिरावन[16] सलिल छिमा[17]-छींटेन सौं,

१चंदन । २कपूर । ३दूर करते हैं । ४मनचाहा । ५चाव, आनंद । ६चंद्रमा । ७नाश हो गई । ८शत्रु : यहाँ सौत से आशय है । ९जामन; कोई भी खट्टी चीज जिससे दूध जमाया जाता है । १०मथानी । ११भुक्ति, भोग-विलास । १२धूल में । १३पड़ गया । १४जलाया गया । १५बीत गया । १६ठंढा करनेवाला; शांत । १७क्षमा ।

*रक्तांमय का क्या ही सुन्दर वर्णन है । भारतेंदुजी ने 'सत्यहरिश्चंद्र' नाटक में इस सवैया को उद्धृत किया है ।

दूध-सो जनम बिन जाने उफनायगो ॥२१॥*

एकै अभिलाख लाख-लाख भाँति लेखियति,
देखियत दूसरो न, देव, चराचर में।
जासों मनु राँचै, तासों तनु-मनु राँचै[1],
रुचि भरि कै उघरि जाँचै, साँचै करि कर में॥
पाँचन[2] के आगे आँच लगे तें न लौटि जाय,
साँच देइ प्यारे की सती लौं बैठि सर[3] में।
प्रेम सों कहत कोऊ ठाकुर, न ऐंठौ सुनि,
बैठो[4] गड़ि गहरे, तो पैठो प्रेम-घर में ॥२२॥

जिन जान्यौ वेद, ते तौ बादि कै बिदित होहु
जिन जान्यौ लोक, तेऊ लीक[5] पै लरि मरौ।
जिन जान्यौ तप, तीनौ तापनि तें तपि-तपि,
पंचागिनि साधि ते समाधिन धरि मरौ॥
जिन जान्यौ जोग, तेऊ जोगी जुग-जुग जियौ,
जिन जानी जोति, तेऊ जोति[6] लै जरि मरौ।
हौं तौ, 'देव' नंद के कुँवर, तेरी चेरी भई,
मेरो उपहास क्यों न कोटिन करि मरौ ॥२३॥

सवैया

गाँठि हू तें गिरि जात गये, यह पेम न फेरि जुपै जग जोवै[7]।
ठौर ही ठौर रहै ठग ठाढ़ेई, पौर जिन्है न हँसै कि न रोवै॥
दीजिए ताहि जो आपन[8]-सो करै, 'देव' कलंकनि पंकनि धोवै।

1 मिल जाय, लगन लग जाय। 2 पंचभूतों के; पंचों के। 3 सरसी; चिता। 4 बैठो...गहरे—बड़े-से-बड़े कष्ट सहने को तैयार हो जाओ। खबरदार : "यह प्रेम को पंथ कराल महा, तलवार की धार पै धावनो है"। 5 रीति, पद्धति। 6 आत्मा-ज्योति, जो योग द्वारा दिखाई देती है। 7 देखे, तमाशा करे। 8 अपने समान का।

* बहुत ही सुन्दर रूपक है।

बुद्धि-वधू कौं वनाय कै सौंपु तू मानिक-सो मन धोखे न खोवे ॥२४॥

कवित्त

'देव' घनस्याम-रस वरस्यौ अखंड धार,
पूरन अपार प्रेम—पूर[१] न सहि पर्‌यौ।
विषै-बंधु बूड़े, मद-मोह-सुत दबे देखि,
अहंकार-मीत मरि, मुरझि[२] महि पर्‌यौ॥
आसा, त्रिसना-सी, वहू-वेटी लै निकसि भाजी
माया-मेहरी[३] पै देहरी पै न रहि पर्‌यौ।
गयौ, नहिं हेरो, लयौ वन में बसेरो नेह—
नदी के किनारे मन-मन्दिर ढहि[४] पर्‌यौ ॥२५॥ *

औचक[५] अगाध सिंधु स्याही कौ उमँगि आयौ,
तामें तीनों लोक बूड़ि गये एक संग में।
कारे-कारे कागद लिखे ज्यौं कारे आखर[६],
सु न्यारे करि वाँचै कौन, नाचै चित भंग में॥
आँखिन में तिमिर, अमावस की रैनि अरु,
जंबूरस[७] बूँदि जमुना-जल-तरङ्ग में।
यों ही मन मेरो मेरे काम कौ न रह्यौ 'देव'
स्यामरङ्ग ह्वै करि समान्यौ स्याम रङ्ग में ॥२६॥ §

सवैया

प्रेम-पयोधि परो गहिरे, अभिमान कौ फेन रह्यौ गहि, रे मन।

१बाढ़। २मूर्च्छा खाकर। ३दासी। ४भरकर गिर पटा। ५अचानक। ६अच्छर। ७जामुन का काला रस।

*क्या फिर भी लोग नेह-नदी के किनारे अपना मन मन्दिर बनायँगे ?

§पर बिहारी का अनुरागी मन स्याम-रंग में डुब जाने पर भी स्याम नहीं हुआ, वरन् और भी उज्ज्वल हो गया : 'या अनुरागी चित्त की, गति समझै नहिं कोय। ज्यों ज्यों डूबे स्याम-रँग, त्यों-त्यों उज्ज्वल होय।'

कोप-तरंगनि सो वहि रे, पछिताय पुकारत क्यों, बहिरे[1] मन ॥
'देवजू' लाज-जहाज तें कूदि, रह्यौ मुख मूँदि अजौं रहि[2], रे मन ।
जोरत तोरत प्रीति तुहीं, अब तेरी अनीति तुहीं सहि, रे मन ॥२७॥

कवित्त

तेरो कह्यौ करि-करि, जीव रह्यौ जरि-जरि[3],
हारी पाँय परि-परि, तऊ तैं न की सँभार ।
ललन[4] विलोकि, 'देव' पलन लगाये, तब
यौं कल[5] न दानी तैं छलन उछलन[6] हार ॥
ऐसे निरमोही सों सनेह वाँधि हौं वँधाई,
आपु विधि बूड्यौ माँझ बाधा-सिंधु निरधार ।
एरे मन मेरे, तैं घनेरे दुख दीन्हे, पल
ए कैवार[7] दैकैं तोहि मूँदि मारौं एकैवार[8] ॥२८॥
ऐसो जो हौं जानतो, कि जैहै तूँ विषै के संग,
एरे मन मेरे, हाथ-पाँव तेरे तोरतो[9] ।
आजुलौं हौं कत[10] नरनाहन की नाहीं सुनि,
नेह सों निहारि हारि बदन निहोरतो[11] ॥
चलन न देतो 'देव' चंचल अचल करि,
चाबुक-चितावनीन[12] मारि मुँह मोरतो[13] ।
भारी प्रेम-पाथर नगारो दै गरे सों बाँधि,
राधावर-बिरुद[14] के वारिधि में बोरतो[15] ॥२९॥

१(१) अरे, बह जा (२) बहरा, न सुनने वाला । २ठहर जा । ३(सांसारिक त्रिविध ताप में) जल-जल कर । ४प्यारा । ५चैन । ६चंचल । ७किवाड़; पलक-रूपी किवाड़ । ८एक ही बार । ९तोड़ डालता । १०क्यों । ११वान्हा फिरता । १२उपदेश । १३मोड़ देता, उधर न जाने देता । १४यश । १५डुबो देता ।

सवैया

धार में धाय धँसी निरधार[1] ह्वै, जाय फँसी उकसीं न अँधेरी।
री! अँगराय[2] गिरीं गहिरी, गहि फेरे फिरीं न घिरीं नहिं घेरी॥
'देव' कछू अपनो बस ना, रस लालच लाल चितै भईं चेरी।
बेगि ही बूड़ि गईं पँखियाँ[3] अँखियाँ, मधु की मखियाँ भईं मेरी॥३०॥

कालिय काल महा विष-ज्वाल, जहाँ जल ज्वाल जरै रजनी दिनु।
ऊरध[4] के अध[5] के उबरे नहिं, जाकी बयारि[6] बरै तरु ज्यों तिनु॥
ता फनि[7] की फनि-फाँसिन में फँदि, जाय फँस्यौ, उकस्यौ[8] न अजौं छिनु।
हा ब्रजनाथ! सनाथ करौ, हम होती हैं नाथ अनाथ तुम्हैं बिनु॥३१॥

'देव' मैं सीस बसायौ सनेह[9] कै, भाल मृगम्मद[10] बिंदु कै राख्यौ।
कंचुकी में चुपर्‌यौ करि चोवा[11], लगाय लियो उर सों अभिलाख्यौ॥
लै मखतूल गुहे गहने, रस मूरतिवंत सिंगार[12] कै चाख्यौ।
साँवरे लाल को साँवरो रूप मैं, नैननि को कजरा करि राख्यौ॥३२॥

रैन सोई दिनु, इन्दु दिनेस, जुन्हाई है घाम घनो निरघाई।
फूलनि सेज, सुगंध दुकूलनि, सूल उठै तनु तूल[13] ज्यों नाई[14]॥
बाहर भीतर क्यौं हरै ऊन, ऐसी परै 'देव' जु पूँछन आई।
हौं ही भुलानी कि भूले सबै, कहूँ ग्रीषम मैं सरदागम[15] माई॥३३॥§

१निराधार। २उन्मत्त होकर, अंगड़ाई लेकर। ३पंख। ४ऊपर। ५नीचे। ६हवा, लपट। ७साँप। ८निकला। ९प्रेम, तेल। १०मृगमद, कस्तूरी। ११कई सुगंधित वस्तुओं का लेप। १२शृंगार रस, जिसका रंग श्याम माना गया है। १३रुई। १४आग। १५शरद ऋतु का आरंभ।

§बिहारी भी इसी प्रकार विरहिणी के मुख से भ्रम-भरी बात कहला रहे हैं: 'हौं ही बौरी विरह-बस, कै बौरो सब गाम। कहा-जानिए कहत हैं, ससिहिं सीत-कर नाम।'

कवित्त

बरुनी, बघंबर[1] में गूदरी पलक दोऊ,
कोए[2] राते[3] बसन भगौहैं[4] भेष रखियाँ।
बूड़ी जल ही में, दिन-जामिनि हूँ जागैं, भौहैं,
धूम सिर छायौ बिरहानल बिलखियाँ॥
अँसुवा फटिक-माल, लाल[5] डोरी-सेल्ही[6] पैन्हि,
भई हैं अकेली तजि चेलीं संग सखियाँ।
दीजिए दरस 'देव' कीजिए सँजोगिनि, ए
जोगिनि ह्वै बैठी हैं बियोगिनि की अँखियाँ॥३४॥

कंत बिन बासर बसंत लागे अंतक[7] से,
तीर ऐसे त्रिविध समीर लागे लहकन[8]।
सान[9] धरे सार-से चंदन घनसार[10] लागे,
खेद लागे खरे, मृगमद[11] लागे महकन॥
फाँसी-से फुलेल लागे, गाँसी-से गुलाब अरु,
गाज[12] अरगजा लागे, चोवा लागे चहकन।
अंग-अंग आगि ऐसे केसरि के नीर लागे,
चीर लागे जरन, अबीर लागे दहकन॥३५॥

सवैया

सुनिकै धुनि चातक मोरन की, चहुँ ओरन कोकिल कूकनि सों।
अनुरागभरे हरि बागन में, सखि रागनि राग अचूकनि सों॥
कवि 'देव' घटा उनई[13] उनई, बन भूमि भई दल दूकनि सों।

१बघंबर; बाघ का चमड़ा, जिसे योगी आसन के काम में लाते हैं। २आँख के दोनों कोने। ३लाल। ४भगवा रंग। ५लाल डोरे जैसी रेखाओं का जाल। ६योगियों का वस्त्र-विशेष। ७काल; मृत्यु। ८जोर से जलने लगे। ९सान...सार-से—खूब पैने भालों से। १०कस्तूरी। १२बिजली। १३उठ; घिर आई।

रँगरानी, हरी हहराती लता, झुकि जाती समीर के झूकनि[1] सों ॥३६॥

कवित्त

कोऊ कहौ कुलटा कुलीन अकुलीन कहौ,
कोऊ कहौ रंकिनि, कलंकिनि कुनारी हौं।
कैसो नरलोक, परलोक बर लोकनि में,
लीन्ही मैं अलीक[2], लोक-लीकनि तें न्यारी हौं॥
तन जाउ, मन जाउ, 'देव' गुरुजन जाउ,
प्रान किन जाउ, टेक टरति न टारी हौं।
वृन्दावन वारी बनवारी की मुकुट वारी,
पीत पटवारी वाहि मूरति पै वारी[3] हौं ॥३७॥

१झोकों से। २अमर्यादा। ३अपने को बलि या निछावर करती हूँ।

हरिश्चन्द्र

छप्पय

वनिक-बंस-अवतंस, सत्य - धीरज - वपुधारी ।
चौंसठकला - प्रवीन, प्रेम - मारग-प्रतिपारी ॥
विद्या-विनय-बिसिष्ट, सिष्ट-समुदाय सभा-जित ।
कविताकलकमनीय-कृष्णलीला-जग प्लावित ॥
कई लच्छ बानी भगतमाल-उच्चरारध-करन ।
आदि-अंत सोभित भये, हरिश्चंद्र प्रातःस्मरन ॥

—गोस्वामी राधाचरण

राय बालकृष्ण का वंश भारतवर्ष के इतिहास में प्रख्यात है। इतिहास-प्रसिद्ध सेठ अमीचंद इसी वंश में हुए हैं। अमीचंद के फ़तहचंद, फ़तहचंद्र के हर्षचंद्र और हर्षचंद्र के पुत्र गोपालचंद्र थे। इनका उपनाम 'गिरिधरदास' था। बाबू हरिश्चंद्र इन्हीं के सुपुत्र थे। गिरिधरदासजी परम वैष्णव, सदाचारी एवं सत्कवि थे। इन्होंने छोटे-बड़े सब चालीस ग्रंथ लिखे। भक्ति और शृङ्गार के अतिरिक्त गिरिधरदासजी ने 'विदुरनीति' आदि नीति-विषय के कुछ ग्रंथ लिखे हैं।

भाद्रपद शुक्ला ७ संवत् १६०७ को काशीपुरी में हरिश्चंद्र का जन्म हुआ। ६ वर्ष की अल्पावस्था में ही इनके पिता इन्हें छोड़कर गोलोक सिधार गये। बालक हरिश्चंद्र ने बचपन में ही अपनी कवित्व-शक्ति का परिचय देकर पिता से यह कहला लिया था 'हरिश्चंद्र! तू मेरे नाम को बढ़ायेगा।' सबसे पहले बालक हरिश्चंद्र ने यह दोहा बनाकर अपने पिताजी को सुनाया था :

लै ब्यौंड़ा ठाड़े भये, श्रीअनिरुद्ध सुजान।
बानासुर की सेन कों, हनन लगे भगवान॥

पिता के स्वर्गस्थ हो जाने पर यह स्वतंत्र विचार के हो गये। पढ़ने के लिए कालिज भेजे गये; पर वहाँ इनका जी न लगा। कुछ दिनों राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद से अंग्रेजी पढ़ी और इसी नाते उन्हें गुरु मानने लगे। पहले तो गुरु-चेला की खूब बनी, पर पीछे अनबन हो गई। राजा साहब 'दकियानूसी' थे तो बाबू साहब उदार विचारों के अंत तक यह मत-विरोध बढ़ता ही गया और बाबू साहब ने अपनी प्रखर प्रतिभा के द्वारा राजा साहब को जनता की दृष्टि में नीचे गिरा दिया।

बाबू साहब का प्रेम हिंदी-साहित्य के प्रति बचपन से ही था। यह रुचि दिनों-दिन बढ़ने लगी। और सन् १८२८ में यह मातृभाषा-प्रेम 'कवि वचन-सुधा' मासिक पत्र के रूप में वर्तमान दिखाई देने लगा। इसमें चन्द, देव, जायसी, कबीर आदि कवियों की कविता क्रमशः प्रकाशित होने लगी। बाद को गद्यात्मक लेख भी निकलने लगे। यह पत्र मासिक से पाक्षिक, और फिर साप्ताहिक हो गया। अब इसमें राजनीतिक, सामाजिक आदि विषयों का भी समावेश हो गया। 'कवि-वचन-सुधा' का सिद्धांत-वाक्य यह था :

खलजनन सों सज्जन दुखी मति होंहि, हरिपद-रति रहै।
अपधर्म छूटैं, स्वत्व निज, भारत गहै, कर-दुख बहै॥
बुध तजहिं मत्सर नारि-नर सम होहिं, जग आनँद लहै।
तजि ग्राम्य-कविता, सुकविजन की अमृतवानी सब कहै॥

अच्छे-अच्छे लेखक इसमें लेख दिया करते थे, जिनमें पंडित राधाचरण गोस्वामी, लाला श्रीनिवासदास, पंडित बिहारीलाल चौबे, बाबू तोताराम वर्मा, पं० दामोदर शास्त्री आदि लेखक उल्लेखनीय हैं। यह पत्र बाबू हरिश्चंद्रजी के अंत समय तक अर्थात सं १९४२ तक बराबर निकलता रहा। सन् १८६४ में 'बाला-बोधनी' पत्रिका निकाली। बाबू हरिश्चन्द्र ने हिंदी को बड़ा परिष्कृत किया। संपादन भी

अपूर्व होता था। पत्र-संपादन के साथ ही साथ आप की मनोवृत्ति नाटकों की ओर झुकी। हिंदी नाटकों के तो आप ही जन्मदाता थे। कर्पूर-मंजरी, सत्य हरिश्चंद्र और चंद्रावली नाटक इसी समय रचे गये। ये नाटक हिंदी-साहित्य के अनमोल रत्न हैं।

रसिक हरिश्चंद्र ने विद्वानों, कवियों, मित्रों और अनाश्रितों का बड़ा उपकार किया। बहुत बड़ी संपत्ति, अपनी उदारता वश थोड़े ही दिनों में पानी की तरह बहा दी। हरिश्चंद्र ने सभी भोग भोगे, अनेक दान किये, और जो भी धन से किया जा सकता है वह सब किया। कुछ भी देते समय उन्हें संकोच या परिताप नहीं हुआ। अंत तक अपने वचन निबाहे।

दृढ़ता और सत्य के तो आप साक्षात् रूप ही थे। निस्पृह ऐसे कि अपने हिस्से की समस्त संपत्ति दान कर दी। अंत में, फक्कड़ हो गये, या बादशाहों के भी बादशाह हो गये। धन्य!

जो गुन नृप हरिचंद में, जग हित सुनियत कान।
सो सब कवि हरिचंद में, लखहु प्रतच्छ सुजान॥

बाबू हरिश्चंद्र वल्लभकुल के अनन्य वैष्णव थे। आपका यह पद प्रसिद्ध है :

हम तों मोल लिये या घर के।
दास-दास श्रीवल्लभ-कुल के, चाकर राधावर के॥
माता श्रीराधिका, पिता हरि, बंधु दास गुनकर के।
'हरीचंद' तुम्हरे ही कहावत, नहिं विधि के, नहि हर के॥

यह होते हुये भी आप अन्य संप्रदायों को द्वेष-दृष्टि से नहीं देखते थे। वे पुरानी लकीर के फकीर नहीं थे। आपने वर्तमान प्रचलित कुरीतियों का प्रबल युक्तियों से खंडन किया। वर्ण-व्यवस्था मानते हुए भी आप छुआछूत के विषय में लिखते हैं :

अपरस सोला छूत रचि, भोजन-प्रीति छुड़ाय।
किये तीन-तेरह सबै, चौका चौका-लाय॥

बाबू हरिश्चंद्र सत्य को ही धर्म का सच्चा रूप मानते थे अपनी आचरण संबन्धी बुरी से बुरी बात भी कभी नहीं छिपाई, कहते हैं :

जगत-जाल में नित बँध्यौ, पर्यौ नारि के फंद।
मिथ्या अभिमानी, पतित, झूटो 'कवि हरिचंद' ॥

समाज-सुधार पर भी कई पुस्तकें लिखीं। 'प्रेम-योगिनी', 'अँग्रेजी स्तोत्र', 'जैन-कुतूहल', 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' आदि पुस्तकों में सामाजिक कुरीतियों का खूब भंडाफोड़ किया है। लोग इनके स्वतंत्र विचारों पर चिढ़-से गये और कहने लगे—'दो-चार कवित्त बनाय लिहिन वस होय गवा वबुआ विधाता !' पर यह आलोचकों की वाक्य-वाणावली की रत्ती भर भी परवाह नहीं करते थे। इनकी दृढ़ता ही थी; कि अनेक विघ्न-बाधाएँ आने पर भी कभी अपने सिद्धांतों पर से विचलित नहीं हुए।

बाबू हरिश्चंद्र ने लोकोपकार-संबन्धी कई प्रशंसनीय कार्य किये। सन् १८६८ में काशी में "होमियोपैथिक दातव्य -चिकित्सालय" अनाथों के लिए स्थापित कराया। संवत १९२७ में "कविता-वर्द्धिनी" सभा को जन्म दिया। इस सभा में कई नवीन कवि उत्पन्न हुए। उर्दू-कवियों के लिए आपने सन् १८६६ में मुशाइरा स्थापित किया, जिसमें सबके साथ आप भी उर्दू में समस्या-पूर्ति किया करते थे। उर्दू-कविता में आपका उपनाम 'रसा' था।

संवत १९३० में 'तदीय-समाज" की स्थापना की। इसके ६ नियम रखे गये थे। इसके सदस्य भारत के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध धार्मिक पुरुष-रत्न थे इस सभा में बिना टिकट के कोई भी प्रवेश नहीं कर सकता था। टिकट पर यह दोहा अंकित रहता था—

श्रीव्रजराज समाज के, तुम सुन्दर सिरताज।
दीजै टिकट निवाज करि, नाथ हाथ हित-काज।

इसी समाज में आपने 'वीर वैष्णव' की पदवी धारण की थी।

इसमें आपने वैष्णव-धर्मानुसार १६ प्रतिज्ञाएँ की थीं, जिनका आमरण पालन किया।

यह तो हम कह ही चुके हैं, कि बाबू हरिश्चंद्र गुणियों का बड़ा आदर करते थे। महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी को केवल एक दोहे पर १००) दे दिये थे। दोहा यह है :

राजघाट पर बँधत पुल, जहँ कुलीन कौ ढेर।
आज गये कल देखिकैं, आजहिं लौटे फेर॥

निर्धन हो जाने पर भी इनकी दान-वीरता में कमी नहीं आई। स्वर्गीय बाबू राधाकृष्णदास ने लिखा है, कि "आश्चर्य तो यह है, कि न तो मरने के समय बाबू हरिश्चंद्र अपने पास कुछ छोड़ मरे और न कुछ उचित ऋण दिये बिना बाक़ी रह गया।"

बाबू हरिश्चंद्र को लिखने का बड़ा व्यसन था। डाक्टर राजेंद्रलाल मित्र ने इनका लेखन-चमत्कार देखकर इन्हें 'राइटिंग मैशीन' (लेखनयंत्र) की उपाधि दे रखी थी। कविता-शक्ति भी विलक्षण थी। बात-की बात में समस्यापूर्ति कर दिया करते थे। महाराणा उदयपुर के दरबार में बैठे-बैठे यह समस्या-पूर्त्ति तुरंत कर दी थी :

राधा-स्याम सेवैं, सदा वृन्दावन-बास करैं,
रहैं निहचिंत पद आस गुरुवर के।
चाहैं धन-धाम, न आराम सों है काम,
'हरिचंद' जू भरोसे रहैं नंदराय-घर के॥
एरे नीच धनी! हमें तेज तू दिखावै कहा,
गज परवाही नाहिं होहिं कबौं खर के।
होइ लै रसाल! तू भलेई जग-जीवन काज,
आसी ना तिहारे ये निवासी कल्पतरु के॥

'अंधेर-नगरी' नाटिका एक दिन में लिख डाली थी। यों तो इनके सभी पद्य सरस होते थे, पर सवैया तो बेजोड़ होता था। छोटे-बड़े

सब मिलाकर १७९ ग्रंथ लिखे; जिनमें बहुत-से संग्रहीत और संपादित भी हैं। नाटक, इतिहास, भक्तिरस, चरितावली और काव्यामृत-प्रवाह आदि पाँच भागों में ये सब ग्रंथ विभक्त हैं। नाटकों में 'सत्य हरिश्चंद्र' और चंद्रावली'; धर्मसंबन्धी ग्रंथों में 'तदीयसर्वस्व'; काव्य में 'प्रेम फुलवारी'; इतिहास में 'काश्मीर-कुसुम' और देश-दशा में 'भारत-दुर्दशा' बड़ी ही उत्कृष्ट रचनाएँ हैं। संग्रहीत ग्रंथों में 'सुंदरी-तिलक' अपूर्व है। कविता व्रजभाषा में करते थे। खड़ी बोली में भी कुछ कविताएँ लिखी थीं, पर उसमें वैसे सफल नहीं हुए, सिद्धांतरूप से लिख भी दिया कि खड़ी बोली में मधुर कविता हो नहीं सकती। हिन्दी के अतिरिक्त यह संस्कृत और उर्दू, मारवाड़ी, गुजराती, बङ्गला, पंजाबी, मराठी, अवधी आदि भाषाओं में भी कविता रचते थे। आपकी असीम और अप्रतिम हिन्दी-साहित्य-सेवा देखकर देश ने आपको 'भारतेंदु' की पदवी से सन् १८८० में विभूषित किया था।

बाबू हरिश्चंद्र ने अपनी अनुपम प्रतिभा से काव्य में चार और नवीन रस माने—वात्सल्य, सख्य, भक्ति और आनंद। तर्करत्न महोदय ने भी एक स्थल पर इन रसों को प्रमाणस्वरूप मानकर लिखा है: 'हरिश्चंद्रास्तु वात्सल्यसख्यभक्त्यानंदाख्याधिकं रसचतुष्टयं मन्यंते।'

यह तो हम कह ही चुके हैं, कि यह साक्षात् 'प्रेममूर्ति' थे। प्रेम ही इनका इष्टदेव था। वियोग-श्रृङ्गार की इनकी रचनाएँ अनूठी हैं। 'चंद्रावली' नाटिका इनके अतिरिक्त सिद्धांतों की प्रतिमूर्ति है। वास्तव में, यह यह पुस्तक अपने ढंग की एक ही है।

एक स्थान पर इन्होंने प्रेमियों की उन्मत्तता का चित्र नीचे के सवैया में क्या ही सुंदर खींचा है:

हम हूँ सब जानतीं लोक की चालनि, क्यों इतनी बतरावती हौ ?
हित जामें हमारो बनै सो करौ, सखियाँ तुम मेरी कहावती हौ ॥
'हरिचंद जू' यामें न लाभ कछू, हमें बातनि क्यों बहरावती हौ ?

सजनी, मन हाथ हमारे नहीं, तुम कौन कों का समुझावती हौ !

अंतर की पीर अंतर ही जानता है, मर्मवाले संसार में विरले ही हैं, इसे लक्ष्य में रखकर भारतेंदु लिखते हैं :

मन की कासों पीर सुनाऊँ ?
बकनो वृथा और पत खोनो, सबै चवाई गाऊँ ॥
कठिन दरद कोऊ नहिं हरिहै, धरिहै उलटो नाऊँ ।
यह तौ जो जानै सोइ जानै, क्योंकरि प्रगट जनाऊँ ॥
रोम-रोम प्रति नैन स्रवन मन, केहिँ धुनि रूप लखाऊँ ।
बिना सुजान-सिरोमनि री, किहिं, हियरो काढ़ि दिखाऊँ ॥
मरमिन सखिन वियोग दुखिन क्यों, कहि निज दसा रोआऊँ ।
'हरीचंद' पिय मिलैं तो पग परि, गहि पटुका समझाऊँ ॥

भक्ति-सुधा-सागर में डूब जाने पर भी भारतेंदुजी ने समाज सुधार, देश-भक्ति आदि विषयों पर उत्तमोत्तम रचनाएँ की हैं। 'भारत-दुर्दशा' नाटक तो करुणा की साक्षात् मूर्ति है। इसे पढ़कर कलेजा काँप उठता है, आँसुओं की झड़ी लग जाती है। कारण यह है कि भारत भारती ने ऐसा मर्मस्पर्शी हृदयवाला राष्ट्रभाषा-भक्त पुत्र फिर नहीं जना।

प्रेमघनजी की 'आनंदकादंबिनी', प्रतापनारायण का 'ब्राह्मण', बालकृष्ण भट्ट का 'हिंदी प्रदीप', राधाचरण गोस्वामी का 'भारतेंदु', आदि पत्र-पत्रिकाओं ने अपने रक्त की एक-एक बूँद से राष्ट्रभाषा हिंदी की जो सेवा की, उस सबका श्रेय भारतेंदुजी को ही है।

लाला श्रीनिवासदास आपकी प्रेरणा से हिंदी लिखने लगे। पं० राधाचरण गोस्वामी ने आपको कविता में अपना गुरु माना। पं० प्रतापनारायण मिश्र ने आपको "पूज्यपाद" "हरिश्चंद्रायनमः" आदि श्रद्धा-भक्ति पूर्ण शब्दों में स्मरण किया। बाबू साहब के स्वर्गस्थ होने पर मिश्रजी ने 'हरिश्चंद्र-संवत्' भी लिखना आरम्भ कर दिया था।

भारतेन्दुजी के स्वभाव में अनेक विलक्षण गुण थे। प्रेमसिन्धु तो हृदय में लहरें मारता ही था, साथ ही, दया, अक्रोध, सहनशीलता, दृढ़ता आदि सद्‌गुणों ने सोने में सुगंध भर दी थी। सदा हँसमुख रहते थे। व्यवहार सीधा और सच्चा था। अहंकारी के सामने पल भर भी खड़े नहीं होते थे, पर गुणियों की चरण-सेवा करने को भी सदा तैयार रहते थे। आपने स्वयं अपना स्वभाव नीचे के कवित्त में वर्णन किया है :

सेवक गुनीजन के, चाकर चतुर के हैं,
कविन के मीत, चित हित गुनी गानी के।
सीधेन सों सीधे, महा बाँके हम बाँकेन सों,
'हरीचन्द' नगद दमाद अभिमानी के॥
चाहिबे की चाह, काहू की न परवाह, नेह—
नेह के दिवाने सदा सूरत निवानी के।
सरबस रसिक के, सुदास-दास प्रेमिन के,
सखा प्यारे कृष्ण के, गुलाम राधा रानी के॥

हम भारतेन्दुजी की यहाँ पर केवल उन्हीं थोड़ी-सी कविताओं को उद्धृत कर रहे हैं, जिनका सम्बन्ध केवल 'ब्रजमाधुरी' से है :

दोहा

भरित नेह नवनीर नित, बरसत सुरस अथोर।
जयति अपूरब घन कोऊ, लखि नाचत मन-मोर॥१॥

इस दोहे में 'मर्यादा-महिमा' की रक्षा करते हुए भारतेंदुजी ने उस 'घन' को प्रकट नहीं किया, जिसे देखकर उनका 'मन-मोर' नाच उठता है। 'कोऊ' शब्द तो इस मांगलिक दोहे की जान है। अस्तु, 'कोऊ घन' से तात्पर्य आनंद-घन श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण से है।

जेहिं लहि फिर कछु लहन[1] की, आस न जिय में होय ।
जयति जगत-पावन-करन, 'प्रेम' बरन यह दोय ॥२॥
चंद मिटै, सूरज मिटै, मिटै जगत के नेम ।
यह दृढ़ 'श्रीहरिचंद' को, मिटै न अविचल प्रेम ॥३॥*
मोरौ मुख घर-ओर सों, तोरौ भव के जाल ।
छोरौ सब साधन, सुनौ, भजौ एक नँदलाल ॥४॥
श्रीवल्लभ[2] वल्लभ कहौ, छाँड़ि उपाय अनेक ।
जानि आपुनो राखिहैं, दीनबंधु की टेक ॥५॥
श्रीजमुना-जल-पान करु, बसु वृन्दावन-धाम ।
मुख में महाप्रसाद रखु, लै श्रीवल्लभ-नाम ॥६॥
तन पुलकित रोमांच करि, नैननि नीर बहाव ।
प्रेममगन उनमत्त ह्वै, 'राधा-राधा' गाव ॥७॥
सब दीननि की दीनता, सब पापिन कौ पाप ।
सिमिटि आइ मोंमे रह्यौ, यह मन समुझहु आप ॥८॥
प्राननाथ, ब्रजनाथ जू, आरतिहर[3], नँदनंद ।
धाइ भुजा[4]-भरि राखिए, डूबत भव 'हरिचंद' ॥९॥
साधुन को संग पाइकैं, हरि-जसु गाइ-बजाइ ।
नृत्य करत हरि-प्रेम में, ऐसैं जनम बिहाइ ॥१०॥

छप्पय

जय जय नंदानंदकरन, वृषभानु-मान्यतर ।
जयति जसोदा सुवन कीर्त्तिदा-कीर्ति दानकर ॥
जय श्रीराधा-प्राननाथ, प्रनतारति-भंजन ।

१ लेने । २ श्रीवल्लभाचार्य । ३ दुःख हरनेवाले । ४ हृदय से लगाकर ।

* यह दोहा ग्वाल कवि के निम्नलिखित दोहे का प्रतिबिंब-सा जान पड़ता है : "चन्द्र घटै, सूरज घटै घटै त्रिगुन-विस्तार । पै दृढ़ व्रत हरिचंद को, घटै न नियम-विचार ॥"

जय वृन्दावनचंद्र, चंद्रवदनी-मनरंजन ॥
जय गोपति[१], गोपति, गोरपति, गोपीपति, गोकुल-सरन ।
जय कष्ट-हरन,करुनाभरन[२],जय श्रीगोवर्धन-धरन ॥११॥*

प्रेम-फुलवारी

अहो हरि, बस अब बहुत भई ।
अपनी दिसि बिलोकि करुनानिधि, कीजै नाहिं नई[३] ॥
जो हमरे दोषन को देखौ, तौ न निवाह हमारो ।
करिकै सुरत अजामिल, गज की हमरे करम[४] बिसारो ॥
अब नहिं सही जाति कोऊ बिधि, धीर सकत नहिं धारी ।
'हरीचंद' कों बेगि धाइकैं, भुज भरि लेहु उबारी ॥१२॥

पियारे, याकौ नाँव नियाव[५] ?
जो तोहिं भजै ताहि नहिं भजनो, कोनो भलो बनाव ॥
बिनु कछु किये जानि अपुनो जन, दूनो दुख तेहि देनो ।
भली नई यह रीति चलाई, उलटो अवगुन लेनो ॥
'हरीचंद' यह भलो निबेरेयो[६], ह्वै कै अंतरजामी ।
चोरनि[७] छाँड़ि-छाँड़िकै, डाँरो उलटो धन[८] को स्वामी ॥१३॥

प्यारे, अब तौ सही न जात ।
कहा करैं कछु बनि नहिं आवत, निसिदिन जिय पछितात ॥
जैसें छोटे पिंजरा में कोउ, पंछी परि तड़िपात ।
त्यौंही प्रान परे यह मेरे, छूटन कों अकुलात ॥

१(१) गौओं के स्वामी (२) इन्द्रियों के स्वामी, हृषीकेश । २करुना ही जिनका आभरण है, अत्यंत करुणाशील । ३बात यह कि शरणागत को, बिना-भक्ति-दान दिये, सामने से हटा देना । ४पाप-कर्म । ५न्याय, इन्साफ । ६निर्णय किया । ७यहाँ चोरों से तात्पर्य काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य आदि से है । ८धन...स्वामी—इन्द्रियों और मन का स्वामी, जीवात्मा ।

*यह छप्पय 'श्रीनाथ-स्तुति' से लिया गया है ।

कछु न उपाव चलत अति व्याकुल, मुरि[1]-मुरि पछरा खात।
'हरीचंद्र' खींचौ[2] अब कोउ विधि, छाँड़ि पाँच औ सात[3] ॥१४॥

भरोसो रीझन हीं लखि भारी।
हमहूँ कों बिस्वास होत है, मोहन 'पतित-उधारी'।
जो ऐसो सुभाव नहिं होतो, क्यों अहीरकुल भायौ[4]।
तजिकैं कौस्तुभ[5]-सो मनि गर क्यों, गुंजा-हार धरायौ॥
क्रीट-मुकुट सिर छाँड़ि पखोआ[6] मोरन कौ क्यों धारयौ।
फेंट कसी टेंटिन[7] पै, मेवन कौ क्यों स्वाद बिसारयौ॥
ऐसी उलटी रीझि देखिकैं, उपजति है जिय आस।
जग-निंदित 'हरिचंदहुँ' कों अपनावहिंगे करि दास ॥१५॥

सँभारहु[8] अपने कों गिरधारी।
मोर-मुकुट सिर-पाग पेंच कसि, राखहु अलक सँवारी॥
हिय हलकति[9] बनमाल उठावहु, मुरली धरहु उतारी।
चक्रादिकन सान दै राखौ, कंकन-फँसन निवारी[10]॥
नूपुर लेहु चढ़ाइ किंकिनी, खींचहु करहु तयारी।
पियरो पट परिकर कटि कसिकैं, बाँधौ हो बनवारी॥
हम नाहीं उनमें जिनकों तुम, सहजहिं दीनों तारी।
बानो जुगवौ[11] नीकैं अब की, 'हरीचन्द' की बारी ॥१६॥*
प्राननाथ, तुमसों मिलिबे की कहू-कहू जुगति न कीनीं।

१मुड़-मुड़कर, ऐंठ-ऐंठकर पछाड़ खाते हैं। २अपने समीप बुला लो। ३मीन-मेख; संकल्प-विकल्प। ४पसंद आया। ५एक मणि, जिसे विष्णु भगवान् सदा वक्षस्थल पर धारण किये रहते हैं। यह मणि, समुद्र से प्राप्त हुआ था। ६पंख। ७करील का कडुआ फल। यह [illegible] से बहुत कम [illegible] से होता है। ८होशियार हो जाओ। ९लटकती हुई। १० हटाकर, उतारकर। ११ [illegible] रखो।

*इस पद में पूर्व और अंत दोनों ही पर्याप्त मात्रा में हैं।

पचिहारी[1] कछु काम न आई, उलटि सबै बिधि दीनीं ॥
हेरि चुकी बहु दूतिन को मुख, थाह सबनि की लीनीं ।
तब अब सोच बिचारि निकारी, जुगति अचूक नवीनीं ॥
तन परिहरि, मन दै तुव पद में, लोक-त्रिगुनता छीनीं[2] ।
'हरीचंद' निधरक विहरौंगी, अधर-सुधारस-भीनीं[3] ॥१७॥

पियारे, क्यों तुम आवत याद ?
छूटत सकल काज जग के, सब मिटत भोग के स्वाद ॥
जबलौं तुम्हरी याद रहै नहिं, तबलौं हम सब लायक ।
तुम्हरी याद होतहीं चित में, चुभत लगन के सायक ॥
तुम जग के सब कामन के अरि, हम यह निहचै[3] जानें ।
'हरीचन्द' तौ क्यों[4] सब तुम्हरे प्रेमहिं जग में सानें ॥१८॥

रहैं क्यों एक म्यान असि[5] दोय ।
जिन नैनन में हरि-रस छायौ, तिहिं क्यों भावै कोय ॥
जा तन-मन में रमि रहे मोहन, तहाँ ग्यान[6] क्यों आवै ।
चाहौ जितनी बात प्रबोधौ, ह्याँ को, जो पतियावै ॥
अमृत खाइ अब देखि इनारुन[7], को मूरख जो भूलै ।
'हरीचन्द' ब्रज[8] को कदली-बन, काटौ तौ फिरि फूलै ॥१९॥

फेरहूँ मिलि जैयो इक बार ।
इ प्रानिन कौ नाहिं भरोसो, ये हैं चलन-तयार ॥

१श्रम करके थक गई। २छकी हुई। ३निश्चय पूर्वक। ४क्यों...सानैं—समझ में नहीं आता, लोग परमार्थ और व्यवहार को क्यों एकसाथ सान रहे हैं। कहीं एक म्यान में दो तलवारें रह सकती है? ५तलवार। ६नास्तिक ज्ञानवाद। ७इन्द्रायण का फल, जो बहुत कड़ुवा होता है ८ब्रज...फूलै—जैसे केले का पेड़, चाहे जितने बार काटते जाओ, बार-बार फूलता-फलता रहता है, वैसे ही हे उद्धव, तुम चाहे जितनी बार ज्ञान-रूपी खड्ग से प्रेम को काटो, वह बराबर अंकुरित और प्रफुल्लित होता रहेगा।

जो प्रतच्छ इत आइ न विहरौ, प्यारे नंदकुमार !
तौ दूरहि तें वदन दिखावौ, करौं लाल मनुहार[1] ॥
नहिं रहि जाइ बात जिय मेरे, यह निज चित्त बिचार ॥
'हरीचंद' न्यौतेहुँ[2] के मिस, व्रज आवौ बिना अवार[3] ॥२०॥

भई सखि, ये अँखियाँ बिगरैल ।
बिगरि परीं, मानति नहिं, देखे बिना साँवरो छैल ॥
भई मतवारि, धरति पग डगमग, नहिं सूझति कुल-गैल[4] ।
तजिकैं लाज, साज गुरुजन की, हरि की भई रखैल[5] ॥
निज चवाव सुनि औरहुँ हरखति, करति न कछु मन मैल[6] ।
'हरीचंद' सब संग छाँड़िकैं, करहिं रूप की सैल[7] ॥२१॥

पुरानी परी लाल, पहिचान ।
अब हमको काहे को चीन्हौ, प्यारे, भये सयान[8] ॥
नई प्रीति, नये चाहनवारे, तुमहूँ नये सुजान ।
'हरीचंद' पै जाँय कहाँ हम, लालन[9] करहु बखान ॥२२॥

सखी, ये अति उरझौहैं[10] नैन ।
उररिझ परत सुरझ्यौ नहिं जानत, सोचत-समुझत हैं न ॥
कोऊ नहिं बरजै, जो इनकौं बनै मत्त जिमि गैन[11] ।
'हरीचंद' इन बैरिन पाछैं, भये लैन[12] के-दैन[12] ॥२३॥

मरम[13] की पीर न जानै कोय ।
कासों कहौं, कौन पुनि मानै, बैठि रहीं घर रोय ॥
काऊ जरनि[14] न जाननिवारी, बेमहरम[15] सब लोय[16] ।
अपुनी कहत, सुनत नहिं मेरी, केहि समुझाऊँ सोय ॥

नम्रतापूर्वक विनय। २निमंत्रण के ही। ३देर। ४वंश-मर्यादा। ५खरीदी हुई; गुलाम। ६बदनाम। ७सैर। ८अवस्था में बड़े, प्रौढ़, चतुर। ९प्यारे १०लगन रूपी आग में उलझ जानेवाले। ११गयंद, हाथी। १२लेने का देना, आफत। १३अंतर, हृदय। १४जलन; प्रेम की आग। १५भेद न जाननेवाले। १६लोग

लोक-लाज, कुल की मरजादा, बैठि रही सब खोय।
'हरीचंद' ऐसेहिं निबहैगी, होनी होय सो होय ॥२४॥*

रहे यह देखन कों दृग दोय।
गये न प्रान अबौं अँखियाँ ये जीवति निरलज हाय ॥
सोई कुंज हरे-हरे देखियत, सोई सुक, पिक, कीर।
सोई सेज परी सूनी है, बिना मिले बल-बीर ॥
वही झरोखा, वही अटारी, वही गली, वही साँझ।
वहै नाहिं जो बेनु बजावत, ऐहैं गलियन माँझ ॥
ब्रज हूँ वही, वही गौएँ ये, वही गोप अरु ग्वाल।
बिडरे[1] सब अनाथ-से डोलत ब्याकुल बिना गुपाल ॥
नंद-भवन सूनो देखत, क्यों गयौ नहीं हिय फाट।
'हरीचंद' उठि बेगहिं धावौ, फेरहु ब्रज की बाट[2] ॥२५॥

बिहरिहैं जग[3] सिरपै दे पाँव।
एक तुम्हारे है पियप्यारे, छाँड़ि और सब गाँव[4] ॥
निंदा करौ, बताओ बिगरी, धरौ[5] सबै मिलि नाँव।
'हरीचंद' नहिं कबहुँ चूकिहैं, हम यह अबकौ दाँव[6] ॥२६॥

न जानों गोविन्द कासों रीझै।
जप सो, तप सो, ग्यान-ध्यान सों, कासों, रिसिकरि खीजै ॥
वेद-पुरान भेद नहिं पायौ, कह्यौ आन[7] की-आन।
कह जप तप कीनों गनिका ने, गीध कियौ कह दान ॥

[1]तीन तेरह, तितर-बितर। [2]मार्ग। [3]जग...पाँव—संसारी दुष्टों को नीचा दिखाकर। [4]स्थान, लोक। [5]धरौ...नाँव—बदनाम करो। [6]अवसर
[7]कुछ-का कुछ, परस्पर विरोधी सिद्धान्तों का प्रतिपादन।
*यह पद भावोत्कृष्टता और तन्मयता का बड़ा बढ़िया उदाहरण है।

नेमी ग्यानी दूर होत हैं, नहिं पावत कहुँ ठाम।
ढीठ लोक-बेदहुँ तें निंदित, घुसि-घुसि करत कलाम॥
कहुँ उलटी, कहुँ सीधी चालैं, कहुँ दोउन तें न्यारी।
'हरीचंद' काहू नहिं जान्यौ, मन[1] की रीति निकारी॥२७॥

लाल के रंग रँगी तूँ प्यारी!
याही तें तन धारत मिसकै, सदा कुसुंभी[2] सारी॥
लाल अधर, कर पद सब तेरे, लाल तिलक सिर धारी।
नैननहूँ में डोरन के मिस, झलकत लालबिहारी॥
तन में रही नहीं सुधि तन की[3], नख-सिख तूँ गिरिधारी।
'हरीचंद' जग-विदित भई यह, प्रेम-प्रतीति तिहारी॥२८॥

टरौ इन अँखियनि सों अब नाहिं।
निवसौ सदा सोहागिन राधा, पुतरी-सी दृग माहिं॥
नील निचोल,[4] तरकुली[5] काननि, सिर सिंदूर मुख पान।
काजर नैन, सहजहीं भोरी,[6] मन-मोहिनि मुसुकान॥
सदा राज राजौ बृन्दावन, सुबस[7] बसौ ब्रज-देस।
बरसौ प्रेम-अमृत प्रेमिन पै, नितहिं स्यामघन-भेस॥
देखि यहै अब दूजो देखन, परै न जौंलौं प्रान।
'हरीचंद' निवहौ स्वासा[8] लगि, यहै प्रेम की बान॥२९॥

राधे, तुव सुहाग की छाया, जग में भयौ सुहाग।
तेरी ही अनुराग-छटा हरि, सृष्टि करन अनुराग॥
सत चित तुव कृत सों बिलगाने,[9] लीला प्रिय जन भाग।
पुनि 'हरिचंद' अनंद होत लहि, तुव पद-पदुम पराग॥३०॥

१मन...निकारी—मनमानी बरजाना करने लगे—'परम स्वतंत्र न सिर पै कोई। भावै तुमहि करौ सो-सोई।' २लाल रंग। ३जरा भी ४वस्त्र। ५तरौना। ६भोली-भाली। ७सुखपूर्वक। ८प्राण रहने। ९पृथक रूप हो गये: यथा, 'एकोऽहं बहुस्यामि'।

प्रीति की रीति ही अति न्यारी[१] ।
लोक-वेद सब सों कछु उलटी[२] केवल प्रेमिन प्यारी ॥
को जानै, समुझै को याकों, विरली जाननहारी ।
'हरीचंद' अनुभव हीं लखिए, जामें गिरिवरधारी ॥२१॥

रे मन, करु नित—नित यह ध्यान ।
सुंदर रूप गौर स्यामल छवि, जो नहिं होत वखान ॥
मुकुट सीस चन्द्रिका वनी, कनफूल[३] सुकुंडल कान ।
कटि काछिनि, सारी पग नूपुर, विछिया अनवट[४] पान ॥
कर कंचन, चूरी दोउ भुज पै, वाजू सोभा देत ।
केसर खौर, विन्दु सेंदुर कौ, देखत मन हरि लेत ॥
मुख पै अलक, पीठ पै वेनी, नागिनि - सी लहरात ।
चटकीले पट निपट मनोहर, नील - पीत फहरात ॥
मधुर-मधुर अधरन वंसी धुनि, तैसीहीं मुसकानि ।
दोउ नैनन रसभीनी चितवनि, परम दया की खानि ॥
ऐसो अद्भुत भेष विलोकत, चकित होत सव आय ।
'हरीचंद' विनु जुगुल कृपा यह, लख्यौ कौन पै जाय ॥२२॥

प्रेम-प्रलाप

नखरा राह[५]-राह कौ नीको।
इत तौ प्रान जात हैं तुम विनु, तुम न लखत दुख जीकौ ॥
धावहु वेगि नाथ करुना करि, करहु मान मति फीकौ ।
'हरीचंद' अठलानिपनें[६] कौ, दियौ तुमहिं विधि टीकौ ॥२३॥

नाथ, तुम अपनी ओर निहारौ ॥
हमरी ओर न देखहु प्यारे, निज गुन-गननि विचारौ ॥

१निराली । २अलग ही । ३कानों में पहनने की पुष्पाकृति आभूषण । ४-अनौटा, पैरों में पहनने काभूषण । ५जहाँ तक उचित हो । ६घमंड, गुमान ।

जो लखते अबलौं जन-औगुन, अपने गुन बिसराई।
तौ तरते किमि अजामेल-से पापी, देहु बताई॥
अबलौं तौ कबहूँ नहिं देखे, जन के औगुन प्यारे।
तौ अब नाथ, नई[1] क्यों ठानत, भाखेहुँ बार हमारे॥
तुव गुन छिमा दया सों, मेरे; अघ नहिं बड़े कन्हाई।
तासों तारि देहु नँदनंदन, 'हरीचंद' कों धाई॥३४॥

अहो! इन झूठन मोहिं भुलायो।
कबहुँ जगत के, कबहुँ स्वर्ग के, स्वादनि मोहिं ललचायो॥
भले होइ किन लोह हेम की, पुन्य-पाप दोउ बेरी।
लोभमूल परमारथ स्वारथ, नामहि में कछु फेरी॥
इनमें भूलि कृपानिधि तुम्हरे, चरन-कमल बिसराये।
तुम बिनु भटकत फिर्यौ जगत में, नाहक जनम गँवाये॥
हाय-हाय करि मोह छाँड़ि कैं, कबहुँ न धीरज धार्यौ।
या जग जगती जोर अगिनि में, आयु सु-दिन सब जार्यौ॥
करहु कृपा करुनानिधि केसव, जग कौ जाल छुड़ाई।
दीन-हीन 'हरिचंद' दास कों बेगि लेहु अपनाई॥३५॥

हमहूँ कबहूँ सुख सों रहते।
छाँड़ि जाल सब, निसिदिन मुख सों, केवल कृष्णहिं कहते॥
सदा मगन लीला-अनुभव में, दृग दोउ अविचल बहते।
'हरीचंद' घनस्याम-बिरह इक, जग-दुख तृन-सम दहते॥३६॥

करुनाकर करुना करि, बेगहि सुधि लीजिए।
सहि न सकत जगत-दाव[2] तुरत दया कीजिए॥
हमरे अवगुनहिं नाथ, सपनेहुँ जिनि देखौ।
अपुनी दिसि प्राननाथ प्यारे, अवरेखौ॥
हम तौ सब भाँति हीन, कुटिल क्रूर कामी।

१ नई...ठानत—नई रीति क्यों निकाल रहे हो? २ दावानल।

करत रहत धनजन[1] के, चरन की गुलामी ॥
महा-पाप-पुष्ट दुष्ट, धरमहिं नहिं जानै ।
साधन नहिं करत, एक तुमहिं सरन[2] मानै ॥
जैसे हैं तैसे तुव, तुमहीं गति प्यारे ।
कोऊ विधि राखि लेहु, हम तौ अब हारे ॥
द्रुपदसुता, अजामेल, गज की सुधि कीजै ।
दीन जानि 'हरीचंद' बाहँ पकरि लीजै ॥२७॥

तुम बिनु प्यारे, कहुँ सुख नाहीं ।
भटक्यौ बहुत स्वाद-रस-लंपट, ठौर-ठौर जग माहीं ॥
प्रथम चाव करि बहुत पियारे, जाइ जहाँ ललचाने ।
तहँतें फिरि ऐसो जिय उचटत[3] आवत उलटि ठिकाने ॥
जित देखौं तित स्वारथ ही का, निरस पुरानी बातैं ।
अतिहि मलिन व्यवहार देखिकैं, घिन आवत है तातैं ॥
हीरा जेहि समुझत सो निकरत, काँचो काँच पियारे ।
'या[4] व्यवहार नफा पाछैं, पछितानो कहत पुकारे ॥
सुंदर, चतुर, रसिक अरु नेही, जानि प्रेम जित कीनो ।
तित स्वारथ अरु कारोचित हम, भलैं सबहि लखि लीनो ॥
सब गुन होयँ जु पै, तुम नाहीं—तौ बिनु लौन रसोई ।
ताही सों "जहाज[5]-पच्छी" सम, गयौ अहो! मन होई ॥
अपने और पराये सबहीं, जदपि नेह अति लावैं ।

१धनवान् । २शरण, शरण में आनेयोग्य । ३हट जाता है । ४या... पछितानो—इस व्यवहार में पीछे पछताना ही नफा है । ५जहाज... होई—जैसे जहाज पर का पक्षी इधर-उधर उड़कर जहाज़ पर ही आ बैठता है, उसी प्रकार, यह जीव संसारी झंझटों में फँसा हुआ बारंबार परमात्मा की ही शरण में आता है । सूरदासजी भी कहते हैं : 'जैसे उड़ि जहाज को पंछी, पुनि जहाज पै आवै ।'

पै तिन सों संतोष होत नहिं, वहु अचरज जिय आवैं ॥
जानत भलैं तुम्हारे विनु सब, वादिहिं[1] बीतत साँसैं ।
'हरीचंद' नहिं छुटति तऊ यह, कठिन मोह की फाँसैं ॥३८॥

जो पै श्रीवल्लभ-सुतहिं[2] न जान्यौ ।
कहा भयौ साधन अनेक में परिकैं, वृथा भुलान्यौ ॥
वादि रसिकता अरु चतुराई, जो यह जीउ[3] न आन्यौ ।
मर्‌यौ वृथा विषया-रस लंपट, कठिन करम में सान्यौ ॥
सोइ पुनीत प्रीत जेहिं इनसों, वृथा वेद मथि छान्यौ ।
'हरीचंद' श्रीविट्ठल विनु सब, जगत झूठ करि मान्यौ ॥३९॥

प्यारे, मोहिं परखिए नाहीं ।
हम न परिच्छा-जोग तुम्हारे, समुझहु यह मनमाहीं ॥
पापहि सों उपज्यौ पापहि में, सिगरो जनम सिरान्यौ ।
तव सनमुख सो न्याय-तुला पै कैसेकैं ठहरान्यौ ॥
दयानिधान, भक्त-वल्लभ, करुनामय, भवभयहारी ।
देखि दुखी 'हरिचंदहि' कर गहि, वेगहिं लेहु उवारी ॥४०॥

वेणु-गीत

सोरठ

धनि ये मुनि वृन्दावन-वासी ।
दरसन-हेतु विहंगम[4] ह्वै रहे, मूरति मधुर उपासी ॥
नव कोमल दल पल्लव द्रुम पै, मिलि बैठत हैं आई ।
नैननि मूँदि त्यागि कोलाहल, सुनहिं बेनु-धुनि माई[5] ॥
प्राननाथ के मुख की बानी, करहिं अमृत-रस पान ।

१ व्यर्थ ही। २ श्रीवल्लभाचार्य के सुपुत्र श्रीगोसाईं विट्ठलनाथजी। ३ मन में। ४ पक्षी; वैष्णवोचित भावुकता कहती है, कि व्रज के पशु-पक्षी आदि सब ऋषि-मुनि थे; निकुंज-विहार देखने के लिये ही उन्होंने यह रूप धारण किया था। ५ 'माई' शब्द सखी के संबोधन में प्रयुक्त हुआ है।

'हरीचंद' हमकों सोउ दुरलभ, यह विधि की गति आन ॥४१॥

सोरठा

सखी, यह अति अचरज की बात ।
गोप सखा अरु गोगन लै जल, राम[1]-कृष्ण बन जात ॥
वेनु वजावत मधुरे सुर सों, सुनिकैं ता धुनि कान ।
भूलि जात जग में सब की गति, सुनत अपूरब तान ॥
वृच्छन कों रोमांच होत है, यह अचरज अति जान ।
थावर[2] होइ जात है जंगम, जंगम थावर मान ॥
गोबंधन[3] कंधन पै धारैं फेंटा[4] छुकि रह्यो माथ ।
मत्त भृंगजुत है वनमाला, फूलछरी पुनि हाथ ॥
वेनु वजावत गीतन गावत, आवत बालक संग ।
'हरीचंद' ऐसी छवि निरखत, बाढ़त अंग अनंद ॥४२॥

होली

धनाश्री

मनमोहन चतुर सुजान, छवीले हो प्यारे ।
तुम बिनु अति ब्याकुल रहैं, सब ब्रज के जीवन-प्रान ॥
तुम्हरे हित नंदलाड़िले हो, छाँड़ि सकल धन-धाम ।
बन-बन में ब्याकुल फिरैं, हो सुन्दर ब्रज की बाम ॥
तनिक बाँस की बाँसुरी हो, लेत जबै तुम हाथ ।
ब्याकुल धावैं देवबधू तजि, अपने पति कौ साथ ॥
सुर-नर-मुनि मन-मोहिनी, हो मोहन तुम्हरी तान ।
जमुनाजू बहिवो तजैं, थकि टरत न देव-बिमान ॥
जड़ चेतन होइ जात हैं, हो चेतन जड़ होइ जात ।

१श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलभद्रजी । २जड़, गोसाईं तुलसीदासजी कहते हैं : 'जो न जनम जग होत भरत को । अचर सचर, चर अचर करत को ॥' 'गाय बाँधने की रस्सी । ४साफा ।

इन सब की यह दसा तौ, अबलन की कह बात ॥
उठि धावैं ब्रजनागरी हो, सुनि मुरली की टेर।
लाज-संक मानें नहीं हो, रहत स्याम कों घेर ॥
मगन भईं सब रूप में हो, गोकुल गाँव बिसारि।
'हरीचंद' जन वारने[1] हो, धन्य धन्य ब्रजनारि ॥४३॥

हम चाकर राधारानी के।
ठाकुर श्रीनंद-नंदन के, वृषभानु-लली ठकुरानी के ॥
निरभय रहत, बदत नहिं काहू, डर नहिं डरत भवानी के।
'हरीचंद' नित रहत दिवाने, सूरत अजब निवानी[2] के ॥४४॥

सिंदुर

भौंरा रे, रस के लोभी, तेरो का परमान[3]।
तू रस-मस्त फिरत फूलन पर, करि अपने सुख-गान ॥
इत सों उत डोलत बौरानो, किये मधुर मधु-पान।
'हरीचंद' तेरे फंद न भूलूँ, बात परी पहिचान ॥४५॥

लावनी

प्रिय प्राननाथ! मनमोहन! सुंदर प्यारे।
छिन हूँ मत मेरे होहु दृगन तें न्यारे ॥
घनस्याम, गोप-गोपीपति, गोकुलराई।
वृन्दावन-रच्छक, ब्रज-सरवस, बलभाई ॥
प्रानहुँ ते प्यारे! प्रियतम, मीत कन्हाई।

१ निछावर है। २ अनुपम सुन्दर। कहते हैं कि बाबू हरिश्चंद्रजी का 'निवानी' नाम की एक स्त्री पर प्रेम था। कुछ लोगों ने इस पद में प्रयुक्त 'निवानी' शब्द उसी स्त्री पर घटाया है। पर यह बात नहीं है। जैसे घनानंदजी ने 'सुजान' शब्द का श्रीकृष्ण के साथ प्रयोग किया है, उसी प्रकार भारतेंदुजी ने 'निवानी' शब्द को, श्रीराधाकृष्ण की दिव्य सुन्दरता पर ही घटित किया है। ३ प्रमाण, विश्वास।

श्रीराधा - नायक जसुदा - नंद - दुलारे।
छिनहूँ मत मेरे होहु दृगन तें न्यारे॥
तुव दरसन विनु तन-रोम-रोम दुख-पागै[1]।
तुव सुमिरन विनु यह जीवन विष-सम लागै॥
मम दुख-जीवन के तुम ही इक रखवारे।
छिनहूँ मत मेरे होहु दृगन तें न्यारे॥
तुमहीं मम जीवन के अवलंब कन्हाई।
तुम विनु सब के सुख-साज परम दुखदाई॥
तुम देखे ही सुख होत न और उपाई।
तुम्हरे विनु सब जग सूनो[2] परत लखाई॥
हे जीवनधन, मेरे नैनन के तारे।
छिनहूँ मत मेरे होहु दृगन तें न्यारे॥
तुम्हरे विनु इक छिन कोटि-कलप सम भारी।
तुम्हरे विनु सरगहुँ महानरक दुखकारी॥
तुम्हरे सँग बनहूँ घर सों बढ़ि, बनवारी।
हमरे तौ सब कछु तुमहीं हो गिरिधारी॥
'हरीचन्द' हमारो राखौ मान दुलारे।
छिनहूँ मत मेरे होहु दृगन तें न्यारे॥४६॥

चंद्रावली

दोहा

सखी, ये नैना बहुत बुरे।
तब तें भये पराये हरि सों जब तें जाइ जुरे[3]॥
मोहन के रस-बस ह्वै डोलत, तलफत तनिक दुरे।
मेरी सीख प्रीति सब छाँड़ी, ऐसे ये निगुरे[4]॥

१लीन हो जाती है, सन जाता है। २नीरस, फीका। ३जुड़े, लगे। ४बिना गुरु के, बिना धर्म-कर्म के, मनमुखी।

अग खीझ्यौ बरज्यौ पै ये नहिं, हठ सों तनिक मुरे।
अमृत भरे देखत कमलन-से, विष के बुते छुरे ॥४७॥

जो पै ऐसेहिं करन रही।
तो फिर क्यों अपने मुख सों तुम, रस की बात कही।
हम जानी ऐसेहिं बीतैगी, जैसी बीति रही ॥
सो उलटी कीनीं विधिना ने, कछू नाहिं निबही।
हमैं बिसारि अनत रहे मोहन, औरे चाल गही ॥
'हरीचन्द' कह-कौ-कह ह्वै गयो, कछु नहिं जात कही ॥४८॥

जोगिन प्रेम की आई।
बड़े-बड़े नैन छुए काननि लौं, चितवनि मद-अलसाई ॥
पूरी प्रीति-रीति-रससानी, प्रेमीजन-मन भाई।
नेह-नगर में अलख[1] जगावति, गावति बिरह-बधाई ॥४९॥

जोगिन-मुख पर लट लटकाई।
कारी घूँघरवारी प्यारी, देखत सब मनभाई ॥
छूटे केस गेरुआ बागो[2], सोभा दुगुन बढ़ाई।
साँचे ढरी प्रेम की मूरति, अँखियाँ निरखि सिराई ॥५०॥

प्रेम-माधुरी

सवैया

ब्रजबासी वियोगिन के घर में, जग छाँड़िकैं क्यों जनमाई हमैं।

१ अलक्ष्य, अज्ञात; परमात्मा। योगियों का भिक्षा माँगते समय का शब्द विशेष। २ लंबा ढीला कुरता।

मिलिबो बड़ी दूर रह्यौ 'हरिचन्द', दई इक नाम[1]-धराई हमैं ॥
जग के सिगरे सुख सों ठगिकैं, सहिबे कों यही है जिवाई हमैं ।
केहि बैर सों हाय दई विधिना, दुख देखिबे ही कों बनाई हमैं ॥५१॥
रोकहिं जो, तौ अमंगल होय, औ प्रेम नसै, जो कहैं 'पिय जाइए'
जो कहैं 'जाहु न'—तौ प्रभुता[2], जो कछू न कहैं, तौ सनेह नसाइए ॥
जो 'हरिचन्द' कहैं 'तुम्हरे बिन, जीहैं न'—तौ यह क्यों पतियाइए[3] ।
तासों पयान-समै तुम तें हम, का कहैं प्यारे, हमें समुझाइए ॥५२॥*
व्याकुल ही तड़पौं बिनु प्रीतम, कोऊ तौ नेकु दया उर लावौ ।
प्यासी तजौं तनु रूप-सुधा बिनु, पानिय[4] पी-कौ पपीहै पिआवौ ॥
जीय में हौंस कहूँ रहि जाय न, हा ! 'हरिचन्द' कोऊ उठि धावौ ॥
आवै-न-आवै पियारो, अरे ! कोउ हाल तौ जाइकैं मेरो सुनावौ ॥५३॥
दीनदयाल कहाइकैं धाइकैं[5], दीननि सों क्यों सनेह बढ़ायौ ।
त्यों 'हरिचन्द जू' वेदनि में करुनानिधि, नाम कह्यौ क्यों गनायौ ॥
ऐसी रुखाई न चाहिए तापै, कृपा करिकै जेहि कौं अपनायौ ।
ऐसो ही जो पै सुभाव रह्यौ, तो 'गरीब-नेवाज' क्यों नाम धरायौ ॥५४॥
यह संग में लागियैं डोलैं सदा, बिन देखैं न धीरज आनती हैं ।
छिनहूँ जो वियोग परै 'हरिचन्द' तौ चाल[6] प्रलै की सु ठानती हैं ॥
बरुनी में फिरैं न झपै उझपैं[7], पल में न समाइबो जानती हैं ।
पिय प्यारे, तिहारे निहारे बिना, अँखियाँ दुखियाँ नहिं मानती हैं ॥५५॥
व्यापक ब्रह्म सबै थल पूरन[8] हैं, हमहूँ पहिचानती हैं ।
पै बिना नँदलाल बिहाल सदा, 'हरिचन्द' न ग्यानहिं ठानती हैं ।

१बदनामी । २अभिमान, प्रेमगर्व । ३विश्वास करेंगे । ४पानी, रूप-माधुरी का रस । ५दीनों पर कष्ट पड़ने के समय उनकी रक्षा करने के लिए दौड़-दौड़ कर । ६चाल...ठानती हैं—प्रलय-काल के मेघों के समान आँसुओं की वर्षा करने लगती है । ७बन्द होती हैं, नींद आती है । ८खुल-खुल पड़ती हैं । ९व्याप्त

*इस सवैये का भाव बड़ा ही अनूठा है ।

तुम ऊधौ ! यहै कहियौ उनसों, हम और कछू नहिं जानती हैं।
पियप्यारे, तिहारे, निहारे बिना, अँखियाँ दुखियाँ नहिं मानती हैं ।।५६।।
सब आस तौ छूटी पिया-मिलिबे की, न जाने मनोरथ कौन सजै।
'हरिचंदजू' दुःख अनेक सहैं, पै अड़े हैं टरैं न कहूँ को भजै[१] ।।
अब सों निरसंक[२] ह्वै बैठि रहैं, सो निरादर हूं सों कछू न लजैं।
नहिं जानि परै, कछु या तन कों, केहि मोह तें पापी न प्रान तजै ।।५७।।
हाय ! दसा यह कासों कहौं, कोउ नाहिं सुनै जो करै हूँ निहोरन[३] ।
कोउ बचावनहारो नहीं 'हरिचंदजू', यों तो हितू हैं करोरन ।।
लो सुधि[४] कै गिरिधारन की, अब धाइकै दूरि करौ इन चोरन।
प्यारे, तिहारे निवास की ठौर कों, बोरत हैं अँसुवा बर-जोरन ।।५८।।
केहि पाप सों पापी न प्रान चलैं, अटके कित कौन बिचार लयौ।
नहिं जानि परै 'हरिचंद' कछु, बिधि ने हम सों हठ कौन ठयौ ।।
निसि आजहुँ की गई हाय ! बिहाय[५], बिना पिय कैसे न जीव गयौ।
हतभागिनी आँखिन सों नित के, दुख देखिबे कों फिरि भोर भयौ ।।५९।।
जानत ही नहिं हौं जग में, किहि कौं सबरे मिलि भाखत हैं सुख।
चौंकत चैन को नाम सुनैं, सपनेहुँ न जानत भोगन कौ रुख[६] ।।
ऐसेन सों 'हरिचंदजू' दूरहिं बैठनो, का लखनो न भलो मुख।
मो दुखिया के न पास रहौ, उड़िकै न लगै तुमहूँ को कहूँ दुख ।।६०।।
वह सुन्दर रूप बिलोकि सखी, मन हाथ तें मेरे भग्यौ सो भग्यौ ।।
चित माधुरी मूरति देखत हीं, 'हरिचंदजू' जाय पग्यौ सो पग्यौ।
मोहिं औरन सों कछु काम नहीं, अब तौ जो कलंक लग्यौ सो लग्यौ ।।
रँग दूसरो और चढ़ैगो नहीं, अलि, साँवरो रँग[७] रँग्यौ सो रँग्यौ ।।६१।।

१ भागते हैं। २ निडर। ३ मिन्नत। ४ सुधि...गिरिधारन—मूसलधार पानी से ब्रज बचाने के लिए गोवर्द्धन पर्वत उठा लेने की याद। ५ बीत गई। ६ रुचि। ७ कृष्ण-प्रेम।

*वाह ! दुख में एक सूल का रोग बना दिया गया !

धिक देह औ गेह सबै सजनी, जिहि के बस नेह को टूटनो है।
उन प्रानपियारे बिना इहि जीवहिं; राखि कहा सुख लूटनो है॥
'हरिचंदजू' बात ठनी-सो ठनी, नित के कलकानि[१] तें छूटनो है।
तजि और उपाय अनेक अरी! अब तौ हमको विष घूँटनो[२] है॥६२॥

कवित्त

बाज्यौ करै बंसी-धुनि बाजि-बाजि स्रवननि,
जोराजोरी[३] मुख-छबि चितहिं चुराये लेति।
हँसनि हँसावनि जगत सों तिहारी मुरि,
मुरनि[४] पियारी मन सब सों मुराये[५] लेति॥
'हरिचंद' बोलनि, चलनि, बतरानि, पीत—
पट-फहरानि मिलि धीरज मिटाये लेति।
झुलफैं तिहारी लाज-कुलफन[६] तोरैं, प्रान—
प्यारे, नैन-सैन प्रान संग ही लगाये लेति॥६३॥
बोल्यौ करै नूपुर स्रौननि के निकट सदा,
पदतल माहिं मन मेरे बिहर्‌यौ करै।
बाज्यौ करै बंसी-धुनि पूरि रोम-रोम, मुख
मन मुसुकानि मंद मनहिं हर्‌यौ करै॥
'हरीचन्द' चलनि, मुरनि, बतरानि चित,
छाई रहै छबि जुग दृगनि भर्‌यौ करै।
प्रानहूँ तें प्यारो रहै तूँ सदाई, प्यारे,
पीत-पट सदा हिय बीच फहर्‌यौ करै॥६४॥
घेरि—घेरि घन आय छाय रहे चहुँ ओर,
कौन हेत प्राननाथ सुरति बिसारी है।
दामिनी-दमक जैसी—जुगनू-चमक तैसी,

[१]कलह, प्रपंच। [२]पीना है। [३]ज़बरदस्ती। [४]मोड़। [५]हटाये लेती है।
[६]लज्जा रूपी तालों को।

नभ में विसाल बग-पंगति सँवारी है ॥
ऐसे समैं 'हरिचन्द' धीर न धरत नैकु,
बिरह—बिथा तें होति व्याकुल पियारी है ।
प्रीतम पियारे नन्दलाल बिनु हाय ! यह
सावन[1] की रात किधौं द्रौपदी की सारी है ॥६५॥

फूली-सी, भ्रमी-सी चौंकी, जकी-सी, थकी-सी गोपी,
दुख-सी रहति कछु नाहीं सुधि गेह की ।
मोही-सी, लुभाई, कछु मोदक[2]-सो खायें सदा,
बिसरी-सी रहै नैकु खबर न गेह की ॥
रिसभरी रहै, कबौं फूली न समानि अंग,
हँसि-हँसि कहै बात अधिक उमेह[3] की ।
पूछे तें खिसानी[4] होय, उत्तर न आवै ताहि,
जानी हम जानी है निसानी या सनेह की ॥६६॥

आइकैं जगत-बीच काहू सों न करै बैर,
कोऊ कछू काम करै इच्छा जौन जोई की ।
ब्राह्मन की छत्रिन की, बैसनि[5] की सूद्रनि की,
अंत्यज मलेच्छ[6] की, न ग्वाल की न भोई की ॥
भले की, बुरे की, 'हरिचन्द'—से पतितहू की,

१सावन...सारी है—प्यारे के बिरह में सावन मास की रात इतनी लंबी जान पड़ती है, जितनी कि द्रौपदी की साड़ी । २मनही-मन प्रसन्न । ३उमंग । ४क्रुद्ध । ५वैश्यों की । ६आचार-विचार से पतित ।

*प्रेमासक्ति के जितने कुछ लक्षण होने चाहिएँ, वे सब-के-सब इस कवित्त में कह कर दिये गये ।

थोरे की, बहुत की, न एक की न दोई की।
चाहे जो चुनिंदा[1] भयौ जग बीच मेरे मन,
तौ न तू कबहूँ निंदा करु कोई की ॥६७॥

थाकी गति अंगन की मति परि गई मन्द,
सूखि झाँझरि-सी ह्वै कै देह लागी पियरान[2] ।
बावरी-सी बुद्धि भई, हँसी कहू छीनि लई,
सुख के समाज जित-तित लागे दूरि जान ॥
'हरीचन्द' रावरे विरह जग दुखमयो,
भयो कछु और होनहार लागे दिखरान ।
नैन कुम्हिलान लागे बैनहुँ अथान[3] लागे,
आवौ प्राननाथ, अब प्रान लागे मुरझान ॥६८॥

सुन्दर सचिक्कन सुढार स्याम सोहै महा,
कोटि लावन्य-धाम लटक निज अंग की ।
कोमल चरन कौंल[4] नटवर ढोर[5] मोर,
पोर-पोर छोरै छवि कोटिन अनंग की ॥
बंक गति लंक तें[6] सुअंक लौं तिरीछे ठाढ़े,
मृदु कर कीन्हें मुद्रा बेनु के प्रसंग की ।
कुण्डल स्रवन सीस चन्द्रिका नमन[7], जै जै,
राधिकारमनलाल, ललित त्रिभंग[8] की ॥६९॥

१सर्व-श्रेष्ठ । २पीली पड़ने लगी । ३अस्त होने लगे, बंद होने लगे । ४कमल । ५अदा, छटा । ६कटि । ७झुकाव । ८तीन टेढ़ से खड़े हुए; एक पैर को दूसरे पैर पर रखे, कमर झुकाये तथा मुरली बजाते हुये बाँके-बिहारी श्रीकृष्ण ।

पूरन सुकृत - फल श्रीभट[1] गुपालजू के,
भक्त महिपाल जू के संकट - समनजू।
दौरे गजराज - काज लाज राखी द्रौपदी की,
धार्यौ गिरिराज[2] देव - मद के दमनजू॥
निज दासी दीन - दुख - हरन चरन चारु,
सुख के करन सदा संपदा - भमनजू[3]।
मुरली - लकुटवारे, चन्द्रिका - मुकुटवारे,
दुरित[4] हमारे दरौ[5] राधिका - रमनजू॥७०॥

दोहा

प्रगट प्रेम-पद्धति कही, लही कृपा-अनुसार।
आनँदघन उनयौ सदा, अद्भुत रस-आगार॥७१॥
प्रेम[6]-परावधि ब्रजबधू, सुनि बंसी-धुनि मन्द[7]।
तजति भईं सब सकुच[8] तब, भजति भईं ब्रजचन्द॥७२॥
आरज-पथ[9] भूलीं भले, बिबस परीं तेहि फंद।
ब्रजमोहन मन-मोहिनी, पूरन प्रेम अमन्द[10]॥७३॥
श्रीपद[11]-अंकित ब्रज-मही, छबि न कही कछु जाइ।
क्यों न रमाहूँ कौ हियो, या सुख कौं ललचाइ॥७४॥

१श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी; यह श्रीचैतन्य महाप्रभु के परमकृपापात्र शिष्य थे। नाभाकृत भक्तमाल में इनके विषय में प्रसिद्ध है: 'सर्वसु राधारमनभट्ट गोपाल उजागर' इत्यादि। लिखा है, कि श्रीराधारमणजी का स्वतः प्राकट्य इन्हीं भट्टजी के भक्ति-बल द्वारा हुआ था। २गोवर्द्धन पर्वत। ३भवन। ४दुःख। ५नाश करो। ६प्रेम...ब्रजबधू—ब्रज-गोपिकाएँ प्रेम की परात्पर अवधि हैं। नारदीय भक्तिसूत्रों में पराभक्ति के उदाहरण में 'यथा व्रज गोपिकानाम्' लिखा है। 'गोपी प्रेम की ध्वजा' आदि पदों द्वारा भी यह सिद्ध है। ७मधुर। ८शील, लज्जा। ९आर्योचित कुल-मर्यादा, पातिव्रत धर्म। १०दिव्य। ११श्रीराधाकृष्ण के चरण।

एक कृपा-बल पाइए, मति-गति-रति भरिपूरि।
निकट होति पाछे परै, श्रीपद - पंकज - धूरि ॥७५॥
परम-प्रेम-गति को लहै, मन-बुधि थकी बिचारि।
या रस-बस मोहन रसिक, चहत अपुनपो हारि ॥७६॥
अतुल रूप-गुन-माधुरी, परम अपूरब साज।
गोपी औ गोपाल कौ, अति रसमसो[1] समाज ॥७७॥
परम प्रेम-गुन-रूप-रस, ब्रज-संपदा अपार।
जय जय जय श्रीगोपिका, जय जय नंद-कुमार ॥७८॥

---

१ रसपूर्ण; परमानंदमय।

जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

छप्पय

ब्रजभाषा - लालित्य-मधुप,—साहित्य-गुनाकर ।
कृष्ण-प्रेम-रस-लीन मीन कविवर रतनाकर ।
'समालोचनादर्स' 'हरीचँद' 'गंगावतरन' ।
रचि,सतसैया-मथन कियौ रसिकनि रस-वितरन ॥
ब्रज-रस-प्रवाह पूरन कियौ 'उद्धव-सतक' प्रकासिकैं ।
कविदेव-सरिस रचना रची, बानी बिमल विलासिकैं ॥

—वियोगी हरि

ब्रज-साहित्य के अनन्य उपासक कविवर जगन्नाथदास 'रत्नाकर' का जन्म संवत् १९२२ में, भादों सुदी ५, ऋषि-पंचमी के दिन, काशी में हुआ था। कविता का उपनाम इनका 'रत्नाकर' था और इसी नाम से ये अधिक प्रसिद्ध भी थे। इनके पिता का नाम पुरुषोत्तमदास था। ये दिल्लीवाल अग्रवाल वैश्य थे। इनके पूर्व पुरुष सफीदों (सर्पदमन), जिला पानीपत, के रहनेवाले थे। पानीपत के दूसरे युद्ध के बाद वे मुग़ल बादशाह अकबर के दरबार में आए और मुग़ल साम्राज्य की अभिवृद्धि के दिनों में भिन्न-भिन्न उच्च पदों पर काम करते रहे। मुग़ल राज्य के पतन हो जाने पर रत्नाकरजी के परदादा लाला तुलाराम जहांदारशाह के साथ काशी चले आये और वहीं बस गये।

रत्नाकरजी के पिता पुरुषोत्तमदासजी फ़ारसी के ऊँचे विद्वान् थे, पर हिन्दी कविता पर भी उनकी अविरत श्रद्धा थी। उन्हीं के प्रभाव से रत्नाकरजी में कविता-प्रेम उदय हुआ। उनके मकान पर अच्छे-अच्छे कवियों का सदा जमघट लगा रहता था; बाहर से आये हुए कवि सदा उन्हीं के पास ठहरते थे। भारतेंदु हरिश्चंद्र भी उनके मित्र और संबन्धी होने के कारण प्रायः उनके स्थान पर आया करते थे। बालक रत्नाकर इस साहित्य-गोष्ठी में प्रायः बैठते और कभी-कभी कुछ बोल

उठते थे। इसी प्रकार एक दिन आपकी किसी उक्ति से प्रसन्न होकर भारतेंदुजी ने कहा; 'यह लड़का कभी अच्छा कवि होगा।' भारतेंदु की यह भविष्यद्वाणी सत्य सिद्ध हुई। रत्नाकरजी पर उक्त साहित्यिक सत्संग का इतना प्रबल प्रभाव पड़ा कि पहले वे उर्दू में और फिर हिन्दी में कविता लिखने लगे।

रत्नाकरजी बड़े अध्ययनशील थे। इनकी सारी शिक्षा काशी में ही हुई। सन् १८६१ में द्वितीय भाषा फ़ारसी लेकर इन्होंने बी० ए० की डिग्री प्राप्त की, और एम० ए० भी फ़ारसी लेकर पढ़ रहे थे, पर कुछ कारणवश परीक्षा न दे सके।

सन् १६०० में रत्नाकरजी की नियुक्ति आवागढ़ स्टेट में हुई। वहाँ का जलवायु इनके स्वास्थ्य के अनुकूल न था। अतः दो वर्ष योग्यता-पूर्वक काम करके नौकरी छोड़ ये काशी लौट आये। कुछ समय के अनंतर सन् १६०२ में अनन्य हिन्दी-प्रेमी अयोध्यानरेश महामहोपाध्याय महाराजा सर प्रतापनारायणसिंह ने रत्नाकरजी को अपना प्राइवेट सेक्रेटरी बना लिया और थोड़े ही दिनों बाद इनकी कार्य-कुशलता से प्रसन्न होकर इन्हें चीफ़ सेक्रेटरी का पद दे दिया। सन् १६०६ के अंत में अयोध्या-नरेश के स्वर्गवास हो जाने पर श्रीमती महारानी जगदंबा देवी अवधेश्वरी ने रत्नाकरजी को अपना प्राइवेट सेक्रेटरी नियत किया। मृत्यु-पर्यंत वे इसी पद पर नियुक्त रहे।

रत्नाकरजी प्रायः प्राचीनता के उपासक थे। पर भारतीय संस्कृति के वे पूर्ण समर्थक थे। स्वभाव सरल और हृदय कोमल था। इतने हँसमुख और मिष्टभाषी थे कि उनकी मंडली में बैठकर हँसी रोकना कठिन हो जाता था। स्मरणशक्ति बड़ी तीव्र थी। व्यायाम के इतने प्रेमी कि ६२ वर्ष की अवस्था में भी ४२ वर्ष से अधिक के नहीं जँचते थे। वैद्यक शास्त्र में भी इनकी बड़ी रुचि थी।

काशी में नागरी-प्रचारिणी सभा की स्थापना में प्रबल उत्साही रत्नाकरजी का भी हाथ था। 'सरस्वती' के प्रारम्भिक प्रकाशन के प्रब-

सर पर संपादकों में इनका भी नाम आया था। उसी समय के आस पास इन्होंने निम्नलिखित काव्यग्रंथ रचे थे : 'हिंडोला' हरिश्चंद्र, "समालोचनादर्श', 'साहित्य-रत्नाकर', 'घनाक्षरी नियम रत्नाकर', 'कलकाशी' और 'अष्टक रत्नाकर'। तदुपरांत राज-काज के अनेक झंझटों में पड़े रहने के कारण रत्नाकरजी ने साहित्यिक क्षेत्र से दीर्घ काल तक अवकाश ग्रहण कर लिया। अपने जीवन के पिछले दस वर्षों में, जब से महारानी जगदंबादेवी अवधेश्वरी के आग्रह से वे पुनः कविता-क्षेत्र में उतरे तब से, उनकी लेखनी नवीन स्फूर्त्ति के साथ बराबर चलती रही। सच तो यह है कि इन्हीं पिछले दस वर्षों में रत्नाकरजी हिंदी-साहित्य-जगत् में यथार्थ रूप से प्रकट हुए। विक्रम-संवत १९७८ की मेष संक्रांति के पर्व पर महारानी के साथ रत्नाकरजी भी हरिद्वार गये थे। वहीं 'गंगा सप्तमी' की कथा पूछने पर रत्नाकरजी ने वाल्मीकि रामायण में से गंगा-अवतरण की कथा श्रीमतीजी को सुनाई वह वर्णन महारानी को बड़ा रोचक प्रतीत हुआ और उन्होंने गंगावतरण काव्य-भाषा में रचने के लिए रत्नाकरजी से आग्रह किया। कविता- अभ्यास बहुत दिनों से छूटा होने के कारण रत्नाकर जी को अपनी शक्ति पर कुछ सन्देह हुआ, पर महारानी की प्रेरणा और प्रोत्साहनवश उन्होंने भगवती वीणापाणि का स्मरण किया। रत्नाकरजी की सोई हुई प्रतिभा विलक्षण आवेग के साथ जागृत हुई और सरस्वती ने उनकी साध हृदय से निकालकर इस भाँति पूरी की :

सुमिरत सारदा हुलसि हँसि हंस चढ़ी,
          बिधि सौं कहति पुनि सोई धुनि ध्याऊँ मैं।
तान-तुक-हीन अंग-भंग छवि-छीन भई,
          कविता बिचारी ताहि रुचि-रस प्याऊँ मैं॥
नंददास, देव, घनआनंद, बिहारी सम,
          सुकवि सनातन की तुम्है सुधि याऊँ मैं।
सुनि 'रतनाकर' की रचना रसीली नैंकु

ढीली परी बीनहिं सुरीली कर त्याऊँ मैं ॥

रत्नाकरजी ने, 'गंगावतरण' काव्य की रचना प्रारंभ कर दी जो संवत् १९८१ में प्रकाशित हुआ। यह काव्य जब अधूरा ही था तभी इसकी रचना से प्रसन्न होकर अयोध्या की महारानी ने रत्नाकरजी को एक सहस्र का पारितोषिक प्रदान किया। रत्नाकरजी कविता, कविता के लिए करते थे, राजा रानियों को प्रसन्न करने के लिए नहीं। अतः उन्होंने कविता का पारितोषिक स्वयं लेना उचित न समझा और महरानी की आज्ञा शिरोधार्य कर उक्त पारितोषिक के रुपये काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा को यह कहकर दे दिये कि इनके ब्याज से प्रति तीसरे वर्ष ब्रजभाषा के सर्वोत्तम काव्य-ग्रंथ पर दो सौ रुपये पारितोषिक दिये जायँ। उक्त 'गंगावतरण' काव्य पर प्रयाग की हिन्दुस्तानी एकेडेमी ने भी सन् १९२९ में पाँच, सौ रुपये का पुरस्कार प्रदान किया था।

रत्नाकरजी के इस नूतन साहित्य-प्रवेश से ब्रजभाषा का कुछ नया शृङ्गार हो चला। पचीसों कवि-सम्मेलनों के वे सभापति हुए। कानपुर के प्रथम अखिल भारतीय हिन्दी-कवि-सम्मेलन का सभापतिपद उन्होंने सुशोभित किया। इस अवसर पर दिया गया इनका भाषण हिन्दी-साहित्य की एक सुंदर कृति है। इनकी साहित्य-सेवा पर मुग्ध होकर हिन्दी संसार ने इन्हें संवत् १९८१ में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, कलकत्ता के अधिवेशन का सभापति चुनकर इनका समुचित सम्मान किया।

'रत्नाकरजी' केवल कवि ही न थे। प्रत्युत वे एक अच्छे भाष्यकार, भाषा तत्वविद् एवं पुरातत्वान्वेषी भी थे। प्राकृत का अच्छा अभ्यास होने के कारण शिलालेखों के पढ़ने तथा प्राचीन शोध का कार्य करने में आपको विशेष रुचि थी। बिहारी की सतसई पर आपने 'बिहारी-रत्नाकर' नामक एक अत्यंत विद्वत्तापूर्ण शुद्ध टीका की। उसके अतिरिक्त चंद्रशेखर के 'हमीर हठ', कृपाराम की 'हितकारिणी' और दूलह कवि के 'कंठाभरण' का संपादन किया। 'साहित्य-सुधा-निधि' नामक मासिक पत्र के आप संपादक भी थे।

रत्नाकरजी की अंतिम रचना 'उद्धव-शतक' नामक मुक्तक काव्य है, जो संवत् १९८६ में समाप्त हुआ। पिछले कुछ वर्षों से वे 'सूर-सागर' का संपादन-कार्य अत्यंत शोधपूर्वक कर रहे थे और इसके लिए उन्होंने कई हज़ार रुपये खर्च भी किये थे। 'सूरसागर' का लगभग तृतीयांश वे समाप्त कर चुके थे; शेष भाग अन्य लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों के द्वारा काशी-नागरी प्रचारिणी सभा पूरा करा रही है।

हृदय-व्याधि से पीड़ित होने के कारण रत्नाकरजी संवत् १९८९ में हरिद्वार चले गये थे। वहीं अयोध्या-हाउस, विष्णुघाट पर आसाढ़ सौर ७, सं० १९८९ को आपका देहावसान हो गया।

वास्तव में, रत्नाकरजी के निधन के साथ ही भारतेंदु-काल की अंतिम आभा लुप्त हो गई। ब्रजभाषा के पुराने कवियों कि भाँति ही रत्नाकरजी को भी राजसी ठाट-बाट नसीब था। कविता पढ़ने का ढङ्ग आपका बड़ा ही ओजस्वी और सुरीला था। इस नीरस युग में भी इनकी कविता घनआनंद और पद्माकर का स्मरण दिला देती थी। ब्रजभाषा की सरलता तथा विशुद्धता पर आपने विशेष ध्यान दिया। सानुप्रास वर्णों का अधिक प्रयोग करने पर भी रत्नाकरजी की भाषा में एक प्रौढ़ता है, निखरापन है, जिससे विदित होता है कि वे ब्रजभाषा को विविध विषयों के अनुकूल एक परिमार्जित काव्य-भाषा का पद देना चाहते थे। छायावाद की दुर्बोध कविताओं से रत्नाकरजी बहुत घबड़ाते थे। ब्रजभाषा के प्राचीन कवियों में भाषा की जो किंचित् उच्छृ-ङ्खलता मिलती है वह रत्नाकरजी में नहीं थी; लघु-दीर्घवर्ण करने की स्वतंत्रता का उपयोग रत्नाकरजी ने बहुत कम किया है। ओज और प्रसाद गुण इनकी कविता में विशेष रूप से पाये जाते हैं। गंगावतरण-काव्य में प्रकृति चित्रण बड़ा ही सुंदर हुआ है। भावों की मौलि-कता चाहे अधिक न मिले, पर शैली की मौलिकता रत्नाकरजी की कविता में पर्याप्त मात्रा में पाई जाती है।

'उद्धव शतक में रत्नाकरजी ने विप्रलंभ वियोग शृङ्गार का बड़ा सुंदर

चित्रण किया है। इनकी कविता में जो ओज, जो लालित्य और जो कुछ रस-प्रवाह अंतर्निहित है उसका कतिपय उदाहरण हम नीचे देते हैं :—

उद्धवशतक

आये भुज-बंध[1] दिये ऊधव-सखा कै कंध,
डग-मग पाय मग धरत धराये हैं।
कहै 'रतनाकर' न बूझैं कछू बोलत औ,
खोलत न नैन हूँ अचैन चित छाये हैं॥
पाइ बहे कंज मैं सुगंध राधिका कौ मंजु,
ध्याये कदली-बन मतंग[2] लौं मताये हैं।
कान्ह गये जमुना नहान पै नये सिर सौं,
नीकैं तहाँ नेह की नदी मैं न्हाइ आये हैं॥१॥

नंद औ जसोमति के प्रेम-पगे पालन की,
लाड़-भरे लालन की लालच लगावती।
कहै 'रतनाकर'-सुधाकर-प्रभा सौं मढ़ी,
मंजु मृगनैननि के गुन-गन गावती॥
जमुना-कछारनि[3] की रंग-रस-रारनि की,
बिपिन-बिहारनि की हौंस[4] हुमसावती[5]।
सुधि ब्रज-बासिन दिवैया सुख-रासिन की,
ऊधौ, नित हमकौं बुलावन कौं आवती॥२॥

रूप-रस पीवत अघात ना हुते जो तब,
सोई अब आँसु ह्वै उबरि गिरिबौ करैं।
कहै 'रतनाकर' जुड़ात हुते देखैं जिन्हैं,
याद किये तिनकौं आँवा[6] सौं घिरिबौ करैं॥

१गलबाँही। २मस्त हाथी। ३नदी के किनारों की तर और हरी-भरी भूमि। ४अभिलाषा। ५उत्तेजित करती हुई। ६आँवाँ...करैं—मिट्टी का बर्तन जैसे आँवे में पकाया जाता है, उसी भाँति अब जलन हो रही है।

दिननि के फेर सौं भयो है हेर-फेर ऐसो,
जाकौं हेरि-फेरि हेरिबोई हिरिबौ करै ।
फिरते हुते जू जिन कुंजनि मैं आठौं जाम,
नैननि मैं अब सोई कुंज फिरिबौ करै ॥३॥

मोर के पखौवनि[1] कौ मुकुट छबीलौ छोरि,
क्रीट मनि-मंडित धराइ करिहैं कहा ।
कहै 'रतनाकर' त्यौं माखन-सनेही बिनु,
षट-रस व्यंजन चबाइ करिहैं कहा ॥
गोपी ग्वाल बालनि कौं झोंकि बिरहानल मैं,
हरि सुर-वृन्द की बलाइ करिहैं कहा ॥
प्यारो नाम गोविंद गुपाल कौ बिहाइ हाय,
ठाकुर त्रिलोक के कहाइ करिहैं कहा ॥४॥

सील-सनी सुरुचि सु-बात चलै पूरब[2] की,
और ओप[3] उमगी दृगनि मिदुराने[4] तैं ।
कहै 'रतनाकर' अचानक चमक उठी,
उर घनस्याम कैं अधीर अकुलाने तैं ॥
आसा दंत दुरदिन दीस्यौ सुर-पुर माँहि,
ब्रज मैं सुदिन बारि बूंद हरियाने तैं ।
नीर कौ प्रवाह कान्ह-नैननि कैं तीर बह्यो,
धीर बह्यौ ऊधौ-उर-अचल रसाने[5] तैं ॥५॥

प्रेम-नेम निफल निवारि उर-अंतर तैं,
ब्रह्म-ग्यान आनंद निधान भरि लैहैं हम ।
कहै 'रतनाकर' सुधाकर[6]-मुखीनि-ध्यान,

१पख, पंख । २पुरानी बात, जब श्रीकृष्ण नंद-यशोदा के यहाँ रहते थे । ३चमक । ४खुले-मुँदे नैन । ५भीगे हुए । ६सुधाकर...ध्यान—गोपियों की पवित्र स्मृति ।

आँसुनि सौं धोइ जोति जोइ जरि[1] लैहैं हम ॥
आवो एक बार धरि गोकुल गली की धूरि,
तब इहिं नीति की प्रतीति धरि लैहैं हम ।
मन सौं, करेजे सौं, स्रवन-सिर आँखिनि सौं,
ऊधव, तिहारी सीख भीख करि लैहैं हम ॥६॥
लै कै उपदेस, औ, संदेस-पन ऊधौ चले,
सुजस - कमाइबे उछाह - उदगार मैं ।
कहै 'रतनाकर' निहार कान्ह कातर पै,
आतुर भये यौं रह्यौ मन न संभार मैं ॥
ग्यान-गठरी की गाँठि छरकि न जान्यौ कब,
हरै[2]-हरै पूंजी सब सरकि कछार मैं ।
डार मैं तमालनि की कछु विरमानी[3] अरु,
कछु अरुझानी है करीरनि के झार मैं ॥७॥
भेजे मन-भावन[4] के ऊधव के आवन की,
सुधि ब्रज-गावनि मैं पावन जबै लगीं ।
कहै "रतनाकर" गुवालिनि की झौरि-झौरि[5],
दौरि-दौरि नंद-पौरि आवन तबै लगीं ॥
उझकि-उझकि[6] पद-कंजनि के पंजनि पै,
पेखि-पेखि पाती छाती छोहनि छबै लगीं ।
हमकौं लिख्यौ है कहा-हमकौं लिख्यौ है कहा,
हमकौं लिख्यो है कहा कहन सबै लगीं ॥८॥
दीन दसा देखि ब्रज-बालनि की ऊधव कौ,
गरिगौ गुमान ग्यान गौरव गुठाने से ।
कहै रतनाकर' न आये मुख बैन, नैन,

१जरि लैहैं—ज्योति जगा लेंगें । २धीरे-धीरे । ३फैल गई । ४श्रीकृष्ण । ५झुंड के झुंड । ६उचक-उचककर ।

नीर भरि ल्याये भये सकुचि सिहाने[1]-से ॥
सूखे-से स्रमे-से सकबके[2]-से सके-से थके
भूले-से भ्रमे-से भभरे-से भकुवाने[3]-से ।
हौले-से हले-से हूल-हूले-से हिये मैं हाय,
हारे-से हरे-से रहे हेरत हिराने-से ॥९॥

पंच-तत्व मैं जो सच्चिदानंद की सत्ता सो तौ
हम तुम उनमैं समान ही समोई है ।
कहै 'रतनाकर' विभूत पंच-भूत हू की
एक-ही-सी सकल प्रभूतनि[4] मैं पोई है ॥
माया के प्रपंच ही सौं भासत प्रभेद सबै
काँच-फलकनि[5] ज्यौं अनेक एक सोई है ।
देखौ भ्रम-पटल उघारि ग्यान-आँखिनि सौं
कान्ह सब ही मैं कान्ह ही मैं सब कोई है ॥१०॥

सुनि-सुनि ऊधव की अकह[6] कहानी कान
कोऊ थहरानी, कोऊ थानहिं[7] थिरानी हैं ।
कहैं 'रतनाकर' रिसानी, बररानी कोऊ,
कोऊ बिलखानी, बिकलानी, बिथकानी हैं ॥
कोऊ सेद-सानी[8] कोऊ भरि दृग-पानी रहीं
कोऊ घूमि-घूमि परीं भूमि मुरझानी हैं ।
कोऊ स्याम-स्याम कै बहकि बिललानी कोऊ
कोमल करेजौ थामि सहमि सुखानी हैं ॥११॥

षटरस-ब्यंजन तौ रंजन सदा ही करैं
ऊधौ, नवनीत हूँ स-प्रीत कहूँ पाये हैं ।

१ललचाये । २बौरे । ३खिसियाये या घबड़ाये हुए । ४सब प्राणियों में । ५दर्पण । ६अकथनीय । ७स्थान ही पर । ८सात्त्विक भाव उदय होने से पसीना आ गया ।

कहै 'रतनाकर' बिरद तौ बखानैं सबै
साँची कहौ केते कहि लालन लड़ावैं हैं ॥
रतन-सिंहासन बिराज पाकसासन[1] लौं
जग-चहुँ-पासनि तौ सासन चलावैं हैं।
जाइ जमुना-तट पै कोउ बट-छाहिं माहिं
पाँसुरि[2] उमाहिं कबौं बाँसुरी बजावैं हैं ॥११

कान्ह-दूत कैधौं ब्रह्म-दूत ह्वै पधारे आप
धारे प्रन फेरन कौ मति ब्रजबारी की।
कहै 'रतनाकर' पै प्रीति-रीति जानत ना
ठानत अनीति आनि नीति लै अनारी[3] की ॥
मान्यौ हम, कान्ह ब्रह्म एक ही, कह्यौ जो तुम,
तौहूँ हमै भावति न भावना अन्यारी[4] की।
जैहै बनि-बिगरि न बारिधिता बारिधि की
बूँदता बिलैहै[5] बूँद बिवस बिचारी की ॥१३॥

चिंता-मनि मंजुल पँवारि[6] धूरि-धारनि मैं
काँच-मन-मुकुर सुधारि रखिबौ कहौ।
कहै 'रतनाकर' वियोग-आगि सारन[7] कौं
ऊधौ, हाय हमकौं बयारि[8] भखिबौ कहौ ॥
रूप-रसहीन जाहि निपट निरूपि चुके
ताकौ रूप ध्याइबौ औ रस चखिबौ कहौ।
एते बड़े बिस्व माँहि हेरैं हूँ न पैयै जाहि,
ताहि त्रिकुटी मैं नैन मूँदि लखिबौ कहौ ॥१४॥

आये हौ सिखावन कौं जोग मथुरा तैं तोपै

१इन्द्र। २पसली। ३अनाड़ी। ४एक की भावना, अर्थात् ब्रह्म हममें ही है हमसे पृथक् नहीं है। ५नष्ट हो जायगी। ६फेंककर। ७धार करना, शीतल करना। ८प्राणायाम की साधना।

ऊधौ, ये वियोग के वचन बतरावौ ना ।
कहै 'रतनाकर' दया करि दरस दीनौ
दुख दरिबै कौं तोपै अधिक बढ़ावौ ना ॥
टूक-टूक ह्वै है मन-मुकुर हमारौ हाय,
चूकि हूँ कठोर बैन-पाहन चलावौ ना ।
एक मनमोहन तौ बसिकै उजारयौ मोहिं
हिय मैं अनेक मनमोहन बसावौ ना ॥१५॥
नेम-व्रत-संजम के पींजरैं परे को जब
लाज-कुल-कानि-प्रतिबंधहिं निवारि चुकीं ।
कौन गुन-गौरव कौ लंगर लगावै जब
सुधि बुधि ही कौ भार टेक करि टारि चुकीं ।
जोग-रतनाकर मैं साँस घूँट[1] बूड़ै कौन
ऊधौ, हम सूधौ यह बानक बिचारि चुकीं ।
मुक्ति-मुकता कौ मोलमाल ही कहा है जब
मोहनलला पै मन-मानिक ही वारि चुकीं ॥१६॥
रंग-रूप-रहित लखात सबहीं हैं हमैं
वैसो एक और ध्याय धीर धरिहैं कहा ।
कहै 'रतनाकर' जरी हैं बिरहानल मैं,
और अब जोति कौं जगाइ जरिहैं कहा ॥
राखौ धरि ऊधौ, उतै अलख अरूप-ब्रह्म,
तासौं काज कठिन हमारे सरिहैं[2] कहा ।
एक ही अनंग साधि साध सब पूरी अब,
और अंग-रहित[3] अराधि करिहैं कहा ॥१७॥
कर-बिनु कैसैं गाय दुहिहै हमारी वह
पद-बिनु कैसैं नाचि थिरकि रिझाइहै ॥

१ कंठ । २ पूरा होगा । ३ निराकार ब्रह्म ।

कहै 'रतनाकर' बदन-बिनु कैसैं चाखि
माखन, बजाइ बेनु गोधन गवाइहै ॥
देखि सुनि कैसैं दृग स्रवन बिना हीं हाय,
भोरे ब्रजबासिनि की बिपति बराइहै[1] ।
रावरौ अनूप कोऊ अलख अनूप ब्रह्म,
ऊधौ कहौ कौन धौं हमारैं काम आइहै ॥१८॥

जोग को रमावै, औ समाधि को जगावै इहाँ,
दुख-सुख-साधनि सौं निपट निबेरी[2] है ।
कहै 'रतनाकर' न जानैं क्यौं इतै धौं आइ,
साँसनि[3] की सासना की बासना बखेरी है ॥
हम जमराज की धरावति जमा न कछू,
सुरपति-संपति की चाहति न ढेरी है ।
चेरी हैं न ऊधौ ! काहू ब्रह्म के बबा की हम,
सूधौ कहे देति एक कान्ह की कमेरी[4] है ॥१९॥

चाही मुख मंजुल की चहतिं मरीचैं[5] सदा,
हमकौं तिहारी ब्रह्म-ज्योति करिबौ कहा ।
कहै 'रतनाकर' सुधाकर-उपासनि कौं,
भानु की प्रभानि कौं जुहारि जरिबौ कहा ॥
भोगि रहीं बिरचे बिरंचि के सँजोग सबै,
ताके सोग[6] सारँग कौं जोग चरिबौ कहा ।
जब ब्रजचंद कौ चकोर चित चारु भयौ
बिरह-चिंगारिनि सौं फेरि डरिबौ कहा ॥२०॥

नैननि के नीर औ उसीर[7] सौं पुलकावलि,
जाहि करि सीरौ सीरी बातहिं बिलासैं हम ।

[1] दूर होगी । [2] निवृत्त । [3] योग-संबंधी प्राणायाम । [4] दासी । [5] किरणें । [6] शोक । [7] खस ।

कहै 'रतनाकर' तपाइ बिरहातप की
आवन न देति जामैं विषम उसासैं हम ॥
सोई मन-मन्दिर तपावन के काज आज,
रावरे कहें तैं ब्रह्म-जोति लै प्रकासैं हम ।
नंद के कुमार सुकुमार कौं बसाइ यामैं,
ऊधौ, अब हाइ कै बिसास[1] उदवासैं[2] हम ॥२१॥

कीजै ग्यान-भानु कौ प्रकास गिरि-सृङ्गनि पै,
ब्रज में तिहारी कला नैंकु खटिहै[3] नहीं ।
कहै 'रतनाकर' न प्रेम-तरु पैहै सूखि,
याकी डार-पात तृन-तूल[4] घटिहैं नहीं ।
रसना हमारी चारु चातकी बनी हैं ऊधौ,
पी-पी की विहाइ और रट रटिहैं नहीं ।
लौटि-पोटि बात कौ बवंडर बनावत क्यौं,
हिय तैं हमारे घनस्याम हटिहैं नहीं ॥२२॥

नेम-व्रत-संजम कै आसन अखंड लाइ,
साँसनि कौं घूँटिहैं जहाँ लौं गिलि[5] जाइगौ ।
कहै 'रतनाकर' धरैंगी मृगछाला अरु,
धूरि हूँ दरैंगी जऊ अंग छिलि जाइगौ ।
पाँच-आँचि[6] हूँ की झार झेलिहैं निहारि जाहि,
रावरौ हू कठिन करेजौ हिलि जाइगौ ।
सहिहैं तिहारे कहैं साँसति सबै पै बस,
एतौ कहि देहु कै कन्हैया मिलि जाइगौ ॥२३॥

साधि लैहैं जोग के जटिल जे बिधान ऊधौ,

१ विश्वासघात । २ निर्वासित करें । ३ चलेगी । ४ तृण के समान । ५ निगलना । ६ हठयोग की पंचाग्नि, जिसे जलाकर हठयोगी उसके बीच बैठते हैं ।

बाँधि लैहैं लंकनि[1] लपेटि मृगछाला हू ।
कहै 'रतनाकर' सु मेलि लैहैं छार अंग,
झेलि लैहैं ललकि घनेरे घाम पाला[2] हू ॥
तुम तौ कही औ अनकही कहि लीनी सबै,
अब जौ कहौ तौ कहैं कछु ब्रजबाला हू ।
अहा मिलिबै तैं कहा मिलिहै बतावौ हमैं,
ताकौ फल जब लौं मिलै न नंदलाला हू ॥२४॥
प्रथम भुराइ[3] प्रेम-पाठनि पढ़ाइ उन,
तन-मन कीन्हें बिरहागि के तपेला[4] हैं ।
कहै 'रतनाकर' त्यौं आप अब तापै आइ,
साँसनि की साँसति[5] के झारत झमेला हैं ॥
ऐसे-ऐसे सुभ उपदेस के दिवैयनि कौ,
ऊधौ, ब्रजदेस मैं अपेल[6] रेल-रेला हैं ।
वे तौ भये जोगी जाइ पाइ कूबरी कौ जोग,
आप कहैं उनके गुरू हैं किधौं चेला हैं ॥२५॥
दौनाचल[7] कौ ना यह छटक्यौ कनूका जाहि,
छाइ छिगुनी पै छेम-छत्र छिति छायौ है ।
कहै 'रतनाकर' न कूबर वधू-वर कौ,
जाहि रंच राँचै पानि परसि गँवायौ है ॥
यह गरु प्रेमाचल दृढ़-व्रत धारिनि कौ,
जाकै भार भाव उनहूँ कौ सकुचायौ है ।
जानैं कहा जानिकैं अजान ह्वै सुजान कान्ह,
ताहि तुम्हैं बात सौ उड़ावत पठायौ है ॥२६॥
सुघर सलोने स्याम सुंदर सुजान कान्ह,

१कटि में । २कुहरा, शीत । ३भुलाकर । ४जल गरम करने का पात्र । ५कष्ट । ६अटल । ७द्रोणागिरि ।

करुना-निधान के बसीठ[1] बनि आये हौ।
प्रेम-प्रनधारी गिरिधारी कौ सनेसौ[2] नाहिं,
होत है अँदेसौ झूठ बोलत बनाये हौ॥
ग्यान-गुरु-गौरव-गुमान-भरे फूले फिरौ,
बंचक के काज पै न रंचक बनाये हौ।
रसिक-सिरोमनि कौ नाम बदनाम करौ,
मेरी जान ऊधौ, कूर कूबरी-पठाये हौ ॥२७॥

आये हौ पठाये वा छतीसे छलिया के इतै,
बीस-बिसै[3] ऊधौ बीरबावन कलौंच[4] हौ।
कहै 'रतनाकर' प्रपंच ना पसारौ गाढ़े,
बाढ़े पै रहौगे साढ़े बाइस ही जाँच हौ॥
प्रेम अरु जोग मैं है जोग छठैं-आठैं पर्यौ,
एक ह्वै रहैं क्यौं दोऊ हीरा अरु काँच ह्वै।
तीन गुन पाँच तत्त्व बहकि बतावत सो,
जैहै तीन-तेरह[5] तिहारी तीन-पाँच ह्वै ॥२८॥

चाहत निकारन तिन्हैं जो उर-अंतर तैं,
ताकौ जोग नाहिं जोग-मन्तर तिहारे मैं।
कहै 'रतनाकर' बिलग करिबै मैं होति,
नीति-बिपरीत[6] महा कहति पुकारे मैं॥
तातैं तिन्हैं ल्याइ लाइ हिय तैं हमारे बेगि,
सोचियै उपाय फेरि चित्त चेतवारे[7] मैं।
ज्यौं-ज्यौं बसे जात दूरि-दूरि पिय प्रान-मूरि,
त्यौं-त्यौं धँसे जात मन-मुकुर हमारे मैं ॥२९॥

१दूत। २संदेश। ३निश्चय ही। ४अंशभूत। ५तीन-तेरह...तीन-पाँच—तुम्हारे योग से तीनों गुण और पाँचों तत्त्व नष्ट हो जायँगे, अर्थात् गोपियों पर इनका कोई प्रभाव न पड़ेगा। ६उलटी बात। ७सचेत होने।

हरि-तन-पानिप के भाजन दृगंचल तैं
उमगि तपन तैं तपाक करि धावै ना।
कहै 'रतनाकर' त्रिलोक-ओक-मण्डल[1] मैं,
वेगि ब्रह्मद्रव[2] उपद्रव मचावै ना॥
हर कौं समेत हर-गिरि के गुमान गारि,
पल मैं पतालपुर पैठन पठावै न।
फैले बरसाने मैं न रावरी कहानी यह,
बानी कहूँ राधे आधी कान सुनि पावै ना॥३०॥

आतुर न होहु ऊधौ, आवति दिवारी[3] अबै,
वैसियै पुरंदर-कृपा जौ लहि जाइगी।
होत नर ब्रह्म-ग्यान सौं बतावत जो,
कछु इहिं नीति की प्रतीति गहि जाइगी॥
गिरिवर धारि जौ उबारि ब्रज लीनौं बलि,
तो तौ भाँति काहूँ यह बात रहि जाइगी।
नातरु हमारी भारी बिरह-बलाय[4] संग,
सारी ब्रह्म-ग्यानता तिहारी बहि जाइगी॥३१॥

विकसित विपिन वसंतिकावली कौ रंग,
लखियत गोपिनि के अंग पियराने[5] मैं।
बौरे वृन्द लसत रसाल-वर बारिनि[6] के,
पिक की पुकार है चबाव उमगाने मैं॥
होत पतझार झार तरुनि समूहनि कौ,
बैहरि[7] बतास लै उसास अधिकाने मैं।
काम-विधि वाम की कला मैं मीन-मेष कहा,
ऊधौ, नित वसत वसंत बरसाने मैं॥३२॥

१समस्त ब्रह्मांड। २गंगाजल। ३दीपमालिका का उत्सव। ४विरह-व्याधि।
५विरह-ताप से पीली। ६बाल स्त्रियाँ वाटिका। ७हवा।

हाल कहा बूझत बिहाल परो बाल सबै,
बसि दिन द्वैक देखि दृगनि सिधाइयौ।
रोग यह कठिन न ऊधौ, कहिबे के जोग,
सूधौ को सँदेस याहि तूँ न ठहराइयौ॥
औसर मिलै औ सरताज[1] कछु पूछहिं तौ,
कहियौ कछू न दसा देखी सो दिखाइयौ।
आह कै कराहि नैन[2] नीर अवगाहि कछू,
कहिबे कौ चाहि हिचकी लै रहि जाइयौ॥२३॥

नंद-जसुदा औ गाय गोप-गोपिका की कछू,
बात बृषभान-भौन हूँ की जनि कीजियौ।
कहै 'रतनाकर' कहति सब हा हा खाइ,
ह्याँ के परपंचनि सौं रंच[3] न पसीजियौ[4]॥
आँसू भरि ऐहै औ उदास मुख ह्वै है हाय,
ब्रज-दुख त्रास की न तातैं साँस लीजियौ।
नाम[5] को बताइ औ जताइ गाम ऊधौ बस,
स्याम सौं हमारी राम-राम कहि दीजियौ॥२४॥

आये लौटि लज्जित नवाये नैन ऊधौ, अब,
सब सुख-साधन कौ सूधौ-सौ जतन लै।
कहै 'रतनाकर' गँवाये गुन-गौरव औ,
गरब-गढ़ी[6] कौ परिपूरन पतन लै॥
छाये नैन नीर पीर-कसक कमाये उर,
दीनता अधीरता के भार सौं नतन लै।

[1] मणिमंडित मुकुटधारी श्रीकृष्ण, [2] नैन...अवगाहि—नेत्रों में जल भर कर। [3] लेशमात्र। [4] पिघलना। [5] नाम...दीजियौ—अमुक गाँव की अमुक गोपी ने अपनी राम-राम कही है' बस इतना ही कहना अधिक नहीं। [6] गर्व रूपी गढ़।

प्रेम-रस रुचिर विराग-तुमड़ी मैं पूरि,
ग्यान-गूदड़ी मैं अनुराग-सौं रतन लै ॥३५॥
प्रेम-मद-छाके पग परत कहाँ के कहाँ,
थाके अंग नैननि सिथिलता सुहाई है।
कहै 'रतनाकर' यौं आवत चकात[1] ऊधौ,
मानौ सुधियात[2] कोऊ भावना भुलाई है ॥
धारत धरा पै ना उदार अति आदर सौं,
सारत बँहोलिनि[3] जो आँसु-अधिकाई है।
एक कर राजै नवनीत जसुदा कौ दियौ,
एक कर बंसी बर राधिका पठाई है ॥३६॥
रावरे पठाये जोग देन कौं सिधारे हुते,
ग्यान-गुन-गौरव के अति उदगार मैं।
कहै 'रतनाकर' पै चातुरी हमारी सबै,
कित धौं हिरानी दसा दारुन अपार मैं ॥
उड़ि उधिरानी किधौं ऊरध उसासनि मैं,
बलि धौं बिलानी कहूँ आँसुनि की धार मैं।
चूर ह्वै गई धौं भूरि दुख के दरेरनि मैं,
छार ह्वै गई धौं बिरहानल की झार मैं ॥३७॥
लैकैं पन सूछम अमोल जो पठायौ आप,
ताकौ मोल तनक तुल्यौ न तहाँ साँठी तैं ॥
कहै 'रतनाकर' पुकारे ठौर-ठौर पर,
पौरि बृषभान की हिरान्यौ मति नाठी तैं ॥
लीजै हेरि आपुहीं न हेरि हम पायौ फेरि,
याही फेर माहिं भये माठी दधि आँठी तैं।

१ चकित होते हुए। २ भूली बात को याद करते हुए। ३ कुर्ते की बाँहों से।

ल्याये धूरि पूरि अंग-अंगनि तहाँ की जहाँ,
ग्यान गयौ सहित गुमान गिरि गाँठी तैं ॥३८॥

छावते कुटीर कहूँ रम्य जमुना कैं तीर,
गौन[1] रौन-रेती[2] सौं कदापि करते नहीं।
कहै 'रतनाकर' बिहाइ प्रेम-गाथा गूढ़,
स्रौन रसना मैं रस और भरते नहीं॥
गोपी ग्वालबालनि के उमड़त आँसू देखि,
लेखि प्रलयागम हूँ नैंकु डरते नहीं।
होतौ चित चाव जौ न रावरे चितावन[3] कौं,
तजि ब्रज-गाँव इतै पाँव धरते नहीं॥३९॥

---

[1] गमन। [2] जिस रेत पर श्रीकृष्ण ने गोपियों के साथ रासलीला की थी।
[3] चेतावनी, आदेश।

सत्यनारायण

छप्पय

जग-ब्यौहारनि भोरो, कोरो गाम-निवासी।
ब्रज-साहित्य-प्रवीन, काव्य-गुन-सिंधु-बिलासी॥
रचना रुचिर बनाय सहज हीं चित आकरषै।
कृष्णभक्ति अरु देसभक्ति-आनँद-रस बरषै॥
पढ़ि हृदय-तरंग उमंग उर प्रेम-रंग अनुदिन चढ़ै।
सुचि सरल सनेही सुकवि श्रीसतनारायण-जसु बढ़ै॥

—वियोगी हरि

व्रज-कोकिल पंडित सत्यनारायण कविरत्न का जन्म संवत १९४१ माघ शुक्ला २ को हुआ। इनके पिता अलीगढ़ निवासी सनाढ्य ब्राह्मण थे। इनके माता-पिता इनके बचपन में ही स्वर्गस्थ हो चुके थे। इनका पालन-पोषण इनकी मौसी ने किया। यह देशी रियासतों में अध्यापिका का काम करती थीं। कुछ काल के अनन्तर वह भी इस संसार से चल बसीं। अब सत्यनारायण अनाथ हो गये। धाँधूपुर (तहसील आगरा) के ब्रह्मचारी बाबा रघुनाथदासजी बड़े प्रेम से इनका पालन-पोषण करने लगे। बाबाजी के पवित्र जीवन का इन पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। मिढ़ाकर (ज़िला आगरा) के तहसीली स्कूल से हिंदी मिडिल पास कर इनकी रुचि अँग्रेजी पढ़ने की हुई। सन् १९१० में बी० ए० की परीक्षा दी, किंतु फेल हो गये। इन दिनों यह 'सेंट जान्स' कालिज में पढ़ते थे।

कविता के प्रति इनकी पहले से ही रुचि थी। बाद को यह कविता-प्रेम इतना बढ़ा कि इन्होंने 'साहित्य-सेवा' को ही अपने जीवन का एक मात्र उद्देश्य निश्चित कर लिया। यह प्रत्येक सभा-समाज में कविता

सुनाने लगे। इनका कविता पढ़ने का ढङ्ग इतना मनोहर होता था कि लोग सुनकर चित्र-लिखे से खड़े रह जाते थे।

"मेरी शारदा-सदन" के अधिष्ठाता पं० मुकुन्दरामजी की बड़ी कन्या से पंडितजी का विवाह हुआ। कहाँ तो पंडित जी श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त; साहित्य-रसिक और सीधे-सादे ग्रामीण, और कहाँ श्रीमती सावित्री देवी (पंडित जी की धर्म-पत्नी) आर्य्यसमाज की कट्टर अनु-यायिनी, शुष्क विचारोंवाली! पृथ्वी-आकाश का अन्तर! दोनों प्राणियों में कभी दाम्पत्य-प्रेम की झलक नहीं दिखाई दी। बेचारे पंडित जी कभी तो 'भयौ यह अनचाहत कौ संग' कहते हुए आह भरते, तो कभी "बस, अब नहिं जाति सही' के सुर में घण्टों रोया करते थे।

उनका असह्य अन्तर्नाद परमात्मा के कानों तक पहुँच गया। अर्थात् १६ अप्रैल, १६१८ को वह हिन्दी-संसार को सदा के लिए सुना कर चल बसे!! उनके प्राण-पक्षी किस प्रकार उड़ गये—यह लिखने की बात नहीं।

सत्यनारायणजी बड़े ही भावुक, सरल और शांत प्रकृति के थे। देहाती पहनाव में रहते थे। इंदौर के हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर तो कुछ स्वयंसेवकों ने उन्हें 'गँवार' समझकर पंडाल के अन्दर नहीं आने दिया था। स्वदेश-भक्ति आपके हृदय में कूट-कूट कर भरी हुई थी। आपकी राष्ट्रीय कविताएँ जितनी भावपूर्ण ओजस्विनी और मधुर हैं, वैसी, हमारी तुच्छ सम्मति में, अब तक तो नहीं बनी आगे की राम जाने।

महात्मा गाँधी के स्तवन में उन्होंने जो चिरस्मरणीय कविता रची थी, उसकी कुछ पंक्तियाँ नीचे लिखी जाती हैं :

प्रेम पुनीत मार्ग के गामी, सब जग के उजियारे।
प्रभु-पद - पद्म-पराग-राग के, अलबेले अलि, प्यारे॥
हिंदू - नयन-चकोर-चंद्र तुम, नव जीवन-बिस्तारक।
सहृदय-हृदय कुमोद-खिलावन, मोदभरन, उपकारक॥

मोहन प्यारे, तुमसों निसि-दिन, विनय बिनीत हमारी।
हिंदू - हिंदी - हिंद - देश के, बनहु सत्य हितकारी॥

और भी :

तुमसे बस तुमही लसत, और कहा कहि चितभरें।
सिवराज, प्रतापऽरुमेजिनी, किन-किन सों तुलना करें?

इस कविता ने लोगों पर अनिर्वचनीय प्रभाव डाला। सत्यनारायण जी की 'भ्रमर-दूत' नाम की रचना अनूठी और सद्यः प्रभावोत्पादिनी है। श्रीकृष्ण-भक्ति के साथ ही उसमें स्वदेश प्रेम का जो मधुर मिश्रण हुआ है, उसे साहित्य-रसिक ही अनुभव कर सकते हैं। इनके 'उत्तर रामचरित' और 'मालती-माधव' के अनुवाद भी परम सरस और उत्कृष्ट हुए हैं। आगरे की नागरी प्रचारिणी सभा ने इनकी फुटकर कविताओं का एक बड़ा सुन्दर संग्रह 'हृदय -तरङ्ग' के नाम से प्रकाशित किया है। उसके संग्रह-कर्त्ता हिंदी के प्रसिद्ध विद्वान् पंडित बनारसीदासजी चतुर्वेदी हैं।

इसमें संदेह नहीं, कि सत्यनारायणजी ब्रजभाषा के एक महाकवि थे। इनके हृदय में हिंदी के उद्धार के लिए सतत वेदना रहती थी। कृष्ण-प्रेम में आँखें झूमती रहती थीं। कौन जानता था, कि ब्रज-माधुरी निकुंज' का एक भव्य कोकिल इतने ही स्वल्प समय में कूक कर सदा के लिए अनन्त शून्य में उड़ जायगा! ब्रज-माधुरी-पूर्ण आपके कतिपय पद्य नीचे उद्धृत किये जाते हैं।

ब्रजभाषा

दोहा

सजन सरलघनस्याम अब, दीजै रस बरसाय।
जासों ब्रजभाषा - लता, हरी - भरी लहराइ॥१॥

भुवन-विदित यह जदपि चारु भारत भुवि[१] पावन।
पै रसपूर्न कमंडल ब्रज - मंडल मनभावन॥

[१] भूमि।

परम-पुन्यमय प्रकृति-छटा जहँ विधि वियुराई[1] ।
जग सुर-मुनि-नर मंजु जासु जानत सुघराई[2] ॥
जिहि प्रभाव-वस नित-नूतन जलधर सोभा धरि ।
सफल काम अभिराम सघन घनस्याम आपु हरि ॥
श्रीपति[3]-पद-पंकज-रज परसत जो पुनीत अति ।
आय जहाँ आनँदकरनि अनुभव सहृदय मनि ॥
जुगुल चरन - अरविंद - ध्यान - मकरंद-पान-हित ।
मुनि-मन मुदित मलिंद निरंतर बिरमत जहँ नित ॥
तहँ सुचि सरल सुभाव रुचिर गुनगन के रासी ।
भोरे-भारे बसत नेह बिकसित ब्रजवासी ॥२॥
जिहि आस्रय लहि कलिमल-[4] हर तुलसी-सौरभ-जसु ।
मंजु मधुर मृदु सरस सुगम सुचि हरिजन सरबसु ॥
केसव[5] अरु मतिराम[6], बिहारी, देव अनूपम ।
हरिश्चंद्र से जासु कूल कुसुमित रसाल[7] द्रुम ॥
'अष्टछाप'[8] अनुपम कदंब अघ-ओक-निकंदन ।
मुकुलित प्रेमाकुलित सुखद सुरभित जग-बंदन ॥
तुरत सकल भयहरनि आर्य-जागृति जय-खानी ।
जनमन निजवस-करनि लसति पिक भूषन-बानी ॥
बिबिध रंग-रंजित मन-रंजन सुखमा आकर ।
सुचि सुगंध के सदम खिले अगनित पदमाकर[9] ॥

१बिखेर दी है, छा दी है। २चतुराई। ३श्रीकृष्ण। ४कलियुग में किये गये पापों का नाश करनेवाला। ५ओड़छावाले, महाकवि केशवदास। ६महाकवि भूषण के छोटे भाई। इनके 'रसराज' और 'ललित-ललाम' रीति-ग्रंथों में प्रसिद्ध हैं। ७आम; सुन्दर। ८वल्लभकुलानुयायी आठ महाकवियों का मंडल। ९(१) कविवर पद्माकर, जिनके 'पद्माभरण', 'गंगा लहरी' आदि ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। (२) कमलों का वन।

जिन पराग सों चौंकि भ्रमत उत्सुकता-प्रेरे ।
रहसि-रहसि रसखान रसिक अलि गुंज घनेरे ॥
बरन-बरन[1] में मोहन की प्रतिमूर्ति बिराजति ।
अच्छर आभा[2] जासु अलौकिक अद्भुत आकृति ॥३॥

तिहारो को पावै प्रभु पार !

बिपुल सृष्टि नित नव बिचित्र के चित्रकार-आकार ॥
मकरी के सम जगत-जाल यहि सृजत और बिस्तारत ।
कौतुक[3] ही में हरत ताहिं पुनि, बेद पुरान उचारत[4] ॥
जग में तुम, औ तुम में सब जग, बासुदेव अभिराम ।
सकल रंग तन बसत आपके, याही सों घनस्याम[6] ॥
परम पुरुष तुम, प्रकृति, नटी सँग, लीला रचत अपार ।
जग[7]-व्यापन सों 'विष्णु' कहावत, अचरज, तउ अबिकार ॥
जितने जात समीप, दूर अति होत जात तब ग्यान[8] ।
सत्य छितिज[9] सम तरसावत नित, बिस्व-रूप भगवान ॥४॥

माधव आप सदा के कोरे ।

दीन-दुखी जो तुमको जाँचत, सो दानिन के भोरे[10] ॥
किंतु बात यह तुव सुभाव वे नैकहुँ जानत नाहीं ॥
सुनि-सुनि सुजस रावरो तुव ढिंग, आवन को ललचाहीं ॥
नाम धरे तुमको जग-मोहन, मोह[11] न तुमको आवै ।
करुनानिधि, तुव हृदय न एकहु करुना-बुन्द समावै ॥

१अक्षर-अक्षर । २प्रभा, छटा । ३निष्काम बुद्धि से लीला पूर्वक ही । ४करते हैं । ५(१) महाराज वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण (२) सब में बसने वाले । ६मेघ के समान श्याम मूर्ति; रँग-बिरंगे मेघों के समान सुन्दर । ७जग... अविकार— यद्यपि तुम सब जगत में रम रहे हो फिर भी अविकारी हीन बने हुए हो । ८अविद्यात्मक मिथ्या ज्ञान । ९क्षितिज; वह रेखा जो पृथ्वी से आकाश छूती हुई मालूम होती है । १०धोखे में आकर । ११प्रेम दया ।

लेत एक कौ देत दूसरेहिं, दानी वनि जगमाहीं।
ऐसो हेर-फेर[1] नित नूतन, लाग्यौ रहत सदाहीं ॥
भाँति-भाँति के गोपिन के जो, तुम प्रभु चीर चुराये।
अति उदारता सों लै वेही, द्रौपदि को पकराये[2] ॥
रतनाकर[3] को मथत सुधा कौ, कलस आप जो पायौ।
मंद-मंद मुसुकात मनोहर, सों देवन कों प्यायौ ॥
मत्त गयंद कुवलिया[4] के जो, खेल[5] प्रान हरि लीनें।
बड़ी दया दरसाइ दयानिधि ! सो गजेन्द्र को दीनें ॥
करिकैं निधन[6] बालि रावन कौ, राजपाट जो आयौ।
तहँ सुग्रीव विभीषन को करि, अति अहसान चिठायौ ॥
पौंडरीक[7] कौ सर्वनास करि, माल-मता जो लीयौ ॥
ताकौं विप्र सुदामा के सिर, करि सनेह 'मढ़ि दीयौ' ॥
ऐसी तूमा-पलटी[8] के गुन, 'नेति-नेति' स्रुति गावैं।
सेस महेस सुरेस गनेसहुँ, सहसा पार न पावैं ॥
इत माया अगाध सागर, तुम डोवहु भारत-नैया।
रचि महाभारत कहूँ लरावत अपु[9] में भैया-भैया ॥
या कारन जग में प्रसिद्ध अति 'निवटी रकम' कहाओ !
'बड़े-बड़े तुम मठाधुँवारे' क्यों साँची खुलवाओ ॥५॥

माधव, अब न अधिक तरसैए।
जैसी करत सदा सों आये, वही दया दरसैए ॥

१इधर-उधर कर देना। २सौंप दिये। ३रतनाकर...प्यायौ—जब देवताओं और राक्षसों ने समुद्र मथकर अमृत का घड़ा निकाला तब उसके लिए आपस में झगड़ा होने लगा। विष्णु भगवान् ने तुरंत मोहिनी-रूप धारण कर राक्षसों को अपने सौंदर्य पर मोहित कर लिया और अमृत देवताओं को पिला दिया। ४कंस का मतवाला हाथी। ५लीलापूर्वक ही। ६वध। ७पौंडरीक; एक पापी राजा। ८इसका लेकर उसको देना, हेर-फेर कर देना। ९आपस।

मानि लेउ, हम क्रूर, कुढङ्गी[1] कपटी, कुटिल गँवार।
कैसे असरन-सरन कहौ तुम, जन के तारनहार॥
तुम्हरे अछत तीन-तेरह[2] यह, देस-दसा दरसावै।
पै तुमको यहि जनम[3]-धरे की, तनकहुँ लाज न आवै॥
आरत तुमहिं पुकारत हम सब, सुनत न त्रिभुवनराई।
अँगुरी डारि कान में बैठे, धरि ऐसी निठुराई॥
अजहुँ प्रार्थना यही आप सों, अपुनो विरद सँवारौ।
'सत्य' दीन दुखियन की विपदा, आतुर आइ निवारौ॥६॥

मोहन! कबलौं मौन गहौगे?
निज आँखिन पै धरैं ठीकुरी, कितने और रहौगे?
तुम देखत भारत-मानवकुल, आकुल छिन-छिन छीजै।
कहा भयौ पाषान हृदय तुव, जो नहिं तनिक पसीजै॥
'रसना[4]' नाम भयौ अब साँचो, टेरत-टेरत हारे।
छुट्यो न तउ तव हृदय-कृष्णपन[5], दृग सों चले पनारे॥
विपति-ग्राह ने ग्रस्यौ विस्व-गज, होन चहत अनहोनी[6]।
ऐसे समय, साँवरे, सूझी तुमको आँखमिचौनी[7]॥
भुवन-विदित निज सतगुन तुमने, कहौ कहाँ विसराये।
रह्यौ सुभाव यही जो, तौ क्यों 'करुनासिंधु' कहाये॥७॥

अब न सतावौ।
करुनाघन इन नयन सों, द्वै बुँदियाँ तौ टपकावौ[8]॥
सारे जग सों अधिक कियौ का, हमने[9] ऐसो पाप।
नित नव दई निर्दई बनि जो, देत हमैं संताप॥

१कुढङ्गी। २तितर-बितर। ३(भारतवर्ष में) अवतार धारण करने की। ४(१) जीभ (२) रसना, जिसमें रस न हो। ५कालापन, कपट। ६अनुचित। ७आँख बंद कर छिप जाना; ध्यान न देना। ८बरसाओ। ९हम भारत-वासियों ने।

साँची तुमहिं सुनावत जो हम, चौंकत सकल समाज[1]।
अपनी जाँघ[2] उघारैं उघरति, बस, अपनी ही लाज।
तुम आछे हम बुरे सही, बस, हमरो ही अपराध।
करनो हो सो अजहूँ कीजै, लीजै पुन्य अगाध॥
होरी-सी जातीय प्रेम यह फूँकि न धूरि उड़ावौ।
जुगकर जोरि यही 'सत' माँगत, अलग न और लगावौ॥८॥*

बस, अब नहिं जाति सही।
विपुल वेदना विविध भाँति, जो तन-मन व्यापि रही॥
कबलौं सहैं, अवधि सहिबे की, कछु तौ निस्चित कीजै।
दीनबन्धु, यह दीन दसा लखि, क्यों नहिं हृदय पसीजै॥
वारन[3]-दुखटारन, तारन में प्रभु, तुम बार न लाये।
फिर क्यों करुना करत स्वजन पै करुनानिधि अलसाये॥
यदि जो कर्म-जातना[4] भोगत, तुम्हरे हूँ अनुगामी।
तौ करि कृपा बतायो चहियतु, तुम काहे के स्वामी॥
अथवा विरद-बानि अपनी कछु, कै तुमने तजि दीनी।
या कारन, हम सम अनाथ की, नाथ न जो सुधि लीनी॥
वेद बदत[5] गावत पुरान सब, तुम भय-ताप नसावत।
सरनागत की पीर तनकहूँ, तुम्हें तीर-सम लागत॥
हमसे सरनापन्न[6] दुखी को, जाने क्यों बिसरायो।
सरनागत-वत्सल[7] 'सत' यों ही, कोरो[8] नाम धरायो॥९॥

हे घन स्याम, कहाँ घनस्याम!
रज मँडराति चरन-रज कित सौं, सीस धरैं अठजाम॥

१ अपने को सभ्य माननेवाली संसार की सभी जातियाँ। २ अपनी बात अपने मुँह से कहने से। ३ गजेन्द्र। ४ दुष्कर्म के फल-स्वरूप कष्ट। ५ कहते। ६ शरण में आया हुआ। ७ प्यार करने वाले। ८ झूठा, व्यर्थ।

* 'भारत-दुर्दशा' पर इतना अच्छा पद हमारे देखने में तो नहीं आया।

स्वेत पटल लै घन, कहँ त्यागी सुरभी सुखद ललाम।
मोरनि घोर सोर चहुँ सुनियत, मोरमुकुट किहि ठाम॥
गरजत पुनि-पुनि, कहाँ बतावौ मुरला मृदु सुर-धाम।
तड़पावत हौ तड़ितहिं छिन-छिन, पीतांबर नहिं नाम॥१०॥*

अमरदूत*

श्रीराधावर निजजन - बाधा - सकल - नसावन।
जाकौ ब्रजमनभावन, जौं ब्रज कौ मनभावन॥
रसिक-सिरोमनि मन-हरन, निरमल नेह - निकुञ्ज।
मोदभरन उर-सुख - करन, अविचल[1] आनँद- पुञ्ज॥
रँगीलो साँवरो॥११॥

कंस मारि भू - भार - उतारन, खल - दल - तारन।
बिस्तारन बिग्यान बिमल, स्रुति[2] - सेतु - सँवारन॥
जन - मन - रंजन सोहना[3], गुन-आगर चित-चोर।
भव - भय भंजन मोहना, नागर नन्दकिसोर॥
गयौ जब द्वारिका॥१२॥

बिलखाती, सनेह पुलकाती, जसुमति माई।
स्याम - बिरह - अकुलाती, पाती कबहुँ न पाई॥
जिय प्रिय हरि-दरसन बिना, छिन-छिन परम अधीर।
सोचति मोचति[4] निसिदिना, निसरतु नैननु नीर॥
बिकल, कल ना हियें॥१३॥

१अटूट, नित्य एकरस। २स्तुति...सँवारन—वैदिक धर्म का उद्धार करनेवाले। ३सुन्दर। ४छोड़ती है, गिराती है।

× क्या ही भावपूर्ण पद है।

*सत्यनारायणजी का यह कृष्णभक्ति और स्वदेश-प्रेम से पूर्ण 'अमरदूत' खेद है, अपूर्ण ही मिला है। यह 'अमरदूत', हमारी सम्मति में सत्यनारायणजी को अजर-अमर बनाये रहेगा।

पावन सावन मास नई उनई[1] घन-पाँती।
मुनि-मन-भाई छई, रसमई मंजुल काँती[2] ॥
सोहत सुन्दर चहुँ सजल, सरिता पोखर[3] ताल।
लोल-लोल तहँ अति अमल, दादुर बोल रसाल ॥
छटा चूई[4] परै ॥१४॥

अलबेली कहुँ बेलि, द्रुमन सों लिपटि सुहाई।
धोये - धोये पातन[5] की अनुपम कमनाई[6] ॥
चातक चलि कोयल ललित, बोलत मधुरे बोल।
कूकि-कूकि केकी ललित, कुञ्जनु करत कलोल ॥
निरखि घन की छटा ॥१५॥

इन्द्र-धनुष अरु इन्द्रवधूटिन की सुचि सोभा।
को जग जनम्यौ मनुज, जासु मन निरखि न लोभा ॥
प्रिय पावन पावस-लहरि, लहलहात चहुँ ओर।
छाई छवि छिति पै छहरि[7], ताको ओर न छोर ॥
लसै मन-मोहिनी ॥१६॥

कहूँ बालिका-पुंज कुञ्ज लखि परियत पावन।
सुख-सरसावन, सरल सुहावन, हिय-सरसावन[8] ॥
कोकिल - कंठ - लजावनी, मनभावनी अपार।
भ्रातृ[9]-प्रेम-सरसावनी, रागनि मंजु मलहार[10] ॥
हिंडोरनि झूलतीं ॥१७॥

बालवृन्द हरषत, उर - दरसत चहुँ चलि आवैं।
मधुर - मधुर मुसुकाइ रहस[11]-बतियाँ बतरावैं ॥

[1] घिर आई। [2] [illegible] [3] छोटी तलैया, गड्ढे। [4] बिखरी पड़ती है। [5] पत्तों की। [6] [illegible] [7] [illegible] [8] [illegible] [9] [illegible] [10] वर्षा में गाये जाने वाला एक राग। [11] आनंद।

तरुवर डाल हलावहीं 'धौरी' 'धूमरि' टेरि ।
सुन्दर राग अलापहीं, भौंरा, चकई[1] फेरि ॥
विविध क्रीड़ा करैं ॥१८॥

लखि यह सुखमा[2]-जाल, लाल निज बिन नँदरानी ।
हरि-सुधि उमड़ी, घुमड़ी तन उर अति अकुलानी ॥
सुधि-बुधि तजि, माथौ पकरि, करि-करि सोच अपार ।
दृगजल मिस मानहुँ निकरि, बही बिरह की धार ॥
कृष्ण-रटना लगी ॥१९॥

कृष्ण-बिरह की बेलि नई तौ उर हरियाई[3] ।
सोचन-अस्तु-बिमोचन दोउ दल[4] बल अधिकाई ॥
पाइ प्रेमरस बढ़ि गई, तनतरु लिपटी धाइ ।
फैल फूटि चहुँधा छई, बिथा न बरनी जाइ ॥
अकथ ताकी कथा ॥२०॥*

कहति बिकल मन महरि[5] कहाँ हरि ढूँढ़न जाऊँ ।
कब गहि लालन ललकत[6], मन गहि हृदय लगाऊँ ॥
सीरी[7] कब छाती करौं, कब सुत-दरसन पाऊँ ।
कबै मोद निज मन भरौं, किहिं कर धाइ पठाऊँ ॥
सँदेसो स्याम पै ॥२१॥

पढ़ी न अच्छर एक, ग्यान सपनें ना पायौ ।
दूध-दही चाटन में, सबरो जन्म गमायौ ॥
मात-पिता बैरी भये, सिच्छा दई न मोहि ।
सबरे दिन यौं ही गये, कहा कहे तें होहि ॥
मनहिं मन में रही ॥२२॥ ×

१खिलौने । २प्राकृतिक सौंदर्य की राशि । ३हरी हो गई, ताजी हो गई । ४कौंपल । ५यशोदाजी । ६प्रेमोत्कंठित । ७ठंडी ।

*विरह-बेलि का क्या ही सुन्दर सांगोपांग रूपक है । × यह संकेत

सुनी गरग[1] सों अनसूया[2] की पुन्य कहानी।
सीता सती पुनीता की, सुठि कथा पुरानी॥
बिसद ब्रह्म विद्या पगी, मैत्रेयी[3] तिय-रत्न॥
सास्त्र-पारगी,[4] गारगी[5], मंदालसा[6] सयत्न॥
पढ़ीं सब-की-सबै॥२३॥

निज-निज जनम-धरन कौ, फल उनने हीं पायौ।
अविचल अभिमत सकल भाँति, सुन्दर अपनायौ॥
उदाहरन उज्जल दियौ, जग की तियनि अनूप।
पावन जस दस दिसि छयौ, उनकौ सुकृत-सरूप॥
पाइ विद्या-बलै॥२४॥

नारी-सिच्छा निरादरत जे लोग अनारी।
ते स्वदेस-अवनति-प्रचंड-पातक अधिकारी॥
निरखि हाल मेरो प्रथम, लेउ समुझि सब कोइ।
विद्याबल लहि मति परम, अबला सबला होइ॥
लखौ अजमाइकैं॥२५॥

कौने भेजौं दूत, पूत सों बिथा सुनावै।
बातन में बहराइ*, जाइ ताकौं यहँ लावै॥
त्यागि मधुपुरी सों गयो, छाँड़ि सबन कौ साथ।

वर्तमान स्त्री-शिक्षा के अभाव पर जान पड़ता है।

[1]गर्ग ऋषि: ब्रज के गोपों के कुलगुरु। [2]अत्रि ऋषि की पतिव्रता स्त्री; दत्तात्रेय, चंद्र और दुर्वासा इन्हीं के पुत्र थे। [3]महर्षि याज्ञवल्क्य की पत्नी; इन्होंने अपने पति से ब्रह्म-विद्यारूपी जायदाद माँग ली था। [4]शास्त्रों में पूर्ण निपुण। [5]गर्ग मुनि की विदुषी पुत्री। इन्होंने जनक की सभा में महर्षि याज्ञवल्क्य से शास्त्रार्थ किया था। [6]राजा ऋतुध्वज की रानी। इन्होंने अपने सब पुत्रों को निवृत्ति मार्ग का उपदेश देकर बालसंन्यासी बना दिया था।
*फुसलाकर।

सात समुन्दर पै भयौ, दूरि द्वारिकानाथ ॥
जाइगो को वहाँ ॥२६॥

नास होइ अक्रूर[1] क्रूर तेरो वजमारे[2] ।
बातन में दै सबनि, लै गयौ प्रान हमारे ॥
क्यों न दिखावत लाइ कोउ, सूरति ललित ललाम ।
कहँ मूरति रमनीय दोउ, स्याम और बलराम ॥
रही अकुलाइ मैं ॥२७॥

अति उदास, बिन आस, सबै तन-सुरति भुलानी ।
पूत-प्रेम सों भरी परम, दरसन-ललचानी ॥
बिलपति कलपति अति जबै, लखि जननी निज स्याम ।
भगत-भगत[3] आये तबै, भाये मन अभिराम ॥
भ्रमर के रूप में ॥२८॥

ठिठक्यो,[4] अटक्यौ भ्रमर देखि जसुमति महरानी ।
निज-दुख सों अति दुखी ताहिं मन में अनुमानी ॥
तिहिं दिसि चितवत चकित चित, सजल जुगल भरि नैन ।
हरि-वियोग कातर समित, आरत गदगद[5] बैन ॥
कहन तासों लगीं ॥२९॥

"तेरो तन घनस्याम, स्याम घनस्याम उतै सुनि ।
तेरी गुंजन सुरलि[6] मधुप, उत मधुर मुरलि-धुनि ॥
पीत रेख तव कटि बसति, उत पीतांबर चारु ।
बिपिनबिहारी दोउ लसत, एकरूप सिंगार ॥
जुगुलरस के चखा[7] ॥३०॥

[1]श्रीकृष्ण के चाचा ; यही कृष्ण-बलराम को कंस के आदेशानुसार गोकुल से मथुरा ले गये थे। [2]वज्र से मारा हुआ ; दुष्ट ; । [3]भागते-भागते । [4]ठहर गया । [5]भरे हुये गले से निकले वचन । [6]सुरीली, मीठी । [7]चखनेवाले, रसिक ।

याही कारज निज प्यारे ढिग तोहिं पठाऊँ ।
कहियो वासों विथा सबै जो अबै सुनाऊँ ॥
जैयौ षटपद, धायकैं. कहि निज कृपा बिसेस ।
लैयौ काम बनायकैं, दैयौ यह संदेस ॥
सिदौसी[1] लौटियौ ॥३१॥

जननी[2] जन्मभूमि सुनियत स्वर्गहुँ तें प्यारी ।
सो तजि सबरो मोह साँवरे, तुमनि बिसारी ॥
का तुम्हरी गति-मति भई, जो ऐसो बरताव ।
किधौं नीति बदली नई, ताकौ परयौ प्रभाव ॥
कुटिल विष कौ भरयौ ॥३२॥

माखन कर पौंछन सों चिक्कन चारु सुहावत ।
निधुवन स्याम तमाल, रह्यौ जो हिय हरसावत ॥
लागत ताके लखन सों, मति चलि वाकी ओर ।
बात लगावत सखन सों, आवत नंदकिसोर ॥
कितहुँ सों भाजिकैं ॥३३॥*

वुही कलिंदी-कूल-कदंबन के बन छाये ।
बरन-बरन के लता-भवन मनहरन सुहाये ॥
वुही कुन्द की कुञ्ज ये, परम प्रमोद-समाज ।
पै मुकुन्द बिन बिषमये[3] सारे सुखमा-साज ॥
चित्त वाँही[4] धरयौ ॥३४॥

लगत पलास उदास, असोक सोक में भारी ।
बौरे बने रसाल, माधवी लता दुखारी ॥
तजि-तजि निज प्रफुलितपनौ बिरह-बिथित अकुलात ।

१ जल्दी । २ जननी...प्यारी—इन [illegible] की [illegible] है — 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' । ३ विष के [illegible] । ४ वहीं पर
* इस पद में विलक्षण माधुर्य और प्रसाद गुण है ।

जड़ हूँ ह्वै चेतन मनों, दीन मलीन लखात।
एक माधौ विना ॥३५॥

नित नूतन तृन डारि सघन वंसीवट छैयाँ।
फेरि-फेरि कर-कमल, चराईं जो हरि गैयाँ॥
ते तित सुधि अति हीं करत, सब तन रहीं[1] झुराय।
नयन स्रवतजल, नहि चरत, व्याकुल उदर अघाय॥
उठाये म्हौं[2] फिरैं॥३६॥

वचन-हीन ये दीन गऊ दुख सों दिन वितवति।
दरस-लालसा लगी चकित-चित इत उत चितवति॥
एक संग तिनकौ तजत, अलि कहियौ "ऐ लाल।
क्यों न होय निज तुम लजत[3] जग कहाय गोपाल[4]"॥
मोह[5] ऐसौ तज्यौ॥३७॥

नील कमल-दल स्याम जासु तन सुन्दर सोहै।
नीलांबर वसनाभिराम[6] विद्युत मन मोहै॥
भ्रम में परि घनस्याम के, लखि घनस्याम अगार।
नाचि-नाचि व्रजधाम के, कूकत मोर अपार॥
भरे आनंद में॥३८॥

यहँ कौ नव नवनीत मिल्यौ मिसरी अति उत्तम।
भला सकै मिलि कहाँ सहर में सद[7] याके सम॥
रहे यही लालो[8] अजहुँ, काढ़त यहि जब भोर[9]।
भूखो रहत न होइ कहुँ, मेरो माखन-चोर।
बँध्यौ निज टेव[10] कौ॥३९॥

वा विनु गो-ग्वालनु को हित की वात सुझावै।

१सूख गई है। २मुंह। ३शर्माते हो। ४गौओं के पालनेवाले। ५ममता, प्रेम ६सुन्दर वस्त्र। ७सद्यः, ताज़ा। ८लालसा, चाह। ९सबेरा। १०आदत।

अरु स्वतंत्रता, समता, सहभ्रातृता[1] सिखावै ॥
जदपि सकल विधि ये सहत, दारुन अत्याचार ।
पै नहिं कछु मुख सौं कहत, कोरे[2] बने गँवार ॥
कोऊ अगुआ[3] नहीं ॥४०॥*

भये संकुचित हृदय भीरु अब ऐसे भय में ।
काऊ कौ बिस्वास न निज जातीय उदय में ॥
लखियत कोऊ रीति न भली, नहिं पूरव-अनुराग ।
अपनी[4]-अपनी ढापुली, अपनो-अपनो राग ॥
अलापैं जोर सों ॥४१॥

नहिं देसीय भेष-भावनु की आसा कोऊ ।
लखियत जो ब्रजभाषा, जाति हिरानी[5] सोऊ ॥
आस्तिक बुधि-बंधन नसे, बिगरी सब मरजाद ।
सब काऊ के हिय बसे, न्यारे-न्यारे स्वाद ॥
अनोखे ढङ्ग के ॥४२॥

बेलि नवेली[6] अलबेली[7] दोउ नम्र[8] सुहावैं ।
तिनके कोमल सरल भाव कौ सब जसु गावैं ॥
अबकी गोपो मदभरी, अधर[9] चलै इतराय ।
चार दिना की छोहरी, गई ऐसी गरबाय ॥
जहाँ देखौ तहाँ ॥४३॥

गोबरधन कर-कमल धरि जो इन्द्र लजायौ ।
तुम बिनु सो तिहिं कौं बदलौ चहत चुकायौ ॥

१भाईचारा। २बिल्कुल ही निरक्षर। ३नेता। ४अपनी...राग—जिसे जो अच्छा लगता है, वह वही करता है; मनमुखीपन। ५खोई जाती है। ६नई लता ७हरी। ८(१) झुकी हुई; (२) शील संकोचवाली। ९अधर...इतराय चलती है, किसी को कुछ भी न समझती हुई, मानों आकाश पर पग रखी है।

*वर्तमान देश-दशा का यथार्थ चित्र है।

नहिं बरसावत सुघन अब, नियमपूर्वक नीर।
जासों गोकुल[1] होत सब, दिन-दिन परम अधीर ॥
नीर सपनों भयौ ॥४४॥

गोरी कों गोरे लागत जग अति हीं प्यारे।
मो[2] कारी कों कारे तुम नयननु के तारे ॥
उनकों[3] तो संसार सब, मो दुखिया कों कौन।
कहिए, काह विचार है, जो तुम साधी मौन ॥
बने अपस्वारथी ॥४५॥

पहले को सो अब न तिहारो यह वृन्दावन।
याके चारों ओर भये बहुविधि परिवर्तन ॥
बने खेत चौरस नये, काटि घने वनपुञ्ज।
देखन कों बस रहि गये, निधुवन,[4] सेवाकुंज[5] ॥
कहाँ चरिहैं गऊ ॥४६॥

पहली-सी नहिं जमुनाहूँ में अब वहराई।
जल कौ थल, अरु थल कौ जल अब परत लखाई ॥
कालीदह कौ ठौर जहँ, चमकत उज्ज्वल रेत।
काछी माली करत तहँ, अपने-अपने खेत ॥
घिरे झाऊनि सों ॥४७॥

नित नव परत अकाल, काल कौ चलत-चक्र चहुँ।
जीवन कौ आनंद न देख्यौ जात यहाँ कहुँ ॥
बढ़्यौ यथेच्छाचार[6]-कृत, जहँ देखौ तहँ राज।

१(१) ब्रज (२) गोवंश। २मो...तारे—मुझ काली-कलूटी को, भैया, तुम जैसे काले रंगवाले ही अच्छे लगते है, विदेशी गोरे नहीं! ३उन गोरों को ४एक कुंज, जहाँ श्रीस्वामी हरिदासजी रहते थे। ५एक कुंज, जहाँ श्रीहित-हरिवंशजी रहते थे। ६मनमुखीपन।

होत जात दुर्बल विकृत[1], दिन-दिन आर्य-समाज ॥
दिनन के फेर सों ॥४८॥

जे तजि मातृभूमि सों ममता, होत प्रवासी[2]।
तिन्हें[3] विदेसी तंग करत, दै विपदा, खासी ॥
नहिं आये निरदय दई, आये गौरव जाय।
साँप[4]-छछूँदर-गति भई, मन-हीं-मन अकुलाय ॥
रहे सब-के-सबै ॥४६॥

टिमटिमाति जातीय जोति जो दीपसिखा-सी।
लगत बाहरी ब्यारि[5] बुझन चाहत अबला-सी ॥
सेष न रह्यौ सनेह कौ, काहू हिय में लेस।
कासों कहिए गेह को, देसहि में परदेस।
भयौ अब जानिए ॥५०॥

दोहा

वह मुरली अधरान की, वह चितवन की कोर।
सघन कुञ्ज की वह छटा, अरु वह जमुन-हिलोर[6]॥५१॥
पीतपटी लिपटाय कैं, लै लकुटी अभिराम।
बसहु मंद मुसिक्याय उर, सगुन-रूप घनस्याम ॥५२॥
आवौ, बैठौ, हँसौ प्रिय, जातें बढ़ै उछाह।
हम पागल प्रेमीनु को, और चाहिए काह ॥५३॥

१कुछ-का-कुछ; नष्ट-भ्रष्ट। २अपने देश को छोड़कर परदेश में रहनेवाले। ३तिन्हें...खा सौं—यह चरण 'दक्षिण' अफ्रीका के दुखी प्रवासियों पर लिखा गया जान पड़ता है ४दुविधा की अवस्था, किंकर्त्तव्य-विमूढ़ता; कहते हैं, जब साँप-छछूँदर (एक चूहा) को पकड़ लेता है तब उसपर बड़ी आपत्ति आ जाती है। खा ले, तो मर जाता है और छोड़ दे, तो अंधा हो जाता है। 'भई गति साँप-छछूँदर केरी'—तुलसी। ५बाहरी, विदेशियों की। तरंग। ६लहरें, छड़ी।

करम-धरम-नित-नेम कौ, सब विधि देख्यौ तार[1] ।
पै असार संसार में, एक प्रेम ही सार ॥५४॥
चित चिंता तजि, डारिकैं भार, जगत के नेम ॥
रे मन, स्यामा-स्याम की, सरन गहौ करि प्रेम ॥५५॥
श्रीराधापति माधव, श्रीसीतापति धीर ।
मत्स्य आदि अवतार नित, नमौं, हरहु भवपीर[2] ॥५६॥*
रेवति-प्रिय[3] मूसलहली[4], वली सिरी[5] बलराम ।
बंदौं जग व्यापक सकल, कृष्णाग्रज[6] सुखधाम ॥५७॥
भव-बाधा गाधा[7]-हरन, राधा राधापीय ।
दुखदारिद दरि, विस्तरहु, मंगल मेरे हीय ॥५८॥
श्रीराधा वृपभानुजा, कृष्ण प्रिया हरि-सक्ति[8] ।
देहु अचल निज पदन की, परमपावनी भक्ति ॥५९॥
मकराकृत कुंडल स्रवन, पीतवरन तन ईस ।
सहित राधिका मो हृदय, बास करौ गोपीस ॥६०॥
'क्यों पीवहिं मो चरन-रस, मुनी पियूष विहाय ।
यह जानन बालक हरी, चूसत स्वपद[9] अघाय ॥६१॥ ×
चंद्रकमल कौ जगत में, अनुचित वैर कहात ।
यासों हरि निजपद कमल, बिधु-मुख हेत लखात ॥६२॥

१ [illegible] । २सांसारिक दुःख । ३रेवती के पति । ४मूसल और हल ही जिनके अस्त्र हैं । ५श्री । ६श्रीकृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता बलरामजी । ७अथाह दुःख । ८भगवान् की आह्लादिनी शक्ति । ९अपने चरणको ।

*इस दोहे के पहले चरण में एक मात्रा कम होती है, किंतु संस्कृत के नियमानुसार संयुक्ताक्षर 'श्री' के पहले 'माधव' के 'व' को दीर्घ मान लेने से छंद ठीक हो जाता है।

× प्रायः शिशु अपने पैर के अँगूठे को मुंह से चूसने लगते हैं; यहाँ बालक कृष्ण पर यह अनूठी उक्ति घटाई गई है।